बॉलीवुडनामा

भवानीलाल भारतीय

बॉलीवुडनामा

डॉ. भवानीलाल भारतीय

प्रस्तावना

यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि आज प्रचलित मनोरंजन के साधनों में फिल्मों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत में मूक फिल्मों के निर्माण को भी कई दशक बीत चुके हैं। मेरे इस कथन से आप सहमत होंगे कि यद्यपि फिल्म-कला सामान्य तथा उच्चवर्गीय लोगों के मनोरंजन तथा शिक्षण का सशक्त माध्यम है, तथापि रोचक, उपयोगी, साथ ही व्यवसाय से जुड़ी इस कला के बारे में सुरुचिपूर्ण एवं पठनीय हिंदी ग्रंथों की संख्या पर्याप्त नहीं है। जहाँ काव्य, संगीत, चित्रकला, अभिनय आदि ललित कलाओं के विभिन्न रूप हैं, वहाँ फिल्मों में इन सभी का एक साथ आस्वाद लिया जा सकता है। यह सत्य है कि फिल्मों के इतिहास तथा इससे जुड़ी हस्तियों की जानकारी देनेवाले ग्रंथ हिंदी में नगण्य हैं।

इस ग्रंथ के लेखक डॉ. भारतीय ने मुख्य रूप से धर्म, दर्शन, भारत के नवजागरण आदि विषयों पर पर्याप्त लिखा है, किंतु पंजाब विश्वविद्यालय के दयानंद शोधपीठ के अध्यक्ष पद से 1991 में अवकाश लेने के बाद विगत वर्षों में उन्होंने हिंदी फिल्मों के विभिन्न पहलुओं पर पर्याप्त अध्ययन एवं लेखन किया। प्रस्तुत ग्रंथ में विगत काल के फिल्मी कलाकारों, गायकों, संगीत निर्देशकों, फिल्म निर्मात्री संस्थाओं, फिल्मी पत्रकारिता तथा फिल्म पूर्व के रंगमंचीय नाटकों की विधा पर जानकारी प्रस्तुत की गई है। इसे हिंदी फिल्मों का व्यवस्थित इतिहास तो नहीं कहा जा सकता तथापि फिल्म उद्योग के पितामह दादा साहब फाल्के तथा उनके परवर्ती गायकों, कोकिलकंठी गायिकाओं, कतिपय अभिनेता-अभिनेत्रियों, संगीत निर्देशकों आदि के बारे में रोचक जानकारी प्रस्तुत की गई है। ग्रंथ की एक अन्य विशेषता है साहित्य और सिनेमा के अन्योन्याश्रित संबंधों की चर्चा। इस दृष्टि से हिंदी, संस्कृत, भारत की क्षेत्रीय भाषाओं तथा यूरोपीय साहित्य से ली गई कथाओं पर निर्मित फिल्मों का विवेचन विशेष महत्त्व का है। इसी प्रसंग में फारस एवं अरब के चमत्कार प्रधान कथानकों तथा अविभाजित पंजाब में प्रचलित प्रेम-कथाओं पर बनी फिल्मों की जानकारी भी ग्रंथ की विशेषता है। यथाप्रसंग प्रेमचंद तथा शरत के कथा साहित्य पर आधारित फिल्मों की चर्चा भी यहाँ हुई है।

सर्वोपरि बात तो यह है कि इस ग्रंथ में मात्र नाम-परिगणन या शुष्क इतिहास लेखन की प्रविधि को न अपनाकर विशिष्ट साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम अंगीकार किया गया है। इस दृष्टि से फिल्म समीक्षा का यह नूतन प्रयास है। कलाकारों के दुर्लभ चित्रों ने ग्रंथ की साज-सज्जा को भव्य तथा आकर्षक बना दिया है। आशा है, हिंदी फिल्मों के गौरवपूर्ण अतीत पर प्रकाश डालने में यह ग्रंथ सहायक होगा।

नोएडा (उ.प्र.)

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी)

भूमिका

मेरा लेखन कर्म मुख्यत: वेद, उपनिषदादि शास्त्रों, भारतीय नवजागरण तथा तत् सदृश विषयों तक सीमित रहा, अत: उसमें फिल्मी हस्तियों तथा प्रवृत्तियों पर लिखना कुछ विचित्र सा लगता है। छात्रावस्था का प्रारंभिक समय मारवाड़ अंचल के देहातों (नागौर जनपद के परबतसर तथा मकराना) में व्यतीत हुआ, जहाँ सिनेमा तो दूर, बिजली तथा पानी के नल जैसी प्राथमिक सुविधाएँ भी नहीं थीं। राज्य की राजधानी जोधपुर से छन-छनकर 'खजांची' और 'खानदान' जैसी लोकप्रिय फिल्मों के नाम कर्णगोचर हो जाते तथा इन्हीं फिल्मों के कतिपय लोकप्रिय गीतों के स्वर आयातित दशा में सुनाई पड़ जाते। जब घर में ग्रामोफोन आया तो उमाशशि (बंगाल की अभिनेत्री) का गीत 'प्रेम अपूरब माया जगत में' तथा स्वर सम्राट् के.एल. सैगल के शब्द 'अंधे की लाठी तू ही है' कानों में गूँजने लगे। मिडिल की परीक्षा देने के पश्चात् जब मित्रों के साथ जोधपुर में नवनिर्मित सिनेमा हाउस स्टेडियम (महाराजा जोधपुर की संपत्ति) में सोहराब मोदी की ऐतिहासिक फिल्म 'सिकंदर' चार आने का टिकट लेकर देखी तो 'जिंदगी है प्यार से, प्यार में बिताए जा' मार्चिंग सॉन्ग (प्रयाण गीत) की प्रभावशाली आवाज अनुगूँज बनकर यदा-कदा कर्ण-कुहरों में गूँजती रही।

नियमित रूप से फिल्म देखने का व्यसन कभी रहा ही नहीं। यदा-कदा संगी-साथियों के साथ जो फिल्में देखीं, उनकी तो स्मृति मात्र भी नहीं रही। एक संस्कारवान् बड़ी आयु के मित्र (स्व. कृष्ण मुरारी माथुर) यदा-कदा कोलकाता के न्यू थियेटर्स तथा उससे जुड़े कलाकारों (कानन देवी, पहाड़ी सान्याल, पी.सी. बरुआ, तिमिर बरन आदि) की चर्चा करते थे तथा न्यू थियेटर्स एवं बॉम्बे टॉकीज में बनी फिल्मों की तुलना कर न्यू थियेटर्स की कृतियों को वरीयता देते थे, तो इन पंक्तियों का लेखक इन चर्चाओं का एक विस्मय विमुग्ध श्रोता मात्र रहता था। घर में रेडियो आने पर सिलोन रेडियो से नित्य प्रसारित होनेवाले पुराने गीतों को सुनने का तो नियम सा ही बन गया था। कारण कि आधे घंटे तक चलने वाली मोहक तथा अतीत की स्मृतियों को पुनरुज्जीवित करनेवाली इस संगीत सरिता की समाप्ति कुंदनलाल सैगल के एक गीत से होती तो पता चलता कि आठ बज गए हैं।

काल अपनी गति से बढ़ता गया। राजस्थान के कॉलेजों में दो दशक तथा पंजाब विश्वविद्यालय की दयानंद शोधपीठ के एक दशक के कार्यकाल को समाप्त कर जब अवकाश लिया तो लेखन के अतिरिक्त और कोई कार्य मुझे सूझ नहीं रहा था। अचानक पाली (राजस्थान) के एक वयोवृद्ध पत्रकार मित्र के संग्रह में रखी पुराने मासिक पत्रों ('सुधा', 'माधुरी', 'हंस', 'विशाल भारत', 'मतवाला', 'सरस्वती' आदि) की फाइलों से साबका पड़ा तो अप्रत्याशित रूप से फिल्म विषयक पुरानी पत्रिकाओं की एक संचिका हाथ लगी, जिसमें हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी तथा मराठी एवं गुजराती की कुछ फिल्मी मासिक पत्रिकाएँ बँधी थीं।

उत्सुकतावश इन पत्रिकाओं पर दृष्टिपात किया तथा उस युग के कुछ फिल्मी कलाकारों के चित्र देखे तो विस्मयान्वित होना स्वाभाविक ही था। विचार आया, क्यों नहीं हिंदी में फिल्मी-पत्रकारिता पर ही कुछ लिखूँ। इन्हीं पत्रों में विवेचित सामग्री को लेकर जब एक लेख 'राजस्थान पत्रिका' (प्रसिद्ध दैनिक) में प्रकाशनार्थ भेजा तो संपादक का आग्रह था कि उस विगत युग की कतिपय फिल्मी हस्तियों के चित्र भी भेजें, ताकि इस लेख को सचित्र प्रकाशित किया जाए। लौटाने की शर्त पर कुछ चित्र भी भेजे तो वह लेख 'राजस्थान पत्रिका' में छपा।

'हिंदुस्तान टाइम्स' के फिल्मी स्तंभ में 'Nostalgia' शीर्षक से कुछ लेख यदा-कदा छपते थे, जिनमें विगत युग के कलाकारों की चर्चा रहती थी। इनका आधार लेकर कानन, गीता दत्त जैसी गायिकाओं पर कुछ लिखा तो उसे पत्रों में प्रकाशित देखकर इस क्षेत्र में कुछ और लिखने का विचार आया। तुरंत पश्चात् श्री गिरधारीलाल विश्वकर्मा

से परिचय हुआ, जिनकी पुराने फिल्मी गीतों और गायकों में प्रगाढ़ रुचि थी और यह भी पता चला कि उनके पास इस विधा से संबद्ध प्रचुर मात्रा में पठनीय सामग्री है। निष्कर्षत: इस कृति के गुणावगुणों की परख सुधी पाठकों के लिए छोड़कर इस आत्मवृत्त को विराम देता हूँ।

प्रस्तुत ग्रंथ की परिचयात्मक भूमिका के लेखन के लिए मैं सुहृदवर श्री टी.एन. चतुर्वेदीजी का हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने अपने व्यस्त समय में से कुछ क्षण निकालकर ग्रंथ की उपयोगिता पर अपने विचार प्रस्तुत किए। ग्रंथ विषयक सामग्री जुटाने के लिए एक बार पुन: श्री गिरधारीलाल विश्वकर्मा का आभार, जिनके द्वारा प्रदत्त सामग्री की सहायता इस ग्रंथ का लेखन हो सका।

—भवानीलाल भारतीय

शांति निकेतन, शंकर कॉलोनी
श्रीगंगानगर, आषाढी पूर्णिमा-2067 वि.

1

भारतीय फिल्म उद्योग के पितामह— दादा साहब फाल्के

भारत में फिल्मों के प्रथम निर्माता और निर्देशक दादा साहब फाल्के ने यदि पत्नी के गहने गिरवी रखकर अपनी पहली फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' का निर्माण नहीं किया होता तो भारतीय सिनेमा का इतिहास कुछ दूसरा ही होता। फाल्के ने सिनेमा व्यवसाय का आरंभ कर इसे मनोरंजन, कला साधना तथा भारतीय संस्कृति को जन-जन तक पहुँचाने का एक सशक्त साधन बना दिया। उनकी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए उनके नाम पर एक पुरस्कार भारत सरकार द्वारा उस व्यक्ति को प्रतिवर्ष दिया जाता है जो भारतीय सिने उद्योग की उन्नति तथा प्रगति में किसी-न-किसी रूप में जुड़ा हो तथा उसका अवदान उत्कृष्ट समझा गया हो।

नासिक के निकट शैवतीर्थ स्थल त्र्यंबकेश्वर में दादा साहब का जन्म 30 अप्रैल, 1870 को हुआ। उनका वास्तविक नाम ढुंढिराज गोविंद फाल्के था। उनमें आरंभ से ही कलाओं के प्रति रुचि थी। 1885 में वे बंबई के जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट में प्रविष्ट हुए और विधिवत् चित्रकला सीखी। बाद में वे बड़ौदा के प्रसिद्ध कला भवन के छात्र बने और चित्रकला के साथ-साथ फोटोग्राफी तथा स्थापत्य का विधिवत् अध्ययन किया। जीविकोपार्जन के लिए उन्होंने फोटोग्राफर का काम शुरू किया। वह जमाना पारसी नाटक कंपनियों द्वारा नाटकों के अभिनय करने का था। उन नाटकों के लिए परदों पर विविध दृश्य अंकित करने का काम भी उन्होंने किया। 1903 में दादा साहब भारत सरकार के पुरातत्त्व-विभाग में नक्शानवीस तथा फोटोग्राफर बन गए। 1905 में जब भारत में स्वदेशी आंदोलन चला तो वे राजकीय सेवा से निवृत्त हो गए और स्वतंत्र जीविका चलाने के उपाय सोचने लगे। उन्हें अपनी आर्थिक समस्याओं के समाधान की कोई समुचित दिशा नहीं मिली और वे निराशा का अनुभव करने लगे। इसी समय उन्होंने ईसा मसीह के जीवन पर निर्मित एक अंग्रेजी चलचित्र देखा, जिससे उनके मन में यह भावना जगी कि क्या भारत में इस प्रकार की फिल्म बनाना संभव है?

यह घटना 1910 की है। उनकी आयु उस समय चालीस वर्ष की थी। आय का कोई व्यवस्थित स्रोत नहीं था, किंतु भारत में ही फिल्म बनाने का दृढ़ संकल्प लेकर वे इस व्यवसाय से संबद्ध उपकरणों की मूल्य सूची तथा उनको प्राप्त करने के स्थानों की जानकारी लेने में लग गए। उन्होंने फिल्म उद्योग विषयक पर्याप्त साहित्य पढ़ा। अनेक अंग्रेजी फिल्में देखीं तथा इससे संबद्ध उपकरणों तथा मशीनों को खरीदने के लिए इंग्लैंड जाने का मानस बनाया। विदेश यात्रा के लिए कुछ धन तो उन्होंने उधार लिया तथा अपने बीमा की पॉलिसी रहन रखकर समुचित धनराशि एकत्र की। एक फरवरी, 1912 को फाल्के ने जलयान से लंदन के लिए प्रस्थान किया। वहाँ वे 'बाइस्कोप' साप्ताहिक पत्र के संपादक से मिले और फिल्म निर्माण के विभिन्न पहलुओं पर उनसे विचार-विमर्श किया। इन संपादक महोदय ने फाल्के को वे सब उपकरण प्राप्त करने में सहायता की तथा सेसिल हेपवर्थ नामक एक व्यक्ति से मिलवाया, जो इंग्लैंड का नामी फिल्म निर्माता था।

हेपवर्थ से उन्होंने फिल्मों के विषय में उपयोगी जानकारी ली। यह व्यक्ति उन्हें अपने स्टूडियो में ले गया तथा फिल्म उद्योग के सभी विभाग दिखलाए, जिससे फिल्म निर्माण की तकनीक को हृदयंगम कर सके।

दो महीने इंग्लैंड में बिताकर दादा साहब स्वदेश लौटे। अप्रैल 1912 में जब वे भारत आए तो अपने परिवार के सदस्यों को बिठाकर उन्होंने एक लघु फिल्म बनाई। इसके पश्चात् वे आगे की योजना की क्रियान्विति के लिए जब धन प्राप्त करने में लगे तो उन्हें कहा गया कि कोई मूल्यवान वस्तु गिरवी रखे बिना उन्हें पर्याप्त धन राशि उधार नहीं मिलेगी। तब उन्होंने अपनी पत्नी के आभूषण रहन रखे और धन की समस्या को हल किया। अब दूसरी कठिनाई उपयुक्त कलाकारों की तलाश थी। उन्होंने अयोध्या के राजा सत्यव्रती हरिश्चंद्र के पौराणिक उपाख्यान पर एक चित्र बनाने का निश्चय किया था, किंतु कठिनाई यह थी कि महारानी तारामती की भूमिका किसे दी जाए? उन दिनों भले घर की स्त्रियों के लिए फिल्म में काम करना स्वप्न जैसा था। अत: फाल्के ने सालुंके नाम के एक सुरूपवान युवक को तारामती की भूमिका के लिए तैयार किया। सालुंके बंबई के एक होटल में रसोइया था।

'राजा हरिश्चंद्र' शीर्षक फिल्म का निर्माण फाल्के का अकेले का प्रयास था। अत: स्टूडियो निर्माण, सेट बनाने, पटकथा लिखने से लेकर फोटोग्राफी डेवलपिंग तथा संपादन तक के सारे काम उन्हें ही करने पड़े। अंतत: 13 मई, 1913 को 'राजा हरिश्चंद्र' फिल्म दर्शकों के समक्ष आई। इसका सर्वत्र स्वागत हुआ और बंबई में लगातार 23 दिन तक दिखाई जाती रही। इस फिल्म की सफलता से उत्साहित होकर फाल्के ने एक अन्य पुराणकथा पर आधारित 'मोहिनी-भस्मासुर' फिल्म का निर्माण किया। 1917 में उन्होंने हिंदुस्तान फिल्म कंपनी की स्थापना की, जो 1932 तक चलती रही। इसके बैनर तले अनेक महत्त्वपूर्ण फिल्में बनीं। इस अग्रगामी कार्य में फाल्के को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किंतु उनके अनुकरण में अन्य महत्त्वाकांक्षी लोग भी इस क्षेत्र में आए। फाल्के ने अपने कार्यकाल में 'सत्यवान-सावित्री', 'लंका दहन', 'सेतुबंध' आदि फिल्मों का निर्माण किया। ये सभी पौराणिक कथाओं पर आधारित थीं। 'सेतुबंध' उनकी अंतिम फिल्म थी, जो 1931 में बनी और इसी वर्ष मूक फिल्मों का युग भी समाप्त हुआ।

1934 में दादा साहब ने गंगावतरण के पौराणिक कथानक को लेकर हिंदी और मराठी में एक द्विभाषी फिल्म बनाई। इसके बाद उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और उन्होंने फिल्मों से अवकाश ले लिया। वृद्धावस्था में उन्हें बुरे दिन देखने पड़े। फिल्म उद्योग में अब अन्य लोग भी आ गए थे, परंतु चाहने पर भी किसी निर्माता ने उन्हें कोई काम नहीं दिया। 16 फरवरी, 1944 को जब नासिक में उनकी मृत्यु हुई तब वे सर्वथा उपेक्षित तथा दरिद्रता की सी स्थिति में थे। फिल्म निर्माण जैसी लोकरंजक कला के आद्य प्रवर्तक का यह एक करुणा पूर्ण अंत था।

❑

2

प्रथम सवाक् फिल्म आलमआरा

बोलती फिल्मों के प्रचलित होने के पहले कई दशकों तक गूँगी फिल्मों का दौरा-दौर रहा था। मूक फिल्मों के लिए अंग्रेजी शब्द 'मूवी' का प्रयोग होता था, जबकि सवाक् फिल्मों को टॉकी कहा जाने लगा। वह 14 मार्च, 1931 का दिन था, जब बंबई के मैजेस्टिक सिनेमा में भारत की पहली सवाक् फिल्म 'आलमआरा' का प्रदर्शन होने जा रहा था और असंख्य दर्शक उक्त फिल्मालय की ओर दौड़े जा रहे थे। अजीब दृश्य था। दादा साहब फाल्के ने यदि इस देश में फिल्म निर्माण आरंभ किया तो पारसी सेठ अर्देशिर ईरानी ने उसे जबान दी। 'आलमआरा' को देखने के लिए जबरदस्त जन सैलाब उमड़ा था। यहाँ तक कि दर्शकों को काबू में रखने के लिए पुलिस को लाठियाँ भाँजनी पड़ी थीं। आज 'आलमआरा' का कोई दर्शक शायद ही धराधाम पर जीवित बचा हो। इस पहली बोलती फिल्म की भाषा को न तो शुद्ध हिंदी कहा जा सकता है और न प्योर (शुद्ध) उर्दू। यह मिली-जुली हिंदुस्तानी थी, जिसे पारसी शैली के नाटक लेखक नारायण प्रसाद बेताब ने दूध में घुली मिसरी की डली बताया था।

मूक फिल्मों के दर्शक अब तक तो अपनी दृश्यशक्ति का उपयोग करके कथानक का रस ग्रहण करते थे। अब नेत्रों के साथ-साथ उन्हें श्रवण शक्ति का प्रयोग कर संवादों तथा गीतों का भी रसास्वादन करना था।

टॉकी फिल्मों की लोकप्रियता निरंतर बढ़ती गई। फाल्के ने अपनी मूक फिल्म 'सेतुबंध' को शीघ्र ही सवाक् बनाया। इसी प्रकार वी. शांताराम ने अपनी पहली टॉकी 'अयोध्या का राजा' को स्टेज पर उतारा। तकनीक का विकास न होने के कारण निर्माताओं के समक्ष अनेक कठिनाइयाँ थीं। साउंडप्रूफ स्टूडियो न होने के कारण अनावश्यक आवाजों से बचने के लिए रात को उस समय शूटिंग करनी पड़ती थी, जब स्टूडियो के पास से रेल की पटरी पर दौड़ने वाली आखिरी लोकल ट्रेन निकल जाती। संयोगवश अर्देशिर इंरानी का स्टूडियो रेल पटरी से ही लगता था।

अंतत: 'आलमआरा' तैयार हुई। इसमें से सात गाने थे। इनमें से जिसे लोकप्रियता मिली, उसके बोल थे 'दे दे खुदा के नाम पर' और इसे डब्ल्यू.एम. खान (वजीर मोहम्मद खान) ने गाया था। यद्यपि ये फिल्म के नायक नहीं थे किंतु उन्हें 'प्रथम हिंदी फिल्म गीत गायक' होने का श्रेय मिला। इस फिल्म की नायिका थी जुबैदा और नायक थे मास्टर विट्ठल। फिल्म में अन्य कलाकार थे पृथ्वीराज कपूर, जगदीश सेठी आदि। यहाँ एक रोचक प्रसंग उल्लेखनीय है। मास्टर विट्ठल शिक्षित नहीं थे, इसलिए निर्माताओं ने उन्हें नायक का काम देने से इस कारण इनकार किया कि वे संवाद बोलने में कठिनाई अनुभव करेंगे, किंतु मास्टर विट्ठल कंपनी के वैतनिक मुलाजिम थे। उन्होंने फिल्म में न लिये जाने को अपना अपमान समझा और कंपनी पर मुकद्दमा ठोंक दिया। गौरतलब है कि

उनके वकील थे मि. जिन्ना, जो बंबई के जाने-माने बैरिस्टर थे। उन्होंने मास्टर विट्ठल को विजय दिलाई और वे 'आलम-आरा' के नायक बने। वस्तुत: 'आलमआरा' का निर्माण पारसी नाटकों की तकनीक का विकसित रूप था, क्योंकि तब तक इस शैली के नाटकों का ही प्रचलन था। अब तक जो फिल्में बनती थीं, वे अधिकांशत: पौराणिक अथवा ऐतिहासिक होती थीं। 'आलमआरा' की प्रेम कहानी दर्शकों के लिए कुछ नवीनता लेकर आई। तब तक गायन की प्लेबैक पद्धति का प्रचलन नहीं हुआ था, अत: पात्रों को संवाद बोलने के साथ अपने गीत खुद गाने पड़ते थे। नायिका जुबैदा ने जो गीत गाया, उसके बोल थे 'बदला दिलवाएगा यारब'। सारा फिल्मांकन प्रत्यक्ष होता था, इसलिए संगीत प्रस्तुत करते समय साजिंदों को किसी पेड़ या खंभे के पीछे छिपकर बैठना पड़ता था, अन्यथा उनकी शक्लें भी दिखाई दे जातीं।

जो हो, सवाक् फिल्में चलीं तो लोगों को रोजगार के अवसर भी मिले। संवाद लेखक, गीतकार, संगीत निर्देशक, साजिंदे तथा ध्वनि को रिकार्ड करने वालों को जीविका निर्वाह के साधन मिले। अस्सी साल पुरानी 'आलमआरा' का आज कोई प्रिंट तक उपलब्ध नहीं है।

❑

3

फिल्मी गायकी के शिखर पुरुष—कुंदनलाल सैगल

जिस व्यक्ति ने विधिपूर्वक कभी संगीत नहीं सीखा, जीवन निर्वाह के लिए जो कभी कपड़ों की गाँठ पीठ पर लादे-लादे फिरता रहा, कभी रेलवे में मामूली नौकरी की तथा कभी टाइपराइटरों का एजेंट रहा, उसी कुंदनलाल सैगल ने आगे चलकर हिंदी फिल्म संगीत को श्रेष्ठता के शिखर तक पहुँचाया। उनके निधन को चौसठ वर्ष बीत चुके हैं। मात्र बयालीस वर्ष की आयु वाले सैगल ने सत्ताईस वर्ष संगीत साधना में व्यतीत किए। कुंदनलाल सैगल का जन्म 4 अप्रैल, 1904 को जम्मू में हुआ। वे मूलत: पंजाब के रहने वाले थे, किंतु उनके पिता अमरचंद सैगल जम्मू-कश्मीर राज्य में तहसीलदार थे। नौकरी से अवकाश लेने के बाद वे जालंधर में रहने लगे और यहाँ पंजपीर गेट के पास उन्होंने अपना मकान बनवा लिया था। इस जगह को अब 'सैगल मोहल्ला' के नाम से पुकारा जाता है। पिता की अपेक्षा सैगल की माँ उनके प्रति अधिक ममतामयी तथा दयालु थीं, जबकि पिता प्राय: उनसे नाराज रहते थे। इसका एक कारण तो कुंदनलाल का पढ़ने में अधिक रुचि न लेना ही था। बालक कुंदन अपने स्कूल से प्राय: भाग जाता और किसी एकांत स्थल में बैठकर दिवास्वप्नों में खो जाता। स्कूल की पढ़ाई उसके लिए भार-स्वरूप थी। पिता इसी बात को लेकर चिंतित रहते कि आगे चलकर यह लड़का किसी कार्य या व्यवसाय में ठीक-ठीक जम भी सकेगा या नहीं।

बाल्यकाल से ही सैगल की अभिनय में रुचि रही। दस बरस की आयु में उसने जम्मू में होनेवाली रामलीला में सीता का पार्ट करना आरंभ कर दिया। वह धीमी आवाज में अपने संवाद बोलता। रावण की भूमिका करनेवाला अभिनेता सुनील रैना जब सीता रूपधारी सैगल का वनवास में अपहरण करता तो कुंदन के मुँह से पूरी चीख भी नहीं निकलती थी। पढ़ाई में दिलचस्पी न रखने वाले बालक कुंदन को तो हर साल अक्तूबर के महीने में आने वाली रामलीला का इंतजार रहता। इन्हीं दिनों संगीत में भी उसकी रुचि हुई। वह प्राय: एकांत में बैठकर गुनगुनाता। घर में बैठकर गुनगुनाने में ही सारा दिन बिता देने वाले कुंदनलाल की इस आदत ने उसके पिता को अशांत और क्षुब्ध कर डाला। अपने पुत्र के भविष्य के प्रति उनकी चिंता स्वाभाविक ही थी।

अंतत: कुंदनलाल ने अपने जीवन का लक्ष्य संगीत को बनाने का निश्चय कर गृह को त्याग दिया। उस जमाने के आल इंडिया रेडियो के डायरेक्टर सैयद अली बुखारी सैगल के अंतरंग मित्र थे। उन्होंने बाद में बताया कि घर छोड़ देने के बाद भी सैगल अपनी माता को पत्र लिखकर उन्हें अपनी गतिविधियों की जानकारी देते रहते थे। किंतु उन्होंने माता को भी अपना पता नहीं बताया था। कुछ समय तक उन्होंने रैमिंगटन टाइपराइटर कंपनी में सैल्समैन का काम किया। बाद में उन्होंने रेलवे में भी नौकरी की। रेलवे के मुलाजिम प्रसिद्ध सारंगी वादक इम्तियाज अली सैगल के बारे में अपने संस्मरण सुनाते हुए बताते हैं कि सैगल अभी पूरे बीस बरस के भी नहीं थे। उन दिनों वे मुरादाबाद में थे जहाँ के अंग्रेज स्टेशन मास्टर की पत्नी उनके प्रति स्नेह रखती थी। इस अंग्रेज महिला ने सैगल को अंग्रेजी

सिखाई तथा शासकों की भाषा का पूरा अभ्यास कराया। सैगल ने संगीत की विधिवत् शिक्षा नहीं पाई थी। गायन में उनकी रुचि जन्मजात थी। संगीत साधना उनके जीवन का लक्ष्य रही, मात्र जीविकोपार्जन का साधन नहीं। प्राय: देखा जाता है कि ख्यातिप्राप्त संगीतकार अपनी फीस निश्चित किए बिना कुछ भी नहीं गाते। किंतु सैगल की प्रकृति इसके विपरीत थी। उन्होंने तो बहुत बाद में जाकर यह जाना कि संगीत के द्वारा बहुत से भौतिक लाभ भी प्राप्त किए जा सकते हैं। उनकी समसामयिक गायिका तथा प्रसिद्ध अभिनेत्री कानन देवी अपनी आत्मकथा में लिखती हैं कि एक बार शूटिंग के समय सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं और मात्र सैगल की ही प्रतीक्षा थी। जब उनका पता किया गया तो मालूम हुआ कि स्टूडियो में तो वे बहुत पहले ही आ गए हैं, किंतु वहीं किसी एकांत स्थल में बैठे हारमोनियम बजाकर आस-पास जुड़ी भीड़ को संगीत सुधा का पान करा रहे हैं। संगीत के प्रति ऐसी निष्ठा और तल्लीनता कहाँ दिखाई पड़ती है!

सारंगी वादक इम्तियाज अली बताते हैं कि उन दिनों जब सैगल मुरादाबाद में थे, तो वे खुद प्रसिद्ध गायक अब्दुल करीम खाँ साहब के पास सारंगी बजाते थे। मुरादाबाद की एक संगीत महफिल में उन्होंने श्रोताओं की मंडली में बैठे सैगल को देखा, जो खाँ साहब के गाने को तत्परता से सुन रहे थे। दो-तीन दिन बाद जब इम्तियाज अली किसी काम से मुरादाबाद रेलवे स्टेशन पर गए तो उन्होंने उस लड़के सैगल को डाक के बड़े-बड़े थैलों पर पाँव फैलाकर बैठे गुनगुनाते हुए सुना। प्लेटफार्म सुनसान था। पतझड़ के कारण यत्र-तत्र पेड़ों के सूखे पत्ते बिखरे पड़े थे। जब वे सैगल के पास गए तो पता चला कि वह राग झिंझोटी में उसी ठुमरी को गाने का प्रयास कर रहे थे जो दो दिन पहले उस महफिल में अब्दुल करीम खाँ ने गाई थी। इम्तियाज अली देर तक सैगल का गाना सुनते रहे। इसी बीच सैगल को इस बात का अहसास हुआ कि वह अकेला नहीं है, कोई उसे सुन रहा है तो सैगल खड़ा हो गया और इम्तियाज अली को आदाब कह बैठा। इम्तियाज अली उसे अपने घर ले गए। दोनों फर्श पर बिछी एक दरी पर बैठ गए। इम्तियाज अली ने जब सैगल से पूछा कि उसने संगीत की शिक्षा किससे ली तो उत्तर में उसे बताया कि उसने तो विधिपूर्वक किसी से कुछ भी नहीं सीखा है। यह भी कहा कि वह तो यों ही कुछ भजन या गजल गा लेता है। आग्रह करने पर उसने इम्तियाज को गालिब की एक गजल सुनाई जो अभोगी कान्हडा में थी। इम्तियाज ने सारंगी पर उसका साथ दिया। चाय पीकर जब सैगल जाने के लिए उठे तो आकाश में तारे छिटके हुए थे। निपुण सारंगीवादक इम्तियाज अली समझ गए कि युवक सैगल ने यद्यपि बिना तैयारी के ही गाया है किंतु इस गायक में प्रतिभा छिपी है।

इस शताब्दी के तीसरे दशक में कलकत्ता से 'जयाति' नामक एक मासिक पत्र छपता था। इसके संपादक किरीट घोष ने सैगल तथा पहाड़ी सान्याल के दो साक्षात्कार लिये, जो यथासमय प्रकाशित हुए। इस साक्षात्कार में सैगल ने माना था कि वह संगीत का छात्र कभी नहीं रहा। उसने कहा था—''मुझे संगीत के व्याकरण का आधिकारिक ज्ञान नहीं है। मेरे लिए तो संगीत एक आत्म-प्रेरणा और आत्मिक साधना है।'' उसने अपना प्रिय राग भैरवी बताया। यदि कोई इस राग को जान लेता है तो अन्य रागों का ज्ञान उसे आसानी से हो जाता है।

कलकत्ता की प्रसिद्ध फिल्म कंपनी न्यू थियेटर्स में सैगल का प्रवेश उसके जीवन का एक नूतन अध्याय था। इसके संस्थापक बी.एन. सरकार, संगीत निर्देशक रायचंद बोराल तथा पंकज मलिक—इन तीनों ने सैगल को फिल्म जगत् में प्रतिष्ठित होने में मदद की। तथापि इस पंजाबी नौजवान को कलकत्ते के संगीत तथा कला के संसार में प्रविष्ट कराने वाला उसका खुद का मित्र हरिश्चंद्र बाली था। इस शती के दूसरे दशक का बंगाल साहित्य, संगीत, चित्रकला तथा अभिनय में शीर्ष पर था। रवींद्र तथा शरत जैसे युग पुरुष साहित्यकार जहाँ निवास करते हों, जिसकी वीथियों में बाउल संगीत तथा कीर्तन की परंपरागत शैलियों के अतिरिक्त रवींद्र संगीत की मधुरिमा छाई रहती हो,

जहाँ पंकज मलिक, पहाड़ी सान्याल तथा कृष्णचंद्र डे जैसे सिद्धहस्त कलाकारों ने फिल्म संगीत को हिमालय सी ऊँचाई पर पहुँचा दिया हो, जहाँ कानन बाला, जूथिका राय, सिद्धेश्वरी देवी तथा अख्तरी बाई फैजाबादी के मधुर-कोमल स्वरों ने चारों दिशाओं को निनादित किया हो, वहाँ शास्त्रीय संगीत के क, ख से भी अपरिचित सैगल का प्रवेश पाना कितना कठिन था, इसका अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है।

जब बाली ने सैगल को न्यू थियेटर्स के गायकों में प्रवेश दिलाने की बात रायचंद्र बोराल से कही तो उन्हें बताया गया कि शास्त्रीय संगीत की प्रारंभिक जानकारी प्राप्त किए किसी गायक का यहाँ प्रवेश पाना कठिन है। तथापि जब-जब हरिश्चंद्र बाली कलकत्ता आते, वे बोराल से सैगल को काम दिलाने की बात अवश्य करते। संयोग ऐसा बना कि बोराल स्वयं सैगल की स्वर माधुरी पर लट्टू हो गए। बात उन दिनों की है जब ऑल इंडिया रेडियो की व्यवस्था इंडियन ब्रॉडकास्टिंग कंपनी के अधीन थी। बोराल इसी कंपनी में संगीत का कार्यक्रम देखते थे। सारा दिन रेडियो स्टेशन में बिताकर जब वे टैक्सी से घर लौटते तो एस्पेलेनेड रोड की एक दूकान से पान अवश्य खाते, तब टालीगंज स्थित न्यू थियेटर्स के स्टूडियो जाते और वहाँ का काम निबटाकर देर रात अपने घर पहुँचते। उनका निवास पी.सी. बरुआ स्ट्रीट पर था। हरिश्चंद्र बाली प्राय: बोराल के घर पर ही ठहरते थे किंतु जब तक बोराल घर लौटते तब तब बाली अपने शयनकक्ष में सोने की तैयारी में होते। बोराल का शयनकक्ष भी इस मेहमानखाने से जुड़ा हुआ ही था। उनका नियम था कि बिस्तर पर जाने के पहले वे एक बार नजदीक के अतिथिकक्ष की ओर नजर डाल लेते, केवल यह देखने के लिए कि घर आया मेहमान निश्चिंत होकर सो गया कि नहीं।

अब एक दिन की घटना का स्मरण खुद बोराल करते हैं। जब वे एस्पेलेनेड रोड पर पान की दूकान पर रुके तो उन्होंने अपने पीछे एक ऐसी आवाज सुनी, जिसने उनका ध्यान अनायास आकर्षित कर लिया। जब उन्होंने अपनी नजर घुमाई तो उन्हें एक लंबा सा आदमी एक अन्य व्यक्ति से बात करता नजर आया। दोनों सड़क पार करने की जल्दी में थे। बोराल ने उस आवाज वाले व्यक्ति की ओर मात्र दृष्टि ही घुमाई और अब वे टालीगंज की ओर मुड गए। रात को जब वे घर लौटे तो पता चला कि बाली दिन में ही उनके यहाँ आ गए हैं। अपनी आदत के मुताबिक जब उन्होंने बाली के कमरे में झाँका तो उन्हें सोने की तैयारी करते पाया। साथ ही देखा कि फर्श पर एक अन्य व्यक्ति चादर लपेटे सोया पड़ा है। बोराल ने जब इशारे से ही इस अजनबी के बारे में जानना चाहा तो बाली ने संकेत मात्र में उनसे कह दिया कि वे दूसरे दिन इस व्यक्ति का परिचय देंगे।

अगले दिन वही युवक बोराल के समक्ष हाथ जोड़े नमस्कार की मुद्रा में खड़ा था। उन्हें याद आया, यह तो वही युवक है जिसे उन्होंने गत सायं एस्पेलेनेड रोड पर सड़क पार करते हुए देखा था। नजदीक से देखने पर वह अधिक दुबला तथा लंबा लगा। बाली ने इस पाजामा-कुरता पहने नौजवान का परिचय कुंदनलाल सैगल कहकर दिया, साथ ही यह भी कहा कि यह एक अच्छा गायक है। सवेरे के सात बजे थे, इसलिए बोराल ने उसे टोडी भैरवी या रामकली में से किसी एक राग में गाने के लिए कहा। सैगल ने कहा कि वह किसी विशेष राग को तो नहीं जानता किंतु बता देने पर वैसा ही गा सकेगा। इस पर बोराल ने कहा कि वह अपनी इच्छा से ही कुछ गाए। वर्षों पश्चात् उस घटना को याद करते दुए बोराल ने बताया कि सैगल ने तब आसावरी राग में गाया था। इसे प्रात: काल में ही गाया जाता है।

सैगल के इस गान को सुनकर बोराल अभिभूत हो गए। यह गाना तो उनकी आशा से भी कहीं बढ़कर था। उन्हें लगा मानो पौराणिक काल का राजाश्रय में रहनेवाला कोई चारण या बंदीजन गा रहा है। सैगल द्वारा आसावरी में गाया गया यह भजन मंदिर की आरती की घंटियों तथा मसजिद की अजान की भाँति पावनता का वातावरण बनाने में समर्थ था। गाना खत्म कर सैगल बोराल के चरणों में गिर गए तथा उनसे स्वर तथा संगीत की दुनिया में प्रवेश

दिलाने की प्रार्थना की।

यहाँ से ही बोराल की कठिनाई भी आरंभ हुई। वे खुद तो सैगल के गायन से प्रभावित हुए किंतु बात तो उसे न्यू थियेटर्स में लेने की थी। उन दिनों अभिनेता खुद गाते थे और पार्श्वगायन का रिवाज नहीं था। अभिनेता का शोभन व्यक्तित्व, आकर्षक चेहरा-मोहरा तथा प्रभावशाली दिखाई देना जरूरी समझा जाता था। बँगला फिल्मों में उन दिनों प्रमथेश बरुआ, जौहर गांगुली, दुर्गादास बंद्योपाध्याय, पहाड़ी सान्याल तथा अशोक कुमार जैसी हस्तियाँ मौजूद थीं। उनके आगे सैगल कहीं टिकते नजर नहीं आते थे। फिर एक कठिनाई यह भी थी कि इस पंजाबी युवक को शांतिनिकेतन के कलात्मक वातावरण से प्रेरणा लेनेवाली बँगला संस्कृति की सुरम्य गोद में विचरने वाले बँगला रजत पट-संसार में कैसे फिट किया जाए? सबसे पहले तो यह जरूरी था कि न्यू थियेटर्स के स्वामी बी.एन. सरकार से सैगल की मुलाकात कराई जाए। उक्त घटना के कुछ दिन पश्चात् रायचंद्र बोराल सैगल को लेकर सरकार मोशाय के पास गए तथा उसके गायन की प्रशंसा करते हुए उसे न्यू थियेटर्स के संगीत विभाग में लेने की संस्तुति की।

सरकार ने इतना ही कहा—संगीत बोराल के अधिकार क्षेत्र में आता है, इसलिए इस पर फैसला वे खुद ही कर लें। बोराल के लिए यह संकेत काफी था। इसे उन्होंने बी.एन. की मौन स्वीकृति समझा।

अब बोराल सैगल को रेकार्डिंग रूम में ले गए। उसे एक चटाई पर बैठने के लिए कहा और बजाने के लिए एक हारमोनियम भी मँगा लिया, यह सोचकर कि सैगल हारमोनियम तो बजा ही लेते होंगे। सैगल ने हारमोनियम पर अपनी अंगुलियाँ रखीं और गाना आरंभ किया। उनके इस गायन ने एक चमत्कार की स्थिति पैदा कर दी। सैगल तो चटाई पर बैठे तन्मयपूर्वक गा रहे थे और उधर स्टूडियो के सब कर्मचारी अपना काम छोड़कर संगीत कक्ष के इर्द-गिर्द मंडराने लगे। सैगल एक भजन गा रहे थे, जो राग यमन या बागेश्वरी में था और लोग दम साधे खड़े सुन रहे थे। समीप के एक कमरे में अंध गायक कृष्णचंद्र डे बैठे थे। उन्होंने भी सैगल के स्वर को सुना। यद्यपि उनका कमरा काफी दूर था किंतु वे इस अपूर्व स्वर लहरी से इतने प्रभावित हुए कि वहाँ जाने के लिए आतुर हो उठे। वे वहाँ पहुँचे। इस बीच सैगल ने उस भजन को पूरा गाया, उसके बाद एक खयाल पेश किया और अंत में एक गजल गाई। प्रज्ञाचक्षु के.सी. डे मुग्ध भाव से खड़े-खड़े सैगल को सुनते रहे। जब गाना समाप्त हुआ तो वृद्ध गायक ने हाथ फैलाकर सैगल को आलिंगन में भर लिया तथा उसके माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

इसके बाद उसके न्यू थियेटर्स में प्रवेश में कोई कठिनाई थी ही नहीं। 1932 में सैगल 'मोहब्बत के आँसू', 'सुबह का सितारा' तथा 'जिंदा लाश' इन तीन फिल्मों में दिखाई पड़े। 1933 में उन्होंने 'यहूदी की लड़की' तथा 'कारवाने-हयात' में काम किया। उनके अभिनय तथा गायन का चमत्कारी प्रभाव दर्शकों ने अनुभव किया। 1934 में उनकी तीन फिल्में रिलीज हुईं—'चंडीदास', 'डाकू मंसूर' तथा 'रूप लेखा'। सैगल के गायन और अभिनय को अभूतपूर्व लोकप्रियता मिली फिल्म 'देवदास', से जो 1935 में बँगला तथा हिंदी दोनों में बनी। बँगला 'देवदास' में पी.सी. बरुआ देवदास तथा जमुना पारो (पार्वती) की भूमिका में थे। हिंदी देवदास में पारो का रोल कानन को देने का विचार था किंतु थोड़े समय पहले ही उन्होंने न्यू थियेटर्स छोड़ दिया था। अत: हिंदी 'देवदास' में भी नायिका की भूमिका जमुना को ही दी गई। काश! देवदास और पारो की भूमिका में सैगल और कानन होते तो यह फिल्म अभिनय तथा संगीत का एक अपूर्व संगम होती।

'देवदास' के संगीत निर्देशक बोराल अपने काम में मशगूल थे। वे कलकत्ता में चंद्रमुखी के कोठे पर आए देवदास की उपस्थिति में एक अन्य व्यक्ति द्वारा गाए जाने वाले गीत को तरतीब दे रहे थे। जब सैगल को पता लगा कि बोराल इन गीतों की तैयारी में लगे हैं तो वे खुद इन्हें गाने के लिए उनसे आग्रह करने लगे। उन्होंने संगीत

निर्देशक बोराल को विश्वास दिलाया कि वे अपने बँगला उच्चारण को थोड़ा ठीक कर लेंगे और तब उन्हें बँगला गीत गाना कठिन नहीं होगा। बोराल का कहना था कि सैगल के बँगला उच्चारण में परिपक्वता नहीं है और अभी उन्हें थोड़े समय तक प्रतीक्षा करनी होगी, किंतु सैगल भी अपनी बात पर दृढ़ रहे और उन्होंने बोराल को आश्वस्त कर दिया कि वे इन गानों के साथ पूरा न्याय कर सकेंगे। बोराल ने इन गानों की धुनों को गायक पंकज मलिक को ध्यान में रखकर तैयार किया था। अब वे सैगल के आग्रह को ठुकरा नहीं सके। सैगल ने उन गीतों के भावों को समझा, गाने के स्थान और स्थिति को ध्यान में रखा। बारवनिता के कोठे पर गाए जाने वाले इन गीतों में कामोत्तेजना के साथ-साथ अभद्रता या बाजरूपन के तत्त्वों का समावेश होना भी आवश्यक था। सैगल ने इन बातों को समझा और बोराल के समक्ष गाकर बता दिया। यों तो इन गीतों को गाने में कोई प्रत्यक्ष त्रुटि दिखाई नहीं दी किंतु सैगल का बँगला उच्चारण उतना सहज और स्वाभाविक नहीं था। अब बोराल के सामने यह समस्या आई कि सैगल के इस किंचित् असहज बँगला उच्चारण को श्रोता-दर्शक कैसे गले उतार पाएँगे? क्या शरत के इस अपूर्व पात्र देवदास पर बनी इस फिल्म में कोई ऐसा व्यक्ति गीत गाएगा, जिसका बँगला उच्चारण नौसिखुए जैसा हो।

अचानक बोराल को समस्या का एक समाधान सूझ गया। 'देवदास' उपन्यास के रचयिता शरतचंद्र उन दिनों अपने गाँव से कलकत्ता आए हुए थे। बोराल चाहते थे कि इस समस्या को वे शरत बाबू के समक्ष रखें और उन्हें इस परिस्थिति से परिचित कराएँ। न्यू थियेटर्स के निमंत्रण पर शरत स्टूडियो में आए। बोराल ने सैगल को बुलाया और उन्हें देवदास के स्रष्टा के सामने गाने के लिए कहा।

शरत बाबू आँखें मूँदे गायक सैगल के दिव्य गायन को सुनते रहे। सैगल का बँगला उच्चारण काफी सुधर गया था। गीत को पूरा कर वे फर्श पर बैठ गए। उन्हें फैसले की प्रतीक्षा थी। थोड़ी देर के बाद शरत ने कहा, ''यह बात ध्यान में रखने की है कि ये गीत वेश्या के कोठे पर गाए गए हैं। यह जरूरी नहीं है कि कलकत्ता की बाईजी की महफिल में केवल बंगाली रसिक ही आते हों। ऐसा स्थान तो सभी लोगों के लिए सुलभ होता है, जहाँ कोई गैर-बंगाली भी आकर गाना सुन या गा सकता है। अत: फिल्म के बँगला दर्शक तो इस बात से प्रसन्न ही होंगे, जब वे देखेंगे कि उनकी भाषा में एक ऐसा व्यक्ति गा रहा है जिसकी मातृभाषा भिन्न है।'' अंतत: बँगला फिल्म 'देवदास' के ये दो गीत 'कहारे जे जोड़ा थे चाई' और 'गोलाब हुए उथुक फुटे' सैगल ने ही गाए। बंगाल के दर्शकों ने बंगला 'देवदास' को सिर-आँखों पर लिया और यह फिल्म हिट हो गई। बहुत कम लोग जान पाए कि इन गीतों का गायक कोई पंजाबी है। उत्तर प्रदेश के जिन-जिन नगरों में बहुसंख्यक बंगाली निवास करते थे, वहाँ के सिनेमागृहों में 'देवदास' की धूम रही। लोगों ने सैगल द्वारा गाए गए गीतों के दृश्यों को देखने के लिए इस फिल्म को बार-बार देखा। ये गीत बंगाली जीवन पर अमिट प्रभाव छोड़ गए और उसके अविभाज्य अंग बने।

न्यू थियेटर्स में आने के समय सैगल की आयु मात्र छब्बीस साल की थी। मुसलिम जीवन पर आधारित उनकी पहली फिल्म 'मोहब्बत के आँसू' की नायिका अख्तारी मुरादाबादी थी। इस समय सैगल खुद को सैगल काश्मीरी के नाम से परिचित कराते थे। उन्हें भय था, यदि वे कुंदनलाल सैगल के नाम से फिल्मी दुनियाएँ में अपनी पहचान बनाएँगे तो उनके परिवार के लोग उन्हें ढूँढ़ने का यत्न करेंगे। कलकत्ता में वर्षों तक रहे सैगल को धाराप्रवाह बँगला बोलने का अभ्यास हो गया था। प्रत्येक प्रकार की गायकी पर उनका अधिकार था। बंगाल में यायावर की भाँति भ्रमण करने वाले वैष्णव बाउल साधुओं के गीत, कीर्तन तथा रवींद्र संगीत में उन्हें महारत हासिल थी। जिस आत्मविश्वास के साथ वे हिंदी और बँगला के गीत गाते, उतने ही सहज भाव से उन्होंने गालिब तथा जौक की गजलें गाई हैं तथा मातृभाषा पंजाबी के गीत भी गाए हैं।

कलकत्ता से चलकर 1941 में सैगल फिल्म राजधानी बंबई आए। यहाँ भी रजतपट संसार ने उनका दिल

खोलकर स्वागत किया। बंबई के रणजीत मूवीटोन में वे गायक-अभिनेता के रूप में रहे और 'भक्त सूरदास', 'तानसेन', 'भँवरा', 'कुरुक्षेत्र' 'शाहजहाँ' आदि फिल्मों में उनके गीत बेहद लोकप्रिय हुए। उन्होंने इस धारणा को गलत सिद्ध कर दिया कि केवल चेहरे की खूबसूरती ही अभिनय की सफलता का कारण बनती है। सैगल आम आदमी की भाँति साधारण चेहरे-मोहरे के सीधे-सादे इनसान थे। उनके चारित्रिक गुण थे दयालुता, निरभिमानता तथा विनम्रता। एक बार तेज बरसात में किसी भिखारी को भीगते-ठिठुरते देखकर वे उसे अपना सूट पहना आए। उनकी पत्नी आशा रानी ने बताया है कि उन्होंने कार के ड्राइवर को आदेश दे रखा था कि स्टूडियो से मिलने वाली सैगल की तनख्वाह वह खुद लाकर उन्हें सौंप दिया करे। उन्हें भय था कि यदि वेतन की राशि सैगल के हाथ में आई तो उसका अधिकांश दीन-दुखियों में बँट जाएगा और तब उनकी गिरस्ती का चलना कठिन होगा। सैगल अपनी कला विषयक उपलब्धियों की कभी चर्चा नहीं करते थे। आशा रानी बताती हैं कि उनके पति द्वारा की जानेवाली फिल्में, उनमें दिखाए जाने वाले असाधारण अभिनय कौशल तथा गायन की चर्चा वे दूसरों के मुँह से ही सुनती थीं।

अंतत: वे कला के क्षेत्र में सफलता तथा प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँच गए। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हॉल में प्रयाग संगीत समिति द्वारा आयोजित वार्षिक समारोह चल रहा था। उस समय के सभी संगीतज्ञ तथा शिखर कलाकार वहाँ उपस्थित थे। पं. ओंकारनाथ ठाकुर, उस्ताद फैयाज खाँ, वी.डी. पलुस्कर, नारायणराव व्यास तथा विनायकराव पटवर्धन की उपस्थिति में कार्यक्रम चल रहा था। उसी समय सैगल ने हॉल में प्रवेश किया। उन्हें देखते ही हॉल के ऊपर की गैलरियों में बैठे छात्रों ने 'सैगल-सैगल' की पुकार से उनका स्वागत किया तथा उनसे गाने का आग्रह किया। सैगल का प्यारा हारमोनियम सदा उनके साथ रहता था। उनके साथ उनकी माता तथा पत्नी आशा रानी थीं। सैगल ने छात्रों की फरमाइश पूरी की तथा उस समय की लोकप्रिय फिल्मों के गीत सुनाए। 'यहूदी की लड़की', 'चंडीदास', 'देवदास' तथा 'स्ट्रीट सिंगर' उन दिनों में चर्चित फिल्में थीं। इनके गानों के बाद गजलों और भजनों का सिलसिला चला और तब कागज की पुर्जियों पर नई-नई फरमाइशें पेश की जाने लगीं। बहुत कुछ गाकर सैगल मंच से नीचे उतरे। उन्हें खयाल था कि वहाँ पधारीं मौसिकी की मौजूदा हस्तियों को भी अपनी कला का प्रदर्शन करना है। उधर 'वँस मोर' का शोर बढ़ता ही गया तो सैगल ने हाथ जोड़कर क्षमा माँगी। उनकी दुबली और वृद्धा माँ भी श्रोताओं की कतार में बैठी थीं। अपने प्रति जनता का असीम प्यार देखकर सैगल रोमांचित हो गए। उनकी माता भी पुलकित थीं। सैगल ने वृद्धा माता का हाथ अपने हाथों में लिया और बालसुलभ सरलता से बोले, ''माँ, देखो ये लोग मुझे गाने के लिए बार-बार कह रहे हैं। वे नहीं चाहते कि मैं अपना गाना बंद कर दूँ। ये मुझे सचमुच बड़ा कलाकार समझते हैं।'' पुत्र की इस असाधारण लोकप्रियता को देखकर माता का गद्गद होना स्वाभाविक था।

काश, सैगल ने मंदिरापान के व्यसन से अपना स्वास्थ्य नष्ट नहीं किया होता तो वे कुछ अधिक जीवित रहते तथा मौसिकी की दुनिया को कुछ अधिक दे जाते। उनका स्वास्थ्य पहले भी अच्छा नहीं था। मधुमेह तथा जिगर के रोग ने उनकी काया को क्षीण बना दिया था। 1946 में जब शाहजहाँ की भूमिका करते हुए उन्होंने पत्नी मुमताज के वियोग से दुखी इस बादशाह की अंतर्वेदना को 'अब जीकर क्या करेंगे जब दिल ही टूट गया' के स्वर में मुखरित किया तो लगा कि यह पीड़ा और निराशा खुद गायक की ही है। 18 जनवरी, 1947 को उनका निधन हो गया। श्रीलंका रेडियो प्रतिदिन प्रात: उनका गाया एक गीत सुनाता है। काबुल, कुवैत, रब्बात तथा नैरोबी में उनके गीत प्रसारित होते हैं। तेहरान रेडियो उनकी गाई फारसी गजलों का प्रसारण करता है। नई पीढ़ी के श्रोता भी सैगल को भूले नहीं हैं।

सैगल द्वारा गाए गए प्रसिद्ध फिल्मी गीतों का विवरण इस प्रकार है—

1. **पूरन भगत—**(1933) भजूँ मैं तो भाव से श्री गिरिधारी, दिन नीके बीते जात हैं, अवसर बीता जाए, राधे रानी दे डारो ना बंसरी मोरी रे।

2. **यहूदी की लड़की—**(1933) नुक्ताचीं है गमे दिल उसको सुनाये न बने (गालिब की गजल), लग गई चोट करेजवा में हाय रामा, लाख सही अब पी की बतियाँ, ये तसर्रूफ अल्ला अल्ला तेरे मयखाने में है।

3. **चंडीदास—**(1934) प्रेमनगर में बसाऊँगी घर मैं तज के सब संसार (उमा शशि के साथ), तड़पत बीते दिन-रैन।

4. **देवदास—**(1935) बालम आय बसो मोरे मन में, दुख के दिन अब बीतत नाहीं।

5. **धूप छाँव—**(1935) दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग से...अंधे की लाठी तू ही है।

6. **कारवाने-हयात—**(1935) कोई प्रीत की रीत बता दे हमें—(पहाड़ी सान्याल तथा एक अन्य महिला स्वर के साथ) हैरते-नजारा आखिर बन गई रानाइयाँ।

7. **पुजारिन—**(1936) पीये जा और पीये जा, जो बीत चुकी सो बीत चुकी।

8. **प्रेसिडेंट—**(1937) हैल्लो बच्चो आओ मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ। इक बँगला बने न्यारा।

9. **धरती माता—**(1938) दुनिया रंगरंगीली बाबा, मैं मन की बात बताऊँ (उमा शशि के साथ), किसने यह सब खेल रचाया।

10. **स्ट्रीट सिंगर—**(1938) जीवन बीन मधुर ना बाजे, टूट गए सब तार, बाबुल मोरा नैहर छूटो जाए।

11. **दुश्मन—**(1939) करूँ क्या आस निरास भई, प्रीत में है जीवन जोखों।

12. **लगन—**(1941) काहे को रार मचाई, मैं सोते भाग जगा दूँगा।

13. **भक्त सूरदास—**(1942) मधुकर श्याम हमारे चोर, जिस जोगी का जोग लिया तथा **चाँदनी रात और तारे खिले हों** (खुर्शीद के साथ) रैन गई अब हुआ सवेरा, कदम चले आगे मन पाछे भागे, निस-दिन बरसत नैन हमारे, मनुआ कृष्ण नाम रटे जा, मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो।

14. **तानसेन—**(1943) काहे गुमान करे री गोरी, रुमझुम रुमझुम चाल तिहारी, बाग लगा दूँ सजनी, सप्त सुरन तीन ग्राम, बिना पंख का पंछी हूँ मैं, दिन सूना सूरज बिना।

15. **भँवरा—**(1944) क्या हमने बिगाड़ा है क्यों हमको सताते हो (अमीर बाई तथा अन्यों के साथ), हम अपना उन्हें बना न सके, दिया जिसने दिल लुट गया वह बिचारा, ठुकरा रही है दुनिया हम हैं कि सो रहे हैं (अन्यों के साथ)।

16. **मेरी बहन—**(My sister) (1944) दो नैना मतवारे तिहारे हम पर जुलम करें, हाय किस बुत की मोहब्बत में गिरफ्तार हुए, अय कातिबे तकदीर मुझे इतना बता दे क्यूँ मुझसे खफा है, क्या मैंने किया है?

17. **कुरुक्षेत्र—**(1945) किधर है तू ए मेरी तमन्ना, तू आ गई, मुहब्बत के गुल हाय गूँथता हूँ।

18. **शाहजहाँ—**(1946) गम दिए मुस्तकिल कितना नाजुक है दिल, जब दिल ही टूट गया हम जी के क्या करेंगे, चाह बरबाद करेगी हमें मालूम न था।

19. **परवाना—**(1947) टूट गए सब सपने मेरे, ए फूल हँस के बाग में कलियाँ खिलाए जा, उस मस्त नजर पर पड़ी जो नजर, कभी ऐसी भी हालत पाई जाती है। यही सैगल की अंतिम फिल्म थी।

❑

4

सौम्य गायकी के धनी—पंकज मलिक

रवींद्र संगीत को फिल्मों में नियोजित कर उसे बँगलाभाषी समाज से बाहर जन सामान्य तक पहुँचाने का श्रेय ओजस्वी एवं गंभीर आवाज के धनी पंकज मलिक को है। उनका जन्म 1904 में कलकत्ता में हुआ। प्रसिद्ध संगीतज्ञ दुर्गादास बनर्जी से उन्होंने छह वर्ष तक विधिवत् संगीत का प्रशिक्षण प्राप्त किया। उनके गायन में सौम्यता तथा भद्रता के गुण पाए जाते हैं। उनके लिए संगीत की साधना ही प्रधान थी, धन और यश को वे गौण समझते थे। एक बार वे न्यू थियेटर्स के स्टूडियो में अकेले बैठे हारमोनियम पर कोई धुन बजा रहे थे, तभी कॉलेज के कुछ छात्र आए और उनसे अपने किसी जलसे में शिरकत करने का आग्रह किया। मलिक महाशय तुरंत तैयार हो गए किंतु वहीं पर अंधगायक कृष्णचंद्र डे भी बैठे थे। उन्होंने उन छात्रों को इस महान् संगीतज्ञ का समुचित सम्मान करने का निर्देश दिया। अन्यथा पंकज मलिक ने अपनी कला का मोल-भाव कभी किया ही नहीं। वे जहाँ उच्च कोटि के गायक थे, वहाँ फिल्मी संगीत के निर्देशन में भी उन्हें महारत हासिल थी। उनका यह फिल्मी सफर 1933 से शुरू होता है जब न्यू थियेटर्स की फिल्म 'यहूदी की लड़की' में उन्होंने संगीत दिया। प्रसिद्ध नाटककार आगा हश्र कश्मीरी की लिखी इस कहानी में अधिकतम गाने थे, जिनकी संख्या उन्नीस थी। इसमें पंकज मलिक ने के.एल. सैगल से 'नुक्ताचीं है गमे-दिल', 'लग गई चोट करेजवा में' तथा 'ये तसर्रुफ अल्ला अल्ला तेरे मयखाने में है' जैसे प्रसिद्ध गीत गवाए। फिल्म 'माया' (1936) में उनके साथ रायचंद्र बोराल भी सहायक के रूप में थे। इसके अधिकांश गीत पहाड़ी सान्याल ने गाए।

1936 में जब शरतचंद्र के विख्यात उपन्यास 'गृहदाह' के कथानक को लेकर 'मंजिल' फिल्म बनी, तो आर.सी. बोराल का सहायक बनकर पंकज ने केवल संगीत निर्देशन ही नहीं किया अपितु 'सुंदर नारी प्रीतम प्यारी' जैसा रससिक्त गीत भी गाया। इसके बाद 1937 में आई प्रसिद्ध फिल्म 'मुक्ति', जिसके निर्देशक प्रमथेशचंद्र बरुआ थे। इसमें पंकज ने 'कौन देश है जाना बाबू कौन देश है जाना' तथा 'शराबी सोच न कर मतवाले' जैसे उत्कृष्ट गीत गाए। इसमें नारी स्वर कानन देवी का था। 1937 में ही 'प्रेसिडेंट' फिल्म का निर्माण हुआ। इसका संगीत बोराल तथा पंकज ने मिलकर दिया। इसमें गाए गए सैगल के चार-पाँच गीतों ने धूम मचा दी थी। फिल्म 'धरती माता' का निर्माण न्यू थियेटर्स ने 1938 में किया। इसमें 'दुनिया रंग रंगीली बाबा दुनिया रंग रंगीली' गीत था, जिसे सैगल, पंकज तथा उमाशशि ने मिलकर गाया था। न्यू थियेटर्स के मालिक बी.एन. सरकार ने उच्च कोटि के बँगला कथा साहित्य को फिल्माने में दिलचस्पी दिखाई थी। फलत: 1939 में शरत की कथाकृति 'बड़ी दीदी' तथा बंकिमचंद्र के उपन्यास 'कपाल-कुंडला' पर आधारित दो फिल्में बनीं। दोनों में पंकज मलिक ने संगीत दिया। 'कंपाल कुंडला' रहस्य-रोमांच से भरपूर कथानकवाली फिल्म थी, जिसमें प्रिय मिलन के लिए आतुर अभिसारिका के भावों को गायक पंकज ने 'पिया मिलन को जाना' गीत में सुंदर अभिव्यक्ति दी थी।

1940 में फिल्म 'नर्तकी' तथा 'जिंदगी' में पंकज का संगीत आया। 'नर्तकी' के अधिकांश गीत पंकज ने खुद

गाए थे—'मद भरी रुत जवान है', 'ये कौन आज आया सवेरे सवेरे' जैसे गीतों ने पर्याप्त लोकप्रियता अर्जित की। 'जिंदगी' के प्राय: सभी गीत सैगल ने गाए थे। फिल्म में प्रमुख भूमिका भी उनकी ही थी। बोलती फिल्मों का दूसरा दशक 1941 से 1950 तक का है। इस अवधि में उन्होंने अनेक फिल्मों में संगीत दिया, जिनमें 1941 में रिलीज हुई 'डॉक्टर' प्रमुख थी। इसमें नायक की भूमिका में खुद पंकज थे, यद्यपि अभिनय की दुनिया उनके लिए नई थी। 'डॉक्टर' में उन्होंने ताँगा हाँकते नायक के रूप में 'चले पवन की चाल जग में चले पवन की चाल' शीर्षक गीत गाया, जो दार्शनिकता से आप्लावित था। 'महक रही फुलवारी हमरी' जीवन में आनंद, संतोष तथा प्रफुल्लता का द्योतक गीत भी पंकज के स्वर से निकला था। 1942 में 'मीनाक्षी' में संगीत देते समय पंकज ने के.सी. डे से अधिकांश गीत गवाए। प्रसिद्ध गायक हेमंतकुमार भी पहली बार इसी फिल्म में अपनी गायन कला को लेकर आए। 1943 में शरत के लघु उपन्यास 'काशीनाथ' पर जब फिल्म बनी तो संगीत निर्देशक पंकज ने असित बरन तथा राधारानी से गीत गवाए। अगले वर्ष न्यू थियेटर्स की प्रसिद्ध फिल्म 'माई सिस्टर' (मेरी बहन) आई तो पंकज द्वारा दिया गया संगीत भी अपने यौवन पर आ गया। इसमें गाए गए के.एल. सैगल के गीत 'दो नैना मतवारे', 'छुपो ना छुपो ओ प्यारी सजनिया' तथा 'ए कातिबे-तकदीर मुझे इतना बता दे' उस समय के लोगों की जबान पर चढ़ गए थे। पंकज और सैगल का प्रेम और मैत्री भाव इसी तथ्य से विदित होता है कि उपर्युक्त गीत उन्होंने स्वयं न गाकर सैगल से गवाए, ताकि उनकी लोकप्रियता में वृद्धि हो।

सन् 1948, 1949 तथा 1950 में पंकज के संगीत से सजी 'ऊँच नीच', 'छोटा भाई' (शरत की लघु कथाकृति 'रामेर सुमति' पर आधारित) तथा 'रूपकहानी' तीन फिल्में आईं। अब तक बंबई फिल्म तथा फिल्मी संगीत का केंद्र बन चुका था। न्यू थियेटर्स जैसी सफल कंपनी भी अपना पुराना गौरव तथा वैभव खो रही थी। तथापि पंकज मलिक की संगीत साधना में कोई न्यूनता नहीं आई। महाकवि रवींद्रनाथ का यह नियम था कि वे अपने गीतों को गाने की इजाजत उन्हीं फिल्मकारों को देते थे, जो उनके उपन्यासों तथा कहानियों पर आधारित फिल्में बनाते थे। किंतु पंकज मलिक के संगीत कौशल से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मलिक मोशाय को ऐसी फिल्मों में भी स्वरचित गीत प्रयुक्त करने की आज्ञा दे दी, जो किसी अन्य लेखक की कथा पर आधारित होती थीं। फिल्म 'मुक्ति' में पंकज ने रवींद्र संगीत का प्रयोग अत्यंत कुशलतापूर्वक किया था। बँगला में एक फिल्म 'पराजय' नाम की बनी थी, जिसमें रवि ठाकुर के एक गीत 'प्राण चाय ना चक्षु चाय' को कानन देवी ने गाया था। इसका हिंदी रूप पंकज ने 'प्राण चाहे नैनन चाहे और तू क्यूँ यूँ शरमाए' गाया, जो अत्यंत लोकप्रिय हुआ। पंकज द्वारा गाया गया भजन 'तेरे मंदिर का हूँ दीपक जल रहा' भक्ति तथा समर्पण को भाव-स्फूर्त शैली में प्रस्तुत करने का सफल उदाहरण है।

सैगल तथा पंकज एक ही साल 1904 में जनमे थे। सैगल ने जहाँ शराब के पीछे अपने स्वास्थ्य को गँवाया, वहाँ पंकज ने संगीत को एक साधना के रूप में लिया। जिस न्यू थियेटर्स से उन्होंने अपनी युवावस्था में नाता जोड़ा, उसे पूरी तरह से निभाया। संगीत शिक्षा और स्वर लिपि विषयक कुछ पुस्तकें भी उन्होंने लिखीं। 74 वर्ष की आयु भोगकर 19 फरवरी, 1978 को उनका निधन हुआ, किंतु अपने जीवन काल में ही उनकी साधना फलवती हुई थी। उन्हें सुर सागर (1932), संगीत रत्नाकार (1956), भारत सरकार का सम्मान पद्मश्री (1970) तथा फिल्म क्षेत्र का सर्वोच्च सम्मान दादा साहब फाल्के पुरस्कार 1973 में प्राप्त हुआ। निश्चय ही संगीत गगन में ध्रुव नक्षत्र की भाँति प्रकाशमान् पंकज मलिक ने फिल्मी गायकी में अपना ध्रुव स्थान बना लिया था।

❑

5

गायन और अभिनय का अपूर्व संगम सुरेंद्रनाथ में देखा गया

अभिनय में कुशल होने के साथ-साथ गायन में भी निपुणता प्राप्त करना आज के अभिनेताओं में दुर्लभ है, किंतु आधी सदी पहले के कलाकारों में ये दोनों कलाएँ मणिकांचन संयोग की भाँति सर्वथा सुलभ थीं। पंजाब से आकर कला नगरी बंबई में अपनी अभिनय-चातुरी तथा गायन क्षमता को दिखाने वाले सुरेंद्र को आज की पीढ़ी भूल चुकी है। पूरी कद-काठी के धनी सुरेंद्र या सुरेंद्रनाथ का जन्म पंजाब के बटाला कस्बे में 11 नवंबर, 1910 को हुआ। उनकी शिक्षा बी.ए., एल-एल.बी. तक हुई थी और वे इस उपाधि का प्रयोग अपने नाम के साथ बराबर करते थे। उनकी आवाज में एक विशेष प्रकार की गंभीरता तथा ठहराव था, जिसके कारण उनका गायन लोगों द्वारा प्रशंसित होता था। मित्रों की सलाह से वे फिल्मों में अपना भाग्य आजमाने के लिए बंबई आ गए। 1936 में सागर मूवीटोन की फिल्म 'डैकन क्वीन' में उन्हें नायक की भूमिका मिली और इसी में उन्होंने अपना पहला गीत 'याद न कर दिले हजीं भूली हुई कहानियाँ' गाया। इस गीत ने ही सुरेंद्र की गायकी का सिक्का फिल्म जगत् में जमा दिया। उन दिनों फिल्म संगीत में सैगल की धूम थी और रसिकश्रोता देवदास की विरह वेदना को व्यक्त करने वाले गीत 'बालम आय बसो मोरे मन में' पर सौ जान से फिदा थे। जब सुरेंद्र ने उसी लहजे में एक अन्य गीत 'बिरहा की आग लगी मोरे मन में' गाया तो लगा मानो दूसरा सैगल अवतरित हो गया है।

1936 में बनी 'डैकन क्वीन' से सुरेंद्र की जो कला यात्रा आरंभ हुई, उसकी समाप्ति 1954 में फिल्म 'गवैया' के साथ हुई। इस अवधि में उन्होंने लगभग पैंतीस-चालीस फिल्मों में काम किया। 1936 में फिल्म 'मनमोहन' रिलीज हुई, जिसका संगीत अशोक घोष ने तैयार किया था। इसमें सुरेंद्र का गायन लाजवाब था। विशेष रूप से मिस बिब्बो के साथ गाया गीत 'तुम्हीं ने मुझको प्रेम सिखाया सोये हुए हृदय को जगाया' , जो वर्षों तक लोगों के कंठों से गूँजता रहा। प्रेम की कोमल भावनाओं की यह रससिक्त अभिव्यक्ति थी जो इन दोनों (सुरेंद्र और बिब्बो) के सुरों से निकली। 1936 में उनकी 'विलेज गर्ल' नामक सामाजिक फिल्म आई, जिसमें नायिका थीं सविता देवी। इसमें गाया गया सुरेंद्र का गीत 'किसने है यह रीत बनाई' काफी लोकप्रिय हुआ। अगले वर्ष 1937 में जब सागर कंपनी ने 'जागीरदार' फिल्म बनाई तो पुन: सुरेंद्र को बिब्बो के साथ गाने का अवसर मिला। इसमें इनका युगल गीत 'पुजारी मोरे मंदिर में आओ' वर्षों तक लोगों का कंठहार बना रहा।

अपने फिल्मी जीवन के आरंभिक वर्षों में सुरेंद्र सागर मूवीटोन से जुड़े रहे। उनकी अन्य फिल्में थीं 'कल की बात' (1937), 'महागीत' (1937), जिसका संगीत अनिल बिस्वास ने दिया था। 'डाइनामाइट' (1938) में उन्हें पुन: मिस बिब्बो के साथ 'ओ जादूगर मतवाले' गाने का मौका मिला। यही कहानी 'ग्रामोफोन सिंगर' में भी दोहराई गई। 1938 में बनी इस फिल्म में बिब्बो तथा सुरेंद्र की कोमल स्वर लहरियाँ 'मैं तेरे गले की माला, तू सागर मैं सरिता, तू कवि मैं कविता' गीत के द्वारा गूँज उठीं। अनिल बिस्वास के संगीत निर्देशन में गाए गए इस फिल्म के गीतों की रचना जिया सरहदी ने की थी। उनकी अन्य फिल्में थीं 'कामरेड्स' (1939), 'सर्विस लिमिटेड' या 'सेवा समाज' (1939)। अलीबाबा की फंतासी कथा पर आधारित फिल्म 1940 में बनी। इसमें एक अन्य गायिका वहीदन के साथ सुरेंद्र ने एक गीत 'हम और तुम और ये खुशी, कहकहे और दिल्लगी, छिटकी हुई है चाँदनी' गाया। इसी फिल्म के दो अन्य गीत भी उनके द्वारा वहीदन बाई के साथ गाए गए थे—'दिल छीन के जाता है, ए मस्त नजरवाले' तथा 'तेरी इन आँखों ने किया बीमार'।

1940 की समाप्ति तक सुरेंद्र फिल्म जगत् में सुप्रतिष्ठित हो चुके थे। अब सागर मूवीटोन के अतिरिक्त अन्य फिल्म निर्माता कंपनियाँ भी उन्हें अपने से जोड़ने में गर्व महसूस करती थीं। नेशनल स्टूडियो (फिल्म : 'गरीब' तथा 'जवानी'), अमर पिक्चर्स ('पैगाम', 'रजावली'), नवीन पिक्चर्स ('भरतरी'), लक्ष्मी पिक्चर्स ('मिस देवी'), मुरारी पिक्चर्स (ऐतिहासिक फिल्में 'अठारह सौ सत्तावन' तथा 'चित्तौड़ विजय'), मिनर्वा मूवीटोन ('मँझधार') के अतिरिक्त प्रसिद्ध निर्माता महबूब ने भी उन्हें अपनी प्रसिद्ध फिल्म 'अनमोल घड़ी' (1946) तथा 'एलान' (1947) में अभिनय तथा गायन का अवसर दिया। इन दोनों फिल्मों में संगीत नौशाद ने दिया था। नूरजहाँ के साथ गाया गया उनका गीत 'आवाज दे कहाँ है' आज भी वातावरण में अपनी अनुगूँज छोड़ता है, जब सुरेंद्र की दर्द भरी आवाज गाती है—'किस्मत पै छा रही है रात की सियाही'। 'एलान' में गाया गया उनका गीत 'तेरा जहाँ आबाद है' भी काफी लोकप्रिय हुआ था।

सुरेंद्र ने गायिका हुस्ना बानो के साथ फिल्म 'जवानी' (1942) में दो सुंदर गीत गाए थे—'आई बसंत रुत मदमाती' तथा 'बदनाम ना हो जाना'। इससे पहले चालीस के दशक में बनी उनकी अंतिम फिल्म 'औरत' में उनकी सहगायिका ज्योति थी, जिसके साथ सुरेंद्र ने चार गीत गाए—'बोल बोल रे बोल, वन के पंछी बोल', 'अपने मस्तों को बेसुध बना दे', 'तुम रूठ गई' तथा 'उठ सजनी खोल किवाड़ें'। फिल्म 'गरीब' 1942 में बनी, जिसमें सुरेंद्र ने गाया 'मुझको जीने का बहाना मिल गया'। 1943 में बनी 'पैगाम' का संगीत प्रसिद्ध निर्देशक ज्ञानदत्त ने दिया था, जिसका गीत 'जो दिल में आए' लोकप्रिय हुआ था। 1943 में बनी फिल्म 'विश्वास' में उन्हें मेहताब के साथ गाने का अवसर मिला। यहाँ 'सावन की रुत आई सजनिया' जैसा मोहक गीत सुनने को मिला। 'अनमोल घड़ी' के पहले भी सुरेंद्र फिल्म 'लाल हवेली' (1944) में नूरजहाँ के साथ 'मोहनिया सुंदर मुखड़ा खोल' जैसा मादक गीत गा चुके थे। इसी फिल्म में उनका एकल गीत था—'क्यूँ मन ढूँढ़े प्रेम नदी।'

1944 में श्रृंगार और वैराग्य के विपरीत भावों को एक साथ अभिव्यक्त करने वाली फिल्म 'भरतरी' आई। इसका संगीत प्रसिद्ध निर्देशक खेमचंद प्रकाश ने दिया था। सुरेंद्र ने इसमें एक गीत गाया—'भँवरा मधुबन में मत जा'। अमीर बाई कर्नाटकी के साथ गाया गया उनका सहगान 'भिक्षा दे दे मैया पिंगला, जोगी खड़ा है दुआर' पुराना होने पर भी अपने शाश्वत संदेश के कारण अद्यापि नूतन बना हुआ है। अमीर बाई के साथ 1947 में बनी 'एलान' में भी उन्होंने एक गीत गाया था—'आईने में एक चाँद-सी सूरत नजर आई।' देश के स्वतंत्र हो जाने के पश्चात् सुरेंद्र वर्षों तक सक्रिय रहे। 1948 में बनी फिल्म 'मेरी कहानी' में उन्होंने गाया—'दिल आने के ढंग निराले हैं।' इससे पहले सुरैया के साथ फिल्म 'अठारह सौ सत्तावन' में उन्होंने एक अन्य मधुर गीत गाया—'तेरी नजर में मैं रहूँ और मेरी नजर में तू'। 'मेरी कहानी' में गीता राय (बाद में गीता दत्त) भी उनकी सहगायिका रह चुकी थीं। इन दोनों का गाया गीत था 'बुलबुल को मिला फूल'। 1948 में नौशाद के कुशल निर्देशन में बनी फिल्म 'अनोखी अदा' में शमशाद बेगम के साथ गाया गया उनका गीत 'क्यूँ उन्हें दिल दिया, हाय ये क्या किया' तो हर तरह से लाजवाब है, जिसमें प्रेम की पीड़ा और विरहासक्ति को साकार किया गया है। बर्मन दादा (एस.डी. बर्मन) ने 1949 में बनी फिल्म 'कमल' में उनसे जो गीत गवाया, उसके बोल थे—'झूम झूम के नाच रे मनवा', 'क्यों याद आ रहे हैं गुजरे हुए जमाने', 'अनमोल घड़ी' के इस गीत को सुनकर विगत युग के गायक-अभिनेता सुरेंद्र की यादें ताजी हो जाती हैं, जिसने अपने जमाने की मिस बिब्बो, वहीदन बाई, ज्योति, हुस्ना बानो, मेहताब, अमीर बाई कर्नाटकी, सुरैया तथा गीता राय जैसी गायिकाओं के साथ गीत गाकर हिंदुस्तानी मौसिकी को एक नया अंदाज तथा नया सुरूर दिया था। अस्सी के दशक में सुरेंद्र का अवसान एक युग की समाप्ति ही थी।

❑

6

प्रेम और सौंदर्य के गायक—जगमोहन

प्रेम एवं सौंदर्य को अपनी मीठी आवाज से सरस अभिव्यक्ति देने वाले गायक जगमोहन का जन्म 6 सितंबर, 1918 को कलकत्ता के एक संपन्न परिवार में हुआ था। गायन में उनकी रुचि बचपन से ही थी। बाद में उन्होंने कलकत्ता के भीष्मदेव चटर्जी तथा पांडिचेरी के दिलीपकुमार राय से संगीत की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की। संगीत के प्रख्यात साधक दिलीपकुमार राय बँगला के नाटककार द्विजेंद्रलाल राय के पुत्र तथा अरविंदाश्रम पांडिचेरी के प्रसिद्ध साधक थे। जगमोहन का नाम तो जगन्मोहन मित्र था किंतु संगीत जगत् में वे जगमोहन के नाम से जाने गए। हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् जगमोहन ने अखिल बंगाल संगीत प्रतियोगिता में भाग लिया तथा ध्रुपद, टप्पा, ठुमरी, कीर्तन तथा बाउल गायन में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। अगले वर्ष वे इलाहाबाद में आयोजित अखिल भारतीय स्तर की संगीत प्रतियोगिता में सम्मिलित हुए और खयाल गायन में प्रथम रहे।

1937 में जगमोहन ने आल इंडिया रेडियो में नियमित गायन का कार्य स्वीकार किया। उनका एक मधुर गीत 'मुझे न सपनों से बहलाओ' इसी वर्ष रेकार्ड किया गया, जिससे उन्हें व्यापक ख्याति मिली।

गैर-फिल्मी गायकी में जगमोहन को जब प्रसिद्धि मिल गई तो फिल्म निर्माताओं का ध्यान उनकी ओर गया। 1943 में उन्होंने बँगला फिल्म 'पापेर पाथे' में हिमांशु दत्त के निर्देशन में पहला बँगला गीत गाया—'मधुकर सपने जागी कि बानी काय।' गीत रचना शैलेन राय की थी। बँगाली फिल्मों में अपने गायन की धूम मचाने के पश्चात् जगमोहन हिंदी फिल्मों की ओर आए। 1942 में उन्हें 'भक्त कबीर' फिल्म के लिए अनुबंधित किया गया। इसके बाद 1950 तक वे फिल्मों द्वारा अपनी मधुर आवाज पहुँचाते रहे। इस अवधि में जिन फिल्मों में उनका गायन गूँजा, वे हैं—'भक्त कबीर', 'हॉस्पिटल', 'आरजू', 'मेघदूत', 'अरेबियन नाइट्स', 'कृष्ण लीला', 'पहचान', 'जमीन आसमान', 'विजय यात्रा', 'लॉटरी', 'शादी के बाद' तथा 'कश्मीर हमारा है'।

जगमोहन को उनके संगीत के कारण बंगाल सरकार ने 'सुर सागर' की उपाधि प्रदान की। 1950 में वे कलकत्ता विश्वविद्यालय में संगीत के परीक्षक बनाए गए। देश के अनेक महापुरुषों से जगमोहन का निकट का संबंध रहा। रवींद्र संगीत उन्होंने स्वयं गुरुदेव रवींद्रनाथ से सीखा था। अपना लोकोत्तर गायन उन्होंने महात्मा गांधी तथा लोकनायक जयप्रकाश नारायण के समक्ष प्रस्तुत किया था। विदेशों में जाकर वहाँ के श्रोताओं को उन्होंने अपनी दिव्य गायकी का प्रसाद बाँटा। पूर्वी अफ्रीका, इंग्लैंड, अमेरिका तथा कनाडा में संपन्न उनकी संगीत यात्राएँ अत्यंत सफल रहीं। उन्होंने अपनी आत्मकथा मातृभाषा बँगला में लिखी, जो 1986 में प्रकाशित हुई। कालांतर में वे अपने पुत्र के पास दिल्ली में रहने लगे। यहीं उनका निधन हुआ।

जगमोहन को फिल्मी तथा गैर-फिल्मी दोनों शैलियों के गीतों से लोकप्रियता मिली। उनके गैर-फिल्मी प्रसिद्ध गीत हैं—'मेरी अँखियाँ बनीं दीवानी', 'प्यारी तुम कितनी सुंदर हो', 'यह चाँद नहीं तेरी आरती है', 'एक बार मुस्करा दो', 'मुझ को है तुमसे प्यार क्यों ये न बता सकूँगा मैं', 'दिल देके दर्द लिया मैंने', 'मुझे न सपनों से

बहलाओ, 'भूल चुका हूँ मीठे सपने' आदि। प्रेम और सौंदर्य के लोकोत्तर भावों से आप्लावित इन रस भरे गीतों को भुलाना श्रोताओं के लिए कठिन था। ये गीत 1937 तथा 1950 के बीच में गाए गए थे। 1945 में महाकवि कालिदास की अमर कृति 'मेघदूत' पर जब देवकी कुमार बोस के निर्देशन में फिल्म बनी और संगीत निर्देशक कमलदास गुप्ता ने जगमोहन से जब गीत गवाए तो ऐसा लगा, मानो प्रियतमा के वियोग से पीड़ित यक्ष की आत्मा ने स्वरों का रूप ले लिया है। 'ओ वर्षा के पहले बादल मेरा संदेशा लेता जा' इस पंक्ति में मानो 'मेघदूत' का निम्न श्लोक गूँज उठा—

आषाढस्य प्रथम दिवसे मेघमाश्लिष्ट सानुं
वप्रक्रीडा परिणत गजः प्रेक्षणीयं ददर्श॥

❑

7

संगीत के सौम्य साधक—मुकेश

मुकेश (पूरा नाम मुकेशचंद्र माथुर) फिल्म संगीत के एक प्रकाशमान नक्षत्र ही नहीं, एक सच्चे इनसान तथा मानवता के पुजारी थे। उनका जन्म 22 जुलाई, 1923 को दिल्ली के एक प्रतिष्ठित माथुर कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम जोरावरचंद माथुर तथा माता का नाम चाँद रानी था। ये अपने माता-पिता की छठी संतान थे। मुकेश की शिक्षा मैट्रिक तक हुई। बाल्यकाल से ही उन्हें संगीत से अगाध प्रेम था। सत्रह वर्ष की आयु में 1940 में वे अभिनेता बनने के इरादे से बंबई आए। स्व. मोतीलाल तथा गायक मोती सागर (गायिका प्रीति सागर के पिता) मुकेश के परिचित तथा सजातीय थे। 1941 में मोतीलाल की सिफारिश पर मुकेश को फिल्म 'निर्दोष' में एक भूमिका मिली। उन्होंने उस जमाने की प्रख्यात अभिनेत्री नलिनी जयवंत के साथ काम किया, किंतु यह फिल्म सफल नहीं रही। रणजीत मूवीटोन में वे एक अभिनेता के रूप में तीन साल तक अनुबंधित रहकर अभिनय करते रहे, किंतु न तो उनकी कोई फिल्म पूरी हुई और यदि पूरी भी हुई तो प्रदर्शित नहीं हो सकी।

अब जादूनगरी बंबई में अपना वक्त गुजारने के लिए मुकेश यार-दोस्तों की महफिलों में गा-गाकर शोहरत हासिल करने लगे। जिन फिल्मों में उन्होंने अपने भाग्य की अभिनेता के तौर पर आजमाइश की, वे थीं—'दुख-सुख' तथा 'आदाब अर्ज', जिनमें वे असफल रहे किंतु संगीत की दुनिया में प्रवेश के द्वार उनके लिए शीघ्र ही खुल गए। 1945 का वर्ष मुकेश के लिए संगीत के रसमय संसार में प्रवेश करने का उत्साहवर्धक संदेश लेकर आया। फिल्म 'पहली नजर' में उन्हें गाने का अवसर दिलाने में मोतीलाल तथा मोती सागर जैसे दोस्तों तथा शुभचिंतकों का हाथ था। उस समय पंकज मलिक तथा कुंदनलाल सैगल फिल्मी गायन में शिखर पर थे। मुकेश ने पंकज मलिक के प्रसिद्ध गीत 'पिया मिलन को जाना' की तर्ज पर एक पैरोडी भजन 'गोकुल नगरी जाना' गाया, जो खूब चला। 'पहली नजर' में मुकेश ने जो गीत गाया, उसके बोल थे 'दिल जलता है तो जलने दे'। यद्यपि चचेरे भाई मोती सागर तथा अभिनेता मोतीलाल की सिफारिश से उन्हें गाने का मौका तो मिला, किंतु फिल्म के संगीत निर्देशक अनिल बिस्वास को इस बात का कतई भरोसा नहीं था कि नया गायक मुकेश अपने गायन द्वारा कोई खास प्रभाव छोड़ सकेगा। अत: उनका आग्रह था कि गाने के लिए पुराने गायक दुर्रानी को ही कहा जाए। किंतु इस फिल्म में नायक की भूमिका करने वाले मोतीलाल अड़ गए। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि यदि मुकेश को गाने का मौका नहीं दिया गया तो नायक होने के नाते अपना गाना वे खुद गाएँगे। अंत में मोतीलाल की ही बात रही और मुकेश ने उपर्युक्त गीत गाया, जो पूर्ण सफल रहा। गायन में सैगल की गायकी का स्पष्ट प्रभाव था।

प्रारंभ में मुकेश की गायकी पर सैगल का काफी असर रहा। रणजीत स्टूडियो में रहते समय जब स्टूडियो के मालिक सेठ चंदूलाल शाह ने मुकेश के गायन का परीक्षण करने के लिए उन्हें गाने को कहा तो उन्होंने सैगल के ही दो गीत पेश किए थे—'ए कातिबे तकदीर तू मुझे इतना बता दे' तथा 'नैनहीन को राह दिखा प्रभु'। कहते हैं कि मुकेश के गाए इन गीतों को पास से गुजरते सैगल ने सुना तो उनके पाँव वहीं थम गए। उन्हें आश्चर्य था कि उनकी

गायकी को हू-ब-हू अपने स्वरों में समाहित कर लेने वाला यह गायक कौन है? जब उन्हें बताया गया कि यह नया गायक मुकेश है तो उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया तथा उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना की।

1945 में रणजीत मूवीटोन की फिल्म 'मूर्ति' में मुकेश ने हमीदा तथा ख़ुर्शीद के साथ एक अत्यंत मार्मिक तथा भावपूर्ण गीत गाया—'बदरिया बरस गई उस पार'। अगले वर्ष फिल्म 'राजपूतानी' में हमीदा के साथ उन्हें एक अन्य मधुर गीत गाने का अवसर मिला 'जा परवाने जा, कहीं शमा जल रही है'। ये दोनों गीत प्रसिद्ध संगीतकार बुलो सी. रानी ने तैयार किए थे। 'दिल जलता है', 'बदरिया बरस गई' तथा 'जा परवाने जा'—मुकेश के आरंभिक सफल गीतों की त्रिपुटी है, जिस पर आज भी पुराने गीतों के शौकीन सौ जान से न्योछावर हैं।

आगे चलकर संगीत के क्षेत्र में मुकेश ने जो उपलब्धियाँ प्राप्त कीं, उनका एक पूरा इतिहास है। राजकपूर द्वारा बनाई गई फिल्मों में मुकेश ने जितने गीत गाए, वे सभी लोकप्रियता की सीमा को लाँघने वाले साबित हुए। अपनी फिल्मी सफलता के कारणों पर बात चलने पर राज कपूर कहा करते थे—''मुकेश मेरी आवाज है तो गीतकार शैलेंद्र तथा हसरत जयपुरी मेरी दो आँखें हैं। शंकर जयकिशन (संगीत-निर्देशक) मेरे दो हाथ हैं और मेरी यूनिट मेरे पाँव हैं, जिनके सहारे खड़ा होकर मैं कला की रपटीली पगडंडी पर सफलतापूर्वक चल सका हूँ।'' मुकेश का गायकी का जीवन लगभग पैंतीस वर्ष तक निर्बाध गति से चला। यद्यपि बीच-बीच में कुछ क्षण ऐसे भी आए जब उन्हें काम नहीं भी मिला। फिर भी वे जीवन की अंतिम घड़ियों तक संगीत साधना के लिए समर्पित रहे। इस अवधि में उन्होंने लगभग 10,000 गीत गाए। फिल्मी तथा गैर-फिल्मी हिंदी गीतों के अलावा उन्होंने उर्दू, पंजाबी तथा मराठी में भी गाया। उनके गायन को एकाधिक बार सम्मानित किया गया। तीन बार उनके गानों को फिल्म फेयर पुरस्कार मिला—प्रथम 1957 में 'अनाड़ी' के गीत 'सब कुछ सीखा हमने न सीखी होशियारी', दूसरा 1970 में 'पहचान' फिल्म में गाए गए गीत 'गंगाराम की समझ में न आए' के लिए तथा तीसरा 1972 में फिल्म 'बेईमान' के गीत 'जय बोलो बेईमान की' के लिए। 1975 में फिल्म 'रजनीगंधा' में गाए गए गीत 'कई बार यूँ ही देखा है' के लिए उन्हें भारत सरकार का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला।

एक पत्रकार द्वारा यह पूछने पर कि वे अपने गाए गीतों में सर्वश्रेष्ठ दस गीत बताएँ, उन्होंने कहा कि एट रैंडम बताना बड़ा मुश्किल है, किंतु बहुत इसरार करने पर उन्होंने निम्न दस बताए—1.' जिंदगी ख्वाब है', 2. 'सजन रे झुठ मत बोलो', 3. 'ओ जाने वाले हो सके तो लौट के आना', 4. 'जीना यहाँ मरना यहाँ', 5. 'जलता हुआ दीया हूँ', 6. 'आवारा हूँ', 7. 'दोस्त दोस्त न रहा', 8. 'सुहाना सफर और ये मौसम हसीं', 9. 'तू कहे अगर' तथा 10. 'कोई जब तुम्हारा हृदय तोड़ दे'। मुकेश के गायन में दर्द और पीड़ा का स्वर प्रधानत: उभरा है, किंतु जीवन की उल्लासमयी घड़ियों को अभिव्यक्ति देने में भी वे पीछे नहीं रहे। उदाहरण के लिए 'मेरा जूता है जापानी', 'बेगानी शादी में अब्दुल्ला दीवाना', 'मेरा नाम राजू', 'मेरे मन की गंगा', 'कहता है जोकर' तथा 'सावन का महीना पवन करे सोर' जैसे गीत मनुष्य की सहज प्रफुल्लता तथा मानसिक प्रसन्नता के भावों को उजागर करते हैं।

मुकेश के गाए गीतों ने देश की सीमाओं को लाँघकर विदेशों में भी अपार लोकप्रियता प्राप्त की थी। रूस के श्रोता 'मेरा जूता है जापानी' तथा 'आवारा हूँ' जैसे गानों पर सौ जान से फिदा थे। उनके जीवन की आखिरी घड़ियाँ अमेरिका में बीतीं, जहाँ उन्होंने लता मंगेशकर के साथ निरंतर कई दिनों तक भिन्न-भिन्न नगरों में अपने चुने हुए गीत गाए थे।

शंकर जयकिशन के अतिरिक्त अन्य संगीत निर्देशकों ने भी मुकेश से अनेक गीत गवाए। रूस के प्रसिद्ध लेखक फ्योदर दास्तावस्की के प्रख्यात उपन्यास 'अपराध और दंड' पर बनी फिल्म 'फिर सुबह होगी' में उनका आशावादी स्वर इस गीत में फूट पड़ा—'वो सुबह कभी तो आएगी'। 1958 में बनी इस फिल्म के गीत साहिर

लुधियानवी ने लिखे थे तथा संगीत खय्याम का था। इससे आठ वर्ष पहले फिल्म 'बावरे नयन' केदार शर्मा के निर्देशन में बनी थी। इसमें मुकेश का निराशावादी स्वर उभरा 'तेरी दुनिया में दिल लगता नहीं' किंतु इससे बढ़कर राजकुमारी तथा गीता राय के साथ गाए गए उनके दो गीतों ने अधिक लोकप्रियता अर्जित की। ये थे 'मुझे सच सच बता दो' (राजकुमारी के साथ) तथा 'खयालों में किसी के इस तरह आया नहीं करते' (गीता राय के साथ)। प्रसिद्ध संगीतकार कल्याणजी-आनंदजी ने मुकेश से लगभग 57 फिल्मों में गीत गवाए। लक्ष्मीकांत-प्यारे लाल (44 फिल्में), उषा खन्ना (लगभग 22 फिल्में), ओ.पी. नैयर, सचिनदेव बर्मन, राजेश रोशन, राहुल देव बर्मन, नौशाद, चित्रगुप्त, सलिल चौधरी आदि सभी विख्यात संगीत निर्देशकों ने मुकेश से गीत गवाए थे। मुकेश की गायकी के अनेक रंग थे। उन्होंने अपने गीतों में श्रृंगार के संयोग तथा वियोग, दोनों पक्षों के अलावा करुण, हास्य आदि रसों को पूर्ण सफलता से प्रस्तुत किया था। पं. जवाहर लाल नेहरू मुकेश की गायकी के कायल थे। उन्होंने एक बार उन्हें अपने निवास पर आमंत्रित किया तथा फिल्म 'शीशम' में गाया गया उनका यह गीत सुना—

सताएगा किसे तू आसमां जब हम नहीं होंगे।
दिए हैं तूने ऐसे गम कभी जो कम नहीं होंगे।

पंडितजी मुकेश की दर्द भरी आवाज से बहुत प्रभावित थे।

*****

मुकेश का दांपत्य जीवन अत्यंत सुखद तथा प्रेमपूर्ण रहा। उन्होंने सरला बेन (पुकारने का नाम बच्ची बेन) से प्रेम विवाह किया था। उन्होंने अपने जीवन को सदा आनंद, उल्लास तथा प्रफुल्लता के साथ जिया। उनके ड्राइंगरूम में एक अंग्रेजी वाक्य लिखा हुआ था—''I am boss of this house, but take my wife's permission to say so'' मैं इस घर का मालिक हूँ लेकिन ऐसा कहने के लिए मेरी पत्नी की इजाजत ले लो। हर स्थिति में प्रसन्न और मुसकराते रहना उनके जीवन का निर्देशक सिद्धांत रहा। अपनी एक तस्वीर के नीचे उन्होंने यह वाक्य अंकित कर दिया था—''If some one is without a smile, give one of yours.'' अगर किसी की मुसकान छिन गई है तो उसे अपनी मुसकानों में से एक दे दो।

मुकेश की मृत्यु का समाचार सुनकर राजकपूर स्तब्ध रह गए थे। वे दो दिन तक मौन रहे और किसी से बात तक नहीं की। जब वे संयत और आत्मस्थ हुए तो उन्होंने इतना ही कहा, ''मेरी रोशनी चली गई, मुकेश के मरने से मेरी तो आवाज ही चली गई। मैं यतीम हो गया हूँ। मेरा वही हाल हुआ है—'जिंदा हूँ इस तरह कि गमे जिंदगी नहीं, जलता हुआ दीया हूँ मगर रोशनी नहीं'।'' लता मंगेशकर मुकेश को बड़ा भाई मानती थीं तथा रक्षाबंधन के दिन उन्हें राखी बाँधती थीं। फिल्म संगीत के इतिहास में मुकेश एक सौम्य संत और साधक के रूप में स्मरण किए जाएँगे।

❑

8

सैगल का प्रतिरूप—गायक सी.एच. आत्मा

फिल्म संगीत को सिंध प्रांत (अब पाकिस्तान में) का योगदान यद्यपि बहुत अधिक नहीं रहा, किंतु उसे सर्वथा नगण्य भी नहीं कहा जा सकता। 10 दिसंबर, 1923 को हैदराबाद सिंध में जनमे चैनानी हशमतराय ही संगीत की दुनिया में सी.एच. आत्मा के नाम से जाने गए। जब वे बालक ही थे, तब उन्हें महान् गायक कुंदनलाल सैगल के गीतों ने प्रभावित किया और उनके गीतों को गुनगुनाते हुए वे सैगलमय हो गए। अपनी आरंभिक शिक्षा हैदराबाद तथा कराची में पूरी कर वे वायर लैस ऑपरेटर का प्रशिक्षण लेने लगे। इसी सिलसिले में उनका 1945 में बंबई आना हुआ तो वे अपने आराध्य सैगल से बिना मिले नहीं रह सके। एक दिन वे सैगल के निवास पर जाकर उस महान् संगीतज्ञ से मिल आए। उनके हस्ताक्षर भी लिये किंतु न तो उनकी फोटो खींचने का अवसर उन्हें मिला और न अपने प्रिय कलाकार के मुख से कुछ सुन पाए। सैगल के संगीत से मुग्ध 'आत्मा' बंबई में रहते हुए अपने गायन को भी उसी शैली में ढालते रहे। उनकी इस अनुकरण-वृत्ति के कारण प्राय: सुननेवालों को यह भ्रम हो जाता था कि शायद सैगल का ही कोई रेकार्ड बज रहा है।

1945 में आत्मा ने संगीतकार ओ.पी. नैयर के निर्देशन में एक गैर-फिल्मी गीत रेकार्ड करवाया—'प्रीतम आन मिलो'। सैगल के निधन (18 जनवरी, 1947) के बाद जब यह रेकार्ड बाजार में आया तो सैगल शैली के हू-ब-हू अनुकरण में गाए गए इस गीत को सुनकर लोग विस्मय-विमुग्ध रह गए। ऐसा लगा मानो सैगल ने आत्मा के रूप में दूसरा जन्म ले लिया हो। पंचोली पिक्चर्स के दलसुख पंचोली ने 1952 में उन्हें अपनी फिल्म 'आसमान' में गीत गाने का मौका दिया। इससे पहले वे फिल्म 'नगीना' (1951) में शंकर जयकिशन के निर्देशन में एक गीत 'रोऊँ मैं सागर के किनारे, सागर हँसी उड़ाए' गा चुके थे, जिसने उन्हें लोकप्रियता दिलाई। 'आसमान' फिल्म में संगीत का निर्देशन आत्मा को इस क्षेत्र में उतारने वाले ओ.पी. नैयर ने किया था। इसमें उनके गाए तीन गीत श्रोताओं द्वारा पसंद किए गए। उन्होंने कुछ फिल्मों में अभिनय भी किया, जिनमें 'बिल्वमंगल' (नायिका सुरैया), 'भाई साहब', 'गीत गाया पत्थरों ने' (उमर खय्याम की भूमिका में 'मंडवे तले गरीब के दो फूल खिल रहे हैं' शीर्षक गीत) आदि उल्लेखनीय हैं। 'भाई साहब' में गाया गया उनका एक गीत 'नजर ने कह दिया अफसाना तेरे प्यार का' खूब चला तथा लोगों का कंठहार बना। वस्तुत: सैगल की गायन शैली का अनुकरण करने के कारण आत्मा का कोई विशिष्ट कला-व्यक्तित्व नहीं बन सका। अभिनय में भी उन्हें खास सफलता नहीं मिली। यद्यपि सी.एच. आत्मा अभिनय तथा गायन में कोई खास सफलता हासिल नहीं कर सके, किंतु सैगल की शैली में गाए गए उनके गीत श्रोताओं के एक वर्ग में अवश्य पसंद किए गए। आत्मा का शेष जीवन निराशा, अवसाद तथा असफलता की एक करुण गाथा बनकर रह गया। इस पराजित मन:स्थिति का समाधान उसने अपने गुरु और नायक सैगल की भाँति मदिरा में ढूँढ़ा और मात्र बावन वर्ष की आयु में 6 दिसंबर, 1974 को यह दूसरा सैगल भी दुनिया से कूच कर गया।

❑

9

सुरीली आवाज के धनी—तलत महमूद

इस सदी के चौथे दशक के आरंभ में सुरीली आवाज का धनी लखनऊ का एक युवक जो अपने घर-बार को छोड़कर कलकत्ता की फिल्मी दुनिया में अपनी तकदीर की आजमाइश करने चल पड़ा, वह था तलत महमूद, जिसका जन्म 24 फरवरी, 1924 को लखनऊ के एक शिक्षित, सुसंस्कृत परिवार में हुआ था। जब वह कलकत्ता आया तो उसका आदर्श था स्वर सम्राट् कुंदनलाल सैगल, जिसे वह देवता की भाँति पूजता था। अपने इसी आदर्श नायक का पदानुसरण करते हुए युवा तलत भी गायन तथा अभिनय की इस मायावी सृष्टि में प्रवेश का इच्छुक था। किंतु उन दिनों भी रजत पट की इस मोहक दुनिया में प्रवेश पाना और सफल होना आसान नहीं था। कुछ दिनों तक उन्होंने न्यू थियेटर्स में वेतन लेकर काम किया। न्यू थियेटर्स से जुड़ी संगीत की जानी-मानी हस्तियों—रायचंद बोराल, तिमिर बरन, पंकज मलिक तथा कमल दास गुप्ता ने तलत की सुप्त प्रतिभा को पहचाना, किंतु उसे सर्वाधिक प्रोत्साहन मिला संगीतकार अनिल बिस्वास से, जिनकी आँखें तलत महमूद के निधन पर उस महान् गायक को श्रद्धांजलि अर्पित करते समय अश्रुसिक्त हो गई थीं। कलकत्ता में रहते हुए तलत ने कुछ गैर-फिल्मी गीत रेकार्ड करवाए, जिन्हें शीघ्र ही लोकप्रियता मिल गई। इनमें से कुछ थे—'सोये हुए हैं चाँद और तारे', 'आज की रात अँधियारी', 'सब दिन एक समान नहीं', 'तसवीर तेरी मेरा दिल बहला न सकेगी', 'जाने को है बहार' आदि।

तलत की प्रतिभा और गायकी को पहचानकर उसे शीर्ष तक ले जाने का श्रेय संगीत निर्देशक अनिल बिस्वास को ही है। 1949 में जब तलत फिल्म नगरी बंबई में आए तो एक पार्श्वगायक के रूप में स्वयं को स्थापित करना उनका लक्ष्य था। यहाँ खेमचंद प्रकाश की नजर उनकी ओर गई और उन्होंने तलत से राजकपूर-नरगिस अभिनीत फिल्म 'जान पहचान' में प्रसिद्ध गायिका गीता राय (बाद में गीता दत्त) के साथ एक युगल गीत गवाया 'अरमान भरे दिल की लगन तेरे लिए है'। यह गीत लोकप्रियता की सर्वोच्च सीढ़ी तक पहुँचा। 1949 में ही दिलीप कुमार और कामिनी कौशल अभिनीत फिल्म 'आरजू' में अनिल बिस्वास ने तलत से वियोगजन्य अवसाद भरा एक अन्य गीत गवाया—'ए दिल मुझे ऐसी जगह ले चल जहाँ कोई न हो।' जीवन से पलायन का यह स्वर तत्कालीन छायावादी हिंदी काव्य में भी मुखर हो रहा था—'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे' और विरह से उत्पन्न पलायन के ऐसे ही स्वर फिल्मी गीतों में भी गूँज रहे थे। निश्चय ही तलत की कोमल रेशमी आवाज का जादू श्रोताओं पर असर कर रहा था।

तलत की स्मृतियों को पुनरुज्जीवित करते हुए अनिल बिस्वास याद करते हैं कि उस समय उसकी आवाज में जो एक प्रकार का कंपन था, उसे नियंत्रित करते हुए तलत का स्वर असहज हो उठा। मैंने उसे अपनी आवाज को स्वाभाविक रखने के लिए कहा और वह मेरे निर्देश को समझ गया। 'आरजू' की सफलता से तलत में अपूर्व आत्मविश्वास पैदा हुआ और फिर वह सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ता गया। अनिल बिस्वास के निर्देशन में तलत ने अनेक प्रसिद्ध और लोकप्रिय गीत गाए—'शुकरिया ए प्यार तेरा शुकरिया' ('आराम'), 'एक मैं हूँ एक मेरी बेकसी

की शाम है' ('तराना'), 'तेरा खयाल दिल से मिटाया नहीं अभी, बेदर्द मैंने तुमको भुलाया नहीं अभी' ('दो राहा'), 'राही मतवाले तू छेड़ इक बार।' ('वारिस')।

इस सदी का पाँचवाँ दशक तलत के फिल्म गायन का स्वर्ण युग था। अनिल बिस्वास के अतिरिक्त जिन अन्य निर्देशकों ने उसकी रेशम सी महीन कोमल आवाज को रुपहले परदे पर प्रस्तुत किया, वे थे—सी. रामचंद्र, नौशाद, मदनमोहन, सचिनदेव बर्मन, शंकर जयकिशन, हुस्नलाल भगत राम, गुलाम मोहम्मद, रौशन तथा बुलो सी. रानी। निश्चय ही तलत की प्रतिभा संगीत के लिए ही थी। अभिनेता बनने की ललक उसमें प्रबल थी और वह सैगल की ही भाँति गायन व अभिनय दोनों क्षेत्रों में कामयाब होना चाहता था, किंतु उसकी असफलता का कारण भी यही बना। कारदार की फिल्म 'दिले नादान' में उसे नायक की भूमिका मिली। यहाँ नारी भूमिकाओं में अभिनेत्री श्यामा तथा एक नई लड़की पीस कंवल थी। संगीत निर्देशक गुलाम मोहम्मद ने तलत से कई मधुर गीत गवाए—'जिंदगी देने वाले सुन', 'जो खुशी से चोट खाए वो जिगर कहाँ से लाऊँ' तथा 'ये रात सुहानी'। 'दिले-नादान' का संगीत पक्ष तो उत्कृष्ट था, किंतु वह बॉक्स ऑफिस पर पिट गई। उसने अन्य फिल्मों में भी काम किया, 'सोने की चिड़िया', 'एक गाँव की कहानी', 'मालिक' तथा 'वारिस' में। ये सभी फिल्में असफल रहीं किंतु इनके गाने लोकप्रिय हुए। तलत के अभिनय में अधिक रुचि लेने के कारण संगीत निर्देशकों ने उसकी उपेक्षा करनी आरंभ की और पार्श्व गायकों की त्रयी—रफी, मुकेश तथा किशोर की भाँति तलत अपना व्यापक प्रभाव नहीं छोड़ सके।

लेकिन संगीतकार मदनमोहन ने तलत को तब भी निराश नहीं किया। उनके साथ तलत के समीकरण सफल तथा प्रभावी रहे। फिल्म 'मदहोश' में तलत ने गाया—'मेरी याद में तुम ना आँसू बहाना' और इसी भाँति उसके कुछ अन्य सफल गीतों को भी मदनमोहन का ही निर्देशन मिला। 'जहाँआरा' में गाया उसका गीत 'फिर वही शाम, वही गम वही तनहाई है', सायंकालीन उदासी का मुँह बोलता चित्र है। उर्दू के प्रसिद्ध शायर 'मिर्जा गालिब' पर बनी फिल्म में उसने गाया 'इश्क मुझको नहीं, वहशत ही सही'। इसी फिल्म में सुरैया के साथ गाया उसका गीत 'दिले नादान तुझे हुआ क्या है...इस दर्द की दवा क्या है', आज आधी सदी पुराना होने पर भी ताजगी भरा लगता है।

सलिल चौधरी ने फिल्म 'छाया' में तलत की आवाज का जो जादू पेश किया, उसमें मोजार्ट की सिंफनी कृपया इसी रूप में रहने दें, के साथ राग भैरवी का अद्‌भुत मेल था—'इतना ना मुझसे तू प्यार बढ़ा कि मैं एक बादल आवारा', इसी फिल्म में उसका एक अन्य गीत था 'आँसू समझ के क्यों मुझे'। 'बाबुल' का यह गीत भी स्मरणीय है—'खुशी के साथ दुनिया में हजारों गम भी होते हैं'। फिल्म 'टैक्सी ड्राइवर' में बर्मन दा ने तलत से एक अन्य अमर गीत गवाया—'जाएँ तो जाएँ कहाँ?' तलत के अन्य गीत जिन पर समय की धूल विस्मृति की परत नहीं जमा सकी है, वे हैं 'ए मेरे दिल कहीं और चल' ('दाग'), 'आसमाँ वाले तेरी दुनिया से दिल भर गया' ('लैला मजनूँ'), 'मैं दिल हूँ इक अरमान भरा' ('अनहोनी') तथा एक अत्यंत अवसादपूर्ण रचना 'देख ली तेरी खुदाई' ('किनारे-किनारे')। 'सुजाता' में टेलीफोन पर प्रस्तुत किया गया वह मशहूर गीत 'जलते हैं जिसके लिए तेरी आँखों के दीये' तो सचमुच लाजवाब है। निश्चय ही अभिनय में तलत को विशेष सफलता नहीं मिली, यद्यपि उसने माला सिन्हा तथा नूतन जैसी नायिकाओं के साथ काम किया था। उल्लेखनीय है कि तलत को सर्वाधिक सफलता गजल के क्षेत्र में मिली और इस फन में उनका कोई सानी नहीं है। 1992 में उन्हें 'पद्‌मभूषण' से सम्मानित किया गया। निश्चय ही तलत के निधन से निगूढ़ पीड़ा, वेदना, अवसाद तथा वियोग जैसी कोमल अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने वाला कलाकार उठ गया।

❑

10

राष्ट्रीय चेतना के भाष्यकार—गीतकार और गायक प्रदीप

फिल्मी गीतों के कथ्य को लेकर जनसाधारण में एक भ्रांति फैली हुई है, जो यह बताती है कि सामान्य रूप से ये गीत भद्दे, अश्लील तथा चरित्रनाशक होते हैं। यह बात सर्वांश में सत्य नहीं है। यह भी नहीं कि ये गीत सर्वथा निर्दोष, चारित्रिक गुणों को विकसित करने वाले तथा उच्च आदर्शों को प्रतिष्ठित करने में समर्थ होते हैं। तथापि यह कहा जा सकता है कि इनमें से अनेक गीत सार्थक, सोद्देश्य तथा कवित्व गुणों से परिपूर्ण भी हैं। अपने गीतों के माध्यम से जन समाज में राष्ट्रीय भावना, देशप्रेम, सच्चरित्रता, आस्तिकता तथा नैतिक गुणों के विकास की प्रबल कामना रखने वाले गीतकार प्रदीप प्रथमत: साहित्य तथा काव्य को ही समर्पित थे। यह भाग्य ही था, जिसने उनके कदमों को फिल्म-जगत् की ओर बढ़ाया और वे सुदीर्घकाल तक अपने ओजस्वी, शालीन तथा प्रभावोत्पादक गीतों के द्वारा श्रोता समाज का मनोरंजन और मार्गदर्शन करते रहे।

कवि प्रदीप का जन्म 6 फरवरी, 1915 को उज्जैन जिले के बड़नगर कस्बे में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनका वास्तविक नाम रामचंद्र नारायण द्विवेदी था। काव्य रचना में उनकी रुचि छात्रावस्था में ही विकसित हो गई थी। इलाहाबाद से इंटरमीडिएट करने के बाद वे उन दिनों लखनऊ विश्वविद्यालय से बी.ए. कर रहे थे। लखनऊ के साहित्यिक वातावरण में वे यदा-कदा निराला, बच्चन आदि कवियों के साथ कवि सम्मेलनों में कविता पाठ करते। उनके मधुर कंठ-स्वर तथा काव्य पाठ के सलीके ने उन्हें कवि समाज में प्रतिष्ठा दिलाई। यहाँ तक कि महाकवि निराला भी उनके काव्य पाठ से प्रभावित हुए और एक लेख में उन्होंने लिखा, ''आज तक ऐसी आवाज सुनने को नहीं मिली, जिसके आगे कोयल और पपीहे की बोली भी परास्त है।'' 'माधुरी' में छपा निराला का यह लेख प्रदीप के लिए किसी उत्कृष्ट प्रशंसा-पत्र से कम नहीं था।

संयोगवश प्रदीप को बंबई आना पड़ा। बॉम्बे टॉकीज के संस्थापक हिमांशु राय के सामने जब किसी ने प्रदीप की चर्चा चलाई तो राय ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। तुरंत बॉम्बे टॉकीज की गाड़ी ने उन्हें स्टूडियो पहुँचा दिया और वे हिमांशु राय के समक्ष उपस्थित हुए। उस समय वहाँ बॉम्बे टॉकीज की सभी ऊँची हस्तियाँ मौजूद थीं। हिमांशु राय और उनकी अभिनेत्री पत्नी देविका रानी के अलावा फिल्म कंट्रोलर शशधर मुखर्जी तथा संगीत निर्देशिका सरस्वती देवी के समक्ष जब प्रदीप ने काव्य पाठ किया तो उपस्थित लोग अत्यंत प्रभावित हुए। इस कवि में निहित प्रतिभा को पहचानने में सक्षम हिमांशु राय ने उन्हें तुरंत दो सौ रुपए मासिक पर अपने यहाँ गीतकार के रूप में अनुबंधित कर लिया। उन दिनों के दो सौ रुपए आज के बीस हजार से कम नहीं थे। हिमांशु राय ने उनके कृतित्व की परीक्षा भी ली और एक सिचुएशन बताकर उनसे गीत लिख लाने के लिए कहा। प्रदीप ने आधे घंटे में ही उनकी ख्वाहिश को पूरा कर दिया और 'हवा तुम धीरे बहो मेरे आते होंगे चितचोर' के मुखड़े वाला गीत लिख डाला। राय महाशय की प्रसन्नता का पार नहीं था। अब उन्होंने पहली बार बॉम्बे टॉकीज की फिल्म 'कंगन' के लिए प्रदीप से गीत लिखने के लिए कहा। 'कंगन' के लिए उन्होंने कुल चार गीत लिखे और इन गीतों की बदौलत फिल्म को अपूर्व सफलता मिली। नाम पूछने पर कवि ने अपना नाम रामचंद्र नारायण द्विवेदी बताया तो राय महाशय का कहना था कि यह पंडिताऊ नाम रामचंद्र द्विवेदी फिल्म इंडस्ट्री में नहीं चलेगा। उन्होंने कवि को 'प्रदीप' नाम दिया और वे इसी नाम से प्रसिद्ध हुए।

'कंगन' के गीतों को मिली ख्याति ने प्रदीप को बॉम्बे टॉकीज की आने वाली फिल्मों के लिए और अधिक

परिश्रम करने की प्रेरणा दी और तब आईं तीन प्रसिद्ध लोकप्रिय फिल्में, जिनके गानों ने प्रदीप के नाम को घर-घर तक फैला दिया। 1940 की फिल्म 'बंधन' के गीतों ने धूम मचा दी। प्रदीप का काव्य सृजन तो श्रेष्ठ था ही, उनके गले के माधुर्य ने भी कमाल किया। 'बंधन' के गीत 'पिऊ पिऊ बोल प्राण पपीहे पिऊ पिऊ बोल' को स्वयं इस कवि ने गाया था। इसी फिल्म के गीत 'चल चल रे नौजवान' के बोल देश के नवयुवकों के लिए उत्साह और आगे बढ़ने का संदेश लेकर आए। इस गीत ने देश के सार्वजनिक जीवन को बेहद प्रभावित किया। सिंध और पंजाब की असेंबलियों में इस गीत को राष्ट्रीय गीत का दर्जा दिया गया। आजादी के दीवानों के लिए यह गीत एक प्रयाण गीत (मार्चिंग सॉन्ग) का महत्त्व रखता था। सिनेमा हॉल में इस गीत को बजाने की बार-बार फरमाइश होती और इसे चार-चार बार बजाया जाता। 1941 में बॉम्बे टॉकीज की एक और लोकप्रिय फिल्म 'झूला' के लिए भी प्रदीप ने गीत लिखे, जो असाधारण लोकप्रियता प्राप्त कर सके। उन दिनों पार्श्व गायन की प्रथा न होने के कारण अधिकांश गीत इस फिल्म के नायक-नायिका अशोक कुमार तथा लीला चिटनिस ने गाए। एक गीत को खुद कवि प्रदीप ने स्वर दिया। यह गीत था 'मेरे बिछुड़े हुए साथी तेरी याद सताए'। 1943 में प्रदर्शित फिल्म 'किस्मत' ने सफलता के सभी रेकार्ड तोड़ दिए थे और इसका प्रमुख कारण रहा उसका सुंदर संगीत तथा भावपूर्ण गाने। कलकत्ता के एक सिनेमा हॉल (रॉक्सी) में यह फिल्म लगातार तीन वर्ष तक चलती रही। अमीर बाई कर्नाटकी तथा साथियों ने इसमें एक ओजस्वी गीत गाया था—'आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है, दूर हटो ए दुनिया वालो हिंदोस्तान हमारा है'। जब यह रेकार्ड बजता तो लोग झूमने लग जाते, क्योंकि गीत में सांप्रदायिक सद्भाव और कौमी एकता के सूत्रों को सावधानी के साथ गूँथा गया था—

'यहाँ हमारा ताजमहल और कुतुब मीनारा है,
यहाँ हमारे मंदिर मसजिद सिक्खों का गुरुद्वारा है'

इन पंक्तियों में देश के सांस्कृतिक वैभव तथा सर्वधर्म समभाव के उदात्त आदर्शों को श्रेष्ठ अभिव्यक्ति मिली थी।

प्रदीप के गीतों में राष्ट्रीय गौरव तथा देशभक्ति के स्वर सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं। फिल्मिस्तान ने 1954 में बाल चेतना को उद्बुद्ध करने के लिए जब 'जागृति' नाम की फिल्म बनाई तो उसके लिए कवि ने अनेक प्रेरणाप्रद गीत लिखे। इनमें प्रमुख था—'आओ बच्चो तुम्हें दिखाएँ झाँकी हिंदुस्तान की, इस मिट्टी से तिलक करो यह धरती है बलिदान की।' आज भी जब 15 अगस्त तथा 26 जनवरी को देश में स्वाधीनता एवं गणतंत्र पर्व मनाए जाते हैं तो सार्वजनिक समारोहों में प्रदीप के ये ओजस्वी गीत ही सर्वत्र प्रसारित किए जाते हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को कवि ने इस गीत द्वारा उपयुक्त श्रद्धांजलि अर्पित की—'दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल, साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।' अनेक कठिनाइयों को झेलकर, अनेक बलिदान देकर हमने जिस आजादी को प्राप्त किया, उसे अक्षुण्ण रखने की सलाह भी कवि देता है—

'हम लाए हैं तूफान से कश्ती निकाल के।
इस देश को रखना मेरे बच्चो सँभाल के।'

कालांतर में कवि प्रदीप ने धार्मिक फिल्मों के लिए भक्ति भावनामूलक, आस्तिकता को दृढ़ करने वाले अनेक सुंदर गीत लिखे। मानवीय मूल्यों के पतन को देखकर कवि का क्षोभ इन शब्दों में व्यक्त हुआ—'देख तेरे संसार की हालत क्या हो गई भगवान, कितना बदल गया इनसान।' (फिल्म 'नास्तिक'), उनके ऐसे अन्य गीत हैं—'तेरे द्वार खड़ा भगवान भगत भर दे रे झोली' ('वामन अवतार'), 'दूसरों का दुखड़ा दूर करने वाले तेरे दुख दूर करेंगे राम' ('दशहरा'), 'पिंजरे के पंछी रे तेरा दर्द न जाने कोय' (नागमणि), 'हमने जग की अजब तसवीर देखी, एक हँसता है एक रोता है' ('सती सीता अनुसूया'), फिल्म 'तलाक' तथा 'पैगाम' के लिए गीत लिखते समय प्रदीप एक बार

पुन: देशभक्तिपूर्ण भावों की ओर झुके। प्रदीप ने एक प्रसंग में खुद कहा था—''देशभक्ति की भावना कभी खत्म नहीं होती। मैं हमेशा मौके की तलाश में रहा कि फिल्मी गीतों में ऐसी देशभक्ति पिरो दी जाए कि समाज को उसमें गीत के अलावा भी कुछ मिल सके। यही कारण है कि मेरे गीतों में राष्ट्रीय चेतना तथा देशभक्ति का स्वर है।'' वैसे देखें तो उनके फिल्मी जीवन की सर्वाधिक उल्लेखनीय घटना आठवें दशक में आई फिल्म 'संबंध' के गीत हैं। अपने किस्म के अनोखे संगीत निर्देशक ओ.पी. नैयर ने संगीत से सँवारा था—मुकेश और महेंद्र कपूर के गाए गीत क्रमश: 'चल अकेला, चल अकेला, चल अकेला' और 'अँधेरे में जो बैठे हैं, नजर उन पर भी कुछ डालो' अत्यंत लोकप्रिय हुए थे। अद्भुत मेल था वह गीतकार-संगीतकार का।

1963 में जब लाल किले की प्राचीर से देशरक्षा के लिए अपनी आहुति देने वाले वीर सैनिकों को श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए लता मंगेशकर ने प्रदीप रचित 'ए मेरे वतन के लोगो, जरा आँख में भर लो पानी' शीर्षक गीत गाया तो सभी लोगों के नेत्र अश्रुसिक्त हो गए। पं. नेहरू स्वयं उठकर लता के समीप गए और कहा, 'बेटी, तुमने मुझे रुला दिया।' इसके पश्चात् पंडितजी ने गीत के रचयिता के बारे में पूछा—Who is the writer? तो उन्हें बताया गया कि इसे कवि प्रदीप ने लिखा है। उस समय प्रदीप वहाँ उपस्थित नहीं थे। कुछ समय बाद जब पं. नेहरू का बंबई जाना हुआ तो वे समय निकालकर कवि से मिले तथा उसको इस गीत की रचना के लिए बधाई दी। पं. नेहरू ने अपने संस्मरणों में प्रदीप के उस गीत को याद किया है, जो देश की स्वाधीनता की लड़ाई के दिनों में घर-घर गूँजा था—'आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है'। बाद में उन्हें दादा साहब फाल्के पुरस्कार से सम्मानित किया गया। तिरासी वर्षीय कवि उस समय शारीरिक दृष्टि से अत्यंत जीर्ण-शीर्ण थे, किंतु उन्होंने अपनी युवावस्था के उन दिनों को याद किया, जब उनके स्फूर्ति भरे गीतों ने देश की फिजा को जोश तथा कुछ कर गुजरने की भावना से मंडित कर दिया था। 11 दिसंबर, 1998 को प्रदीप हमसे सदा-सदा के लिए बिछुड़ गए, किंतु उनके गीत आने वाली पीढ़ियों को सदा प्रेरणा देते रहेंगे।

❑

11

बाल गायक मास्टर मदन

सचमुच इसे चमत्कार ही कहेंगे कि कोई दो-अढ़ाई साल का बालक इस कच्ची आयु में संगीत की ओर अपने कदम बढ़ाए और किशोर अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते जिसे राष्ट्रव्यापी ख्याति मिल जाए, जो देश में सर्वत्र जाकर अपने मधुर गायन से जनता को विस्मय-विमुग्ध कर दे तथा प्रशंसा-पत्रों और पुरस्कार रूप में दिए गए स्वर्ण-रजत के पदकों से अपनी झोली भर ले। यह चमत्कार शिमला में जनमे मास्टर मदन में देखा गया। मास्टर मदन का जन्म 28 दिसंबर, 1927 को शिमला निवासी सरदार अमरसिंह के यहाँ हुआ, जो खुद संगीत में दिलचस्पी रखते थे। मूलत: वे जालंधर जिले के रहने वाले थे किंतु नौकरी के सिलसिले में उन्हें शिमला बस जाना पड़ा। मास्टर मदन का समस्त परिवार संगीत का दीवाना था। जहाँ पिता, माता पूरन देवी, बड़ी बहन शांति देवी तथा बड़े भाई मास्टर मोहन संगीत के मर्मज्ञ तथा सुरीले गायक हों, वहाँ मास्टर मदन में यदि गायन की प्रतिभा सहज रूप से विकसित हुई हो तो आश्चर्य ही क्या?

किंतु इसका दूसरा पहलू भी था। मात्र साढ़े तीन साल की आयु में मास्टर मदन ने शिमला के निकटवर्ती कस्बे धरमपुर की एक सभा में राग मिश्रित काफी में 'वरन करूँ हे शारदा नमन करूँ' वंदना गीत गाकर श्रोता समूह को चमत्कृत कर दिया। किंतु यहीं से परिजनों ने इस बाल कलाकार की गायन प्रतिभा को भुनाना भी आरंभ कर दिया था। आठ साल का होते-होते उसके संगीत कार्यक्रम रेडियो पर आने लगे। देश के विभिन्न भागों में आयोजित संगीत सम्मेलनों में उसकी माँग होने लगी और बालक की प्रतिभा का व्यावसाथिक दुरुपयोग होने लगा। प्रशंसा-पत्रों और स्वर्ण पदकों से चाहे मास्टर मदन को राष्ट्र व्यापी पहचान मिली किंतु एक किशोर के लिए आवश्यक संतुलित विकास से वह महरूम रहा।

इस होनहार कलाकार का अंत भी अतिशीघ्र हो गया। दिल्ली रेडियो स्टेशन पर रिकार्डिंग कराते समय उसे विषम ज्वर ने धर दबाया, जो 5 जून, 1942 को उसकी मृत्यु का कारण बना। इस अकाल मृत्यु का एक कारण यह भी बताया जाता है कि किसी विद्वेषी व्यक्ति ने उसे दूध में पारा (विष) दे दिया, जो मास्टर मदन की मौत का कारण बना। जो भी हो, मास्टर मदन द्वारा गाई दो गजलें उसके मधुर कंठ और विलक्षण प्रतिभा की परिचायक हैं—'हैरत से तक रहा है जहाने वफा मुझे' तथा 'यूँ न रह रहकर हमें तड़पाइये'। मास्टर मदन की गाई ये दो गजलें सागर निजामी रचित हैं और इनकी धुनें पं. अमरनाथ ने बनाई थीं। अब श्री हरमंदर सिंह हमराज तथा कतिपय अन्यों के शोध से मास्टर मदन की गाई आठ अन्य रचनाओं का पता चला है। इनमें दो गजलें, दो ठुमरियाँ, दो सबद तथा दो पंजाबी गीत हैं। (विशेष द्रष्टव्य—हरमंदिरसिंह हमराज संपादित 'लिस्नर्स बुलेटिन'।)

❑

12

एक फिल्मी गीत, जिसने साम्राज्यवादी गोरों के दिल में हड़कंप मचा दिया : 'दूर हटो ए दुनिया वालो'

राष्ट्रीय चेतना तथा आजादी की ललक जगाने में अनेक फिल्मी गीतों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, इसे स्वीकार किया जाना चाहिए। कतिपय राष्ट्रीय भावापन्न गीत तो ऐसे थे, जिन्होंने साम्राज्यवादी गोराशाही के दिल और दिमाग में हड़कंप मचा दिया तथा करोड़ों देशवासियों को देशभक्ति की प्रेरणा दी। 1943 में एक फिल्म आई 'किस्मत', जिसका निर्देशन ज्ञान मुकर्जी ने किया था। निर्माता कंपनी थी बॉम्बे टॉकीज, जो अपनी सामाजिक फॉर्मूला फिल्मों के लिए विख्यात थी। इसका संगीत प्रसिद्ध संगीतकार अनिल बिस्वास ने दिया था। फिल्म की हीरोइन मुमताज शांति (सांप्रदायिक एकता का द्योतक नाम) मंच पर आकर एक गीत गाती है—

'आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है।
दूर हटो ए दुनिया वालो हिंदुस्तान हमारा है।'

कवि प्रदीप द्वारा रचित इस गीत को मुख्य स्वर दिया था विगत की गायिका अमीर बाई कर्नाटकी ने। जब यह फिल्म रिलीज हुई तो सिनेमाघरों में दर्शकों की अपार भीड़ उमड़ पड़ी और रातोरात फिल्म हिट हो गई। फिल्म की कहानी तो रोचक थी ही, इसमें गाया गया देशभक्ति का उपर्युक्त गीत तुरंत जन-जन की जबान पर छा गया। संगीतकार ने आजादी की ललक को प्रस्तुत करने में जो श्रम किया, वह तो था ही, कवि प्रदीप के बोल भी जोशीले तथा क्रांति के प्रेरक थे। भारत की धार्मिक बहुलता की छवि को उजागर करने वाले मंदिर, मसजिद, गुरुद्वारा, ताजमहल और कुतुब मीनार को एक ही कतार में ला खड़ा किया गया। हमें गुलाम बनाने वाले अंग्रेजों का सीधे से नाम नहीं लिया गया किंतु जर्मनी और जापान (1939-45 के द्वितीय महायुद्ध में जो धुरी राष्ट्र कहलाते थे) को ललकारकर उन्हें भारत से दूर रहने के लिए कहा। इसमें अंग्रेजों को भारत छोड़ने का छिपा आह्वान था। यद्यपि संबोधन जर्मनी व जापान को था।

जब इस गीत के ये क्रांतिकारी बोल गली-गली में गूँजने लगे तो गोरी नौकरशाही के कान खड़े हो गए। पता लगाया गया कि प्रांतीय सेंसर बोर्ड ने इस गीत को पास कैसे कर दिया? जब स्पष्ट आपत्ति की गई तो चतुर निर्माता द्वारा कहा गया कि इसमें नाजी जर्मनी और सैनिक तानाशाह जापान को ललकारा गया है, न कि हमारे तत्कालीन आका अंग्रेजों को। अनाड़ी नौकरशाहों ने बचाव में दिए गए इस तर्क को मान लिया और यह प्रयाण गीत धड़ल्ले से सर्वत्र गूँजने लगा। कई दशक पुराना यह गीत आज भी हमारी धमनियों में जोश, बलिदान तथा राष्ट्रीय गौरव के भावों की त्रिवेणी बहा देता है।

❑

13

अभिनय तथा संगीत का अपूर्व संगम देखा गया उमाशशि में

संगीत तथा अभिनय का एक ही व्यक्ति में पाया जाना कठिन होता है। विगत काल की अभिनेत्रियों में बंगाल की अदाकारा उमाशशि ऐसी ही थी, जिसने न केवल अभिनय अपितु गायन में भी उच्च मानदंड स्थापित किए थे। आज के फिल्म प्रेमी उमाशशि के व्यक्तित्व तथा कला से सर्वथा अपरिचित हैं। जिन लोगों ने न्यू थियेटर्स द्वारा निर्मित गत शती के चौथे दशक की फिल्मों को देखा है, वे उमाशशि के गायन तथा उसकी अभिनय क्षमता के आज भी कायल हैं। फिल्म 'चंडीदास' में के.एल. सैगल के साथ गाया गया उनका गीत 'प्रेम नगर में बनाऊँगी घर मैं तजकर सब संसार' आज भी रसिक जनों के कर्ण-कुहरों में गूँजता है। उमाशशि का जन्म 1913 में कलकत्ता के एक सद्गृहस्थ नीलमणि चटर्जी के यहाँ हुआ। बचपन से ही उसकी रुचि गायन तथा अभिनय में थी। अत: शिक्षा ग्रहण करने के साथ-साथ उसने कला के क्षेत्र में प्रवेश किया। वह युग मूक फिल्मों का था। उमाशशि ने बँगला फिल्म 'बंगबाला' में काम किया और इसी में उनकी कार्य क्षमता प्रकट हो गई। इसके बाद वे पर्याप्त समय तक ग्राफिक आर्ट्स कंपनी द्वारा निर्मित बँगला की मूक फिल्मों में काम करती रहीं। 1929 में वे कलकत्ता की प्रसिद्ध फिल्म-निर्मात्री संस्था मैडन थियेटर्स में आ गईं। इसके दो वर्ष पश्चात् जब सवाक् फिल्मों का निर्माण आरंभ हुआ तो उमाशशि को अपनी प्रतिभा को दिखाने के अधिक अच्छे अवसर मिले। इस बार उन्होंने एक अन्य बँगला फिल्म 'विष्णुमाया' में सशक्त भूमिका की।

वास्तव में उमाशशि को फिल्मी जीवन में सफलता की बुलंदियों पर पहुँचाया न्यू थियेटर्स की हिंदी फिल्मों ने। इस कंपनी द्वारा बनाई गई फिल्मों में उसके अभिनय तथा गायन-कौशल को परिपूर्णता मिली। न्यू थियेटर्स ने पहले बँगला में फिल्में बनाईं, जिनमें शरतचंद्र के उपन्यास 'देना पावना' तथा बंकिम की कथाकृति 'कपालकुंडला' के आधार पर बनी फिल्मों में उमाशशि ने नायिका की भूमिकाएँ कीं। बँगला में बनी 'चंडीदास' तथा 'रूपलेखा' फिल्मों में भी उसके काम की सराहना हुई। हिंदी फिल्मों में उसका प्रवेश 1933 में बनी फिल्म 'पूरन भगत' से हुआ। न्यू थियेटर्स की इस भक्तिप्रधान फिल्म में निर्देशन देवकीकुमार बोस का था तथा संगीत दिया था रायचंद्र बोराल ने। देवकी बोस की यह पहली फिल्म थी। उमाशशि को इसमें गाने का अवसर नहीं मिला, क्योंकि फिल्म में कृष्णचंद्र डे तथा कुंदनलाल सैगल जैसे समर्थ गायकों के भक्ति गीतों का बाहुल्य था। उमा की भूमिका नायक की सौतेली माता ल्यूना देवी की थी, जिसे उसने प्रभावशाली ढंग से निभाया। सच तो यह है कि सैगल को अपनी स्वरमाधुरी को प्रदर्शित करने का पहला अवसर 'पूरन भगत' में ही मिला था, जिसमें उसने 'राधारानी दे डारो ना बंसरी मोरी', 'अवसर बीतो जात प्राणी तेरो अवसर बीतो जात' तथा 'भजूँ मैं भाव से श्री गिरिधारी' जैसे भावपूर्ण भक्तिगीत गाए थे।

1934 में न्यू थियेटर्स ने बंगाल के प्रसिद्ध भक्त 'चंडीदास' के जीवन पर आधारित एक फिल्म बनाई। इसका निर्देशन नितिन बोस ने किया था। इसमें संगीत का संयोजन बोराल ने किया तथा गीत रचना प्रसिद्ध नाटककार तथा

उर्दू लेखक आगा हश्र कश्मीरी ने की थी। इस फिल्म में उमा ने नायक चंडीदास की प्रेयसी रामी धोबिन का किरदार निभाया। इसी फिल्म में सैगल के साथ गाया गया उसका गान 'प्रेमनगर में बनाऊँगी घर मैं' आज कई वर्ष बाद भी पुरानी पीढ़ी के श्रोताओं में पहले की भाँति रस-वृष्टि करता है। इस युगल गीत के अतिरिक्त 'चंडीदास' में उसने दो अन्य गीत गाए—'वसंत ऋतु आई आली' तथा 'ऐ री सखि, पूछ न प्रेम कहानी'। फिल्म के समाप्त होने पर भरत वाक्य के रूप में सैगल तथा पहाड़ी सान्याल के साथ उसने सम्मिलित स्वर में जो गीत गाया, उसके बोल थे—'प्रेम की हो जय जय, जीवन है अब सुखमय'। 1934 में ही न्यू थियेटर्स ने 'डाकू मंसूर' नामक एक ऐसी फिल्म बनाई, जिससे आगे डाकू प्रधान फिल्मों की रोमांचक परंपरा चली। न्यू थियेटर्स तथा उससे जुड़े कलाकारों के लिए ऐसी फिल्म बनाना आश्चर्य ही था क्योंकि अब तक उसने जो चित्र बनाए थे, वे मुख्यत: सामाजिक सरोकारों से जुड़े थे। 'डाकू मंसूर' में पृथ्वीराज, सैगल तथा पहाड़ी सान्याल जैसे समर्थ और स्थापित कलाकरों के साथ काम करना एक चुनौती थी, किंतु उमाशशि ने इसमें अपनी परिपूर्ण अभिनय क्षमता दिखलाई। अगले वर्ष 1935 में नितिन बोस ने 'धूप छाँव' का निर्माण किया। इसकी कहानी तथा गीत प्रख्यात कथा लेखक पं. सुदर्शन ने लिखे थे। इस फिल्म में उमाशशि का गायन सफलता के शीर्ष पर पहुँच गया। 'प्रेम अपूरब माया जगत् में प्रेम अपूरब माया जगत् में' इस एक गीत ने ही धूम मचा दी तथा ग्रामोफोन कंपनियों ने इसके रेकार्ड बेचकर खूब धन कमाया। 'धूप छाँप' में के.सी. डे के गाए गीत भी लोकप्रिय हुए। इस फिल्म के संगीत की सफलता का एक कारण यह भी था कि यहाँ संगीत निर्देशक रायचंद बोराल को एक अन्य संगीतज्ञ पंकज मलिक का सहयोग मिला था। फिल्म संगीत के इतिहास में यह तथ्य दर्ज किया जाएगा कि 'धूप छाँव' में ही पार्श्व गायन शैली का प्रथम बार प्रयोग किया गया, जब पारुल घोष, सुप्रभा सरकार तथा हरिमति ने सम्मिलित स्वर में एक गीत गाया, जिसके बोल थे—'मैं खुश होना चाहूँ हो न सकूँ'। यह पार्श्वगायन का पहला प्रयोग था।

1937 में न्यू थियेटर्स की फिल्म 'अनाथ आश्रम' में उमाशशि को नायिका की भूमिका मिली। यहाँ उसे पृथ्वीराज तथा नवाब जैसे सधे हुए कलाकारों के साथ काम करना था। गायन में उसके साथ प्रसिद्ध गायिका हरिमति थी, किंतु संगीत की श्रेष्ठता का सेहरा उसके सिर पर बँधा। उमाशशि का अभिनय-काल सुदीर्घ नहीं रहा। 1935 में न्यू थियेटर्स की फिल्म 'धरती माता' में उसने सैगल के साथ नायिका की भूमिका निभाई। इस फिल्म के गीत पं. सुदर्शन ने लिखे थे और संगीत पंकज मलिक ने दिया था। 'जाग सजनिया नवयुग आया' गीत को उसने अकेले गाया, किंतु जब सैगल के साथ उन्होंने 'मैं मन की बात बताऊँ, क्या क्या बात उठत मन मोरे' गाया तो एक समाँ बँध गया।

उस युग की अन्य बँगला अभिनेत्रियों की भाँति उमाशशि भी बंगाली भद्रलोक की संस्कारशील, ललित कलाओं के प्रति समर्पित सुसंस्कृत रुचि की ललनाओं का प्रतिनिधित्व करती थीं। उनके पति कलकत्ता हाईकोर्ट में सॉलिसीटर थे। अपने जमाने की सामान्य स्त्रियों से हटकर उन्होंने कार ड्राइविंग सीखी तथा आभिजात्य जीवन जिया। वाद्य वादन में कुशल उमाशशि को रवींद्र संगीत में निपुणता प्राप्त थी। मातृभाषा बँगला के अलावा हिंदी तथा अंग्रेजी पर उन्हें अच्छा अधिकार प्राप्त था। निश्चय ही उमाशशि तथा काननबाला बँगला फिल्माकाश की ऐसी उज्ज्वल तारिकाएँ थीं, जिन्होंने फिल्म जगत् को अपने अभिनय-कौशल तथा मुग्धकारी गायकी से दीप्ति युक्त किया था।

❑

14

संगीत कानन की कोकिल-कानन बाला

फिल्म संगीत को जब हम बंगाल की देन पर विचार करते हैं तो कोकिल-कंठी कानन का स्मरण आना आवश्यक है। अपने सुरीले स्वर तथा मधुर कंठ से उन्होंने कई दशकों तक श्रोताओं की मानस तंत्रियों को झंकृत किया था। अभिनय तथा गायन दोनों कलाओं में उन्हें महारत हासिल थी। उनका जन्म 1916 में कलकत्ता के एक कला-प्रेमी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सात साल की आयु में उनके पिता का देहांत हो गया और दस वर्ष की कच्ची उम्र में उन्हें द्रव्योपार्जन के लिए गायन को अपनाना पड़ा। 1935 में जब उन्होंने एक स्कूल के सांस्कृतिक कार्यक्रम में गायन पेश किया तो उनके स्वर माधुर्य से श्रोतावर्ग चमत्कृत रह गया। उनकी पहली फिल्म बँगला भाषा में थी, जिसे ज्योतिष बनर्जी ने 'जयदेव' नाम से बनाया था। 1926 में बनी इस फिल्म में जब उन्होंने काम किया तो पारिश्रमिक के रूप में उन्हें मात्र पच्चीस रुपए दिए गए। इनमें से बीस रुपए उस व्यक्ति ने ले लिये, जिसने उन्हें यह भूमिका दिलाई थी। कानन के हाथ में मात्र पाँच रुपए आए। 1931 में वे एक अन्य बँगला फिल्म 'ऋषि प्रेम' में नायिका के रूप में अवतरित हुईं। यहीं से उनका फिल्मी जीवन आरंभ होता है।

आरंभ में उन्हें राधा फिल्म कंपनी ने मासिक वेतन पर अनुबंधित किया। इस अनुबंध के समाप्त होने पर वे बंगाल की प्रसिद्ध फिल्म निर्मात्री संस्था न्यू थियेटर्स में प्रविष्ट हुईं। उनकी पहली फिल्म महाकवि विद्यापति के जीवन पर आधारित थी, जो 1937 में बनी। इसमें उन्हें पृथ्वीराज कपूर, के.सी. डे तथा पहाड़ी सान्याल जैसे कलाकारों के साथ काम करने का अवसर मिला।

इसी वर्ष उन्होंने फिल्म 'मुक्ति' में भी काम किया। यहाँ उनके सहयोगी कलाकार थे प्रमथेश बरुआ तथा पंकज मलिक। वस्तुतः न्यू थियेटर्स उस जमाने की जानी-मानी फिल्मी हस्तियों का एक मिलन-स्थल बन गया था। पृथ्वीराज कपूर, के.एल. सैगल, पंकज मलिक, पहाड़ी सान्याल, तिमिर बरन, उमाशशि, कानन आदि उच्चकोटि के कलाकारों को यहाँ एक साथ देखा जा सकता था। न्यू थियेटर्स प्रायः एक ही कहानी को लेकर हिंदी तथा बँगला, दोनों भाषाओं में फिल्में बनाता था। हिंदी 'विद्यापति' में उन्होंने एक मधुर गीत गाया—'मोरे अँगना में आए आली मैं चाल चलूँ मतवाली'। उनका एक अन्य गीत था 'डोले हृदय की नैया'। 1938 में के.एल. सैगल के साथ उनकी एक अन्य फिल्म 'स्ट्रीट सिंगर' आई। उनकी अन्य फिल्में थीं—'सपेरा' (पृथ्वीराज कपूर के साथ, 1939), 'हारजीत' (पहाड़ी सान्याल के साथ, 1940), 'लगन' (सैगल के साथ, 1921), 'जवाब' (1942) आदि।

अभिनय और गायन का मणि-कांचन संयोग कानन की अदाकारी में दिखाई दिया था। एक सफल गायिका के रूप में उनकी उज्ज्वल छवि बनी। उन्होंने कुछ समय तक लखनऊ के उस्ताद अल्लारक्खा से संगीत की विधिवत् शिक्षा ली थी। जब वे राधा फिल्म कंपनी में काम करने लगीं तो उनके संगीत निर्देशक अनाथ बोस तथा मृणाल कांति घोष जैसे जाने-माने संगीतज्ञ थे। जब 1935 में न्यू थियेटर्स ने बँगला कथाकार शरतचंद्र के प्रसिद्ध उपन्यास

'देवदास' पर फिल्म बनाने का निश्चय किया तो निर्देशक प्रमथेशचंद्र बरुआ पार्वती की भूमिका कानन को देना चाहते थे, किंतु उस समय तक वे राधा फिल्म्स से अनुबंधित थीं। इसलिए पारो की भूमिका जमुना को दी गई। 1939 में कानन की फिल्म 'जवानी की रीत' आई, जो बँगला फिल्म 'पराजय' का हिंदी रूपांतर थी। इसमें नायिका अनीता की भूमिका कानन ने की।

बँगला फिल्म 'पराजय' में कानन ने रवींद्रनाथ के गीत 'प्राण चाय चक्षु न चाय' को सफलतापूर्वक गाया था। इसे ही बाद में पंकज मलिक ने 'प्राण चाहे नैना न चाहे क्यूँ यूँ शरमाए' के रूप में गाया, जिसने उस जमाने में अपार लोकप्रियता प्राप्त की थी। कानन ने अपनी फिल्मों में कुछ मधुर भजन भी गाए। 'हमरी नगरिया में आए बसो बनवारी' तथा 'प्रभुजी तुम राखो लाज हमारी' ('हॉस्पिटल') उनके गाए भावनाप्रवण भजन हैं। वास्तव में कानन की आस्था वैष्णव मत में थी और वे अपने आराध्य के प्रति भक्ति को निवेदित करने के लिए गायन के इस जनरंजक माध्यम का प्रयोग करती थीं। 'साँवरिया मन भाया रे' गीत भी कृष्ण के प्रति उनके उत्कृष्ट प्रेम का परिचायक है। उनके गाए अन्य लोकप्रिय गीत हैं—'लूट लियो मन धीर' ('जवानी की रीत'), 'चले पवन हर सूँ' आदि।

कानन को संगीत के शिखर तक पहुँचाया 1942 में बनी फिल्म 'जवाब' के गानों ने। अब वे न्यू थियेटर्स को छोड़कर स्वतंत्र रूप से अभिनय क्षेत्र में काम कर रही थीं। प्रमथेश बरुआ के साथ उन्होंने एम.पी. प्रोडक्शन की बँगला फिल्म 'शेष उत्तर' में नायिका का रोल सफलतापूर्वक किया। इसी बँगला फिल्म का हिंदी रूप था 'जवाब'। इसमें संगीत कमलदास गुप्ता का था। यह फिल्म अपने सशक्त कथानक तथा श्रुति मधुर संगीत के कारण अपूर्व लोकप्रियता अर्जित कर सकी। सत्तर साल से अधिक पुराने हो जाने पर भी 'जवाब' में गाए गए कानन के गाने उतने ही लाजवाब हैं, जितने वे 1942 में थे। 'ए चाँद छुप ना जाना', 'दूर देश का रहने वाला आया देश पराए', (पुरुष स्वर असित बरन का था) 'तू हाँ कर जा या ना कर जा'—इन तीन गानों ने 'जवाब' के संगीत को अलग पहचान दी। 'दुनिया ये दुनिया तूफान मेल' शीर्षक गीत भी कानन ने ही गाया था। इसमें ट्रेन के चलने पर पटरियों की खटखट तथा उसके रुकने पर पैदा होने वाली ध्वनि को गीत की पृष्ठभूमि में सफलतापूर्वक उभारा गया था।

कानन की अंतिम हिंदी फिल्म 'चंद्रशेखर' थी, जिसमें नायक के रोल में अशोक कुमार थे। 1948 में यह फिल्म बंकिमचंद्र के उपन्यास 'चंद्रशेखर' का आधार लेकर बनाई गई। कानन ने इसमें नायिका शैवालिनी की भूमिका की थी। इससे एक वर्ष पूर्व 1947 में उन्होंने विदेश यात्रा की तथा फिल्म निर्माण की तकनीकी बारीकियों को जाना। स्वदेश लौटकर उन्होंने श्रीमती पिक्चर्स नाम से एक निजी फिल्म कंपनी बनाई और इस संस्था के माध्यम से शरतचंद्र की अनेक विख्यात औपन्यासिक कृतियों पर बँगला भाषा में फिल्में बनाईं। इनमें 'मेज दीदी' (मँझली दीदी) तथा 'दर्पचूर्ण' के अतिरिक्त प्रसिद्ध उपन्यास 'श्रीकांत' के विभिन्न अंशों को लेकर बनाई गई तीन फिल्में —'इंद्रनाथ', 'अन्नदा' तथा 'अभया' एवं 'ओ श्रीकांत' विशेष उल्लेखनीय हैं। हिंदी भाषा पर विशेष अधिकार न होने पर भी कानन के गाए हिंदी गीत त्रुटिहीन हैं। 1977 में कानन को दादा साहब फाल्के पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 18 जुलाई, 1992 को छिहत्तर वर्ष की आयु में कलकत्ता में उनका निधन हुआ। कानन के दिवंगत होने के साथ ही बँगला और हिंदी की एक श्रेष्ठ अदाकारा से देश वंचित हो गया।

❑

15

स्वर माधुर्य का प्रतिरूप : अमीर बाई कर्नाटकी

आज तो फिल्म संगीत में मंगेशकर बहनों तथा उनके बाद इस क्षेत्र में प्रविष्ट हुई अन्य संगीत तारिकाओं की धूम है किंतु आधी सदी से भी पहले जिन्होंने अपने अपूर्व स्वर माधुर्य, लरजती आवाज तथा मुग्ध कर देनेवाली गायकी से लाखों-करोड़ों श्रोताओं को रस-विभोर कर दिया था, नई पीढ़ी में ऐसे कितने लोग हैं जो उनके नाम से भी परिचित हैं? एक ऐसी ही गायिका थी अमीर बाई कर्नाटकी, जिसने फिल्म 'शहनाई', 'किस्मत', 'भरतरी' तथा 'सिंदूर' जैसी फिल्मों में पार्श्व गायन कर गली-गली में धूम मचाई थी। अमीर बाई का जन्म आज के कर्नाटक राज्य के बीजापुर जिले के विलगी गाँव में एक बुनकर (जुलाहा) परिवार में हुआ था। उनकी बड़ी बहन गौहर ने अभिनय के क्षेत्र में ख्याति अर्जित की थी। अपनी अग्रजा के पद चिह्नों पर चलकर अमीर बाई भी बंबई आ गई और अभिनय तथा गायन के क्षेत्र में अपना भाग्य आजमाने का निश्चय किया। कुदरत ने उन्हें अच्छी सूरत भी दी थी, इसलिए फिल्म 'विष्णु भक्ति' में उन्हें काम मिल गया। यह बात सन् 1934 की है। किंतु गायन उनकी प्रथम रुचि थी। फिल्म संगीत में उन्हें प्रतिष्ठित करने का श्रेय संगीत निर्देशक अनिल बिस्वास को जाता है, जिन्होंने अमीर बाई की मधुर स्वर लहरी को परवान चढ़ाया तथा उसके गीतों को घर-घर में गूँजने का अवसर दिया।

अमीर बाई की यह गीत-यात्रा 1943 से आरंभ हुई, जब उन्होंने फिल्म 'किस्मत' में प्रदीप के लिखे गानों को स्वर दिया। 'आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है' विदेशी शासकों को चुनौती देनेवाले इस राष्ट्रभक्ति के गीत के सम्मिलित स्वरों में अमीरबाई का स्वर प्रधान था। इस फिल्म में उनके जो अन्य गीत लोकप्रिय हुए, वे थे—'धीरे-धीरे आ रे बादल', 'अब तेरे सिवा कौन मेरा कृष्ण कन्हैया' तथा 'ऐ दुनिया बता हमने बिगाड़ा है क्या तेरा', 'घर घर में दीवाली है मेरे घर में अँधेरा'। 'किस्मत' की ही भाँति 1944 में रिलीज हुई फिल्म 'रतन' ने भी अपूर्व लोकप्रियता अर्जित की थी। इसमें अधिकांश गीत जोहरा बाई अंबालावाली ने गाए थे, किंतु श्यामकुमार के साथ गाया गया अमीर बाई का गीत 'ओ जाने वाले बालमवा लौट के आ, लौट के आ' भी कम लोकप्रिय नहीं हुआ था। इसी साल भर्तृहरि के पुरातन आख्यान को लेकर चतुर्भुज दोशी के निर्देशन में एक लोकप्रिय फिल्म 'भरतरी' बनी। खेमचंद प्रकाश के संगीत निर्देशन में अमीर बाई ने इसमें श्रृंगार रस से सिक्त दो गीत गाए—'मोरा धीरे से घूँघट हटाए पिया' तथा 'चंदा देस पिया के जा।' इसमें उन्होंने गायक सुरेंद्र के साथ एक गीत 'भिक्षा दे दे मैया पिंगला' भी गाया था, जिसमें त्याग, वैराग्य और जीवन की नश्वरता जैसे आध्यात्मिक भावों का अद्भुत गुंफन था। महिला संगीतकार सरस्वती देवी ने 1945 में बनी फिल्म 'आम्रपाली' (बौद्ध इतिहास पर आधारित) में संगीत दिया और अमीर बाई से छह गीत गवाए। फिल्मिस्तान की फिल्म 'शिकारी' (1946) का संगीत सचिनदेव बर्मन ने दिया था। इसमें अमीरबाई के दो गीत, जिनमें से एक 'हर दिन है नया, हर रात निराली है' उन्होंने अशोक कुमार के साथ गाया था। गीत लिखा था गोपाल सिंह नेपाली ने।

1947 का वर्ष अमीर बाई के गायन के चरमोत्कर्ष का था। इस वर्ष उनके गीतों से सजी 'सिंदूर' तथा 'शहनाई' दो फिल्में रिलीज हुईं। 'सिंदूर' का संगीत प्रसिद्ध संगीतकार खेमचंद प्रकाश ने दिया था। इस फिल्म में अमीर बाई ने तीन गाने गाए, जो अत्यंत लोकप्रिय हुए। ये थे—'कोई रोके उसे और यह कह दे', 'ओ दुनिया बनाने वाले, क्या यही है दुनिया तेरी' तथा 'ओ रूठे हुए भगवान, तुमको कैसे मनाऊँ'। नारी वेदना तथा उसकी करुण पुकार को व्यंजित करने वाले इन गीतों को अमीर बाई ने जिस तल्लीनता से गाया था, उसी के कारण वे घर-घर में गूँजे। 'शहनाई' में गाए गए उनके अमर गीत 'मार कटारी मर जाना' को वृद्ध पीढ़ी अभी तक भुला सकने में स्वयं को असमर्थ पाती है। शमशाद बेगम के साथ गाया गया उनका गीत 'हमारे अँगना, हो हमारे अँगना, आज बाजे, बाजे शहनाई' भी लोगों की जबान पर चढ़ गया था। 1948 में बनी फिल्म 'वीणा' में अमीर बाई ने केवल एक गीत गाया 'दर्दमंदों का जहाँ में कोई आसरा नहीं।'

1949 में बनी 'चाँदनी रात' फिल्म का निर्माण प्रसिद्ध अभिनेत्री नसीम के पति मोहम्मद अहसान ने किया था तथा इसमें संगीत नौशाद का था। अमीर बाई ने इसमें एक ही गीत गाया 'सैंया से बिछुड़ गई हो मोरे राम।' नेताजी सुभाष तथा उनके द्वारा तैयार की गई आजाद हिंद फौज को लेकर फिल्मिस्तान ने 1950 में 'समाधि' नामक फिल्म बनाई। इसमें अमीर बाई, लता तथा साथियों ने एक नई तर्ज का गीत दिया—'गोरे गोरे, ओ बाँके छोरे, कभी मेरी गली आया करो।' गीत का चुलबुलापन ही उसका आकर्षण था।

यह सत्य है कि फिल्मी गीतों की सफलता में गायकों के कंठ-स्वर के माधुर्य का प्रधान योगदान रहता है। किंतु गीतों के बोल, उनकी शब्दावली, वाक्य विन्यास तथा भाव गांभीर्य भी उनकी श्रेष्ठता का निर्णायक होता है। अमीर बाई ने जो गीत गाए, उनमें कुछ तो विशुद्ध उर्दू पदावली वाले थे, जिनमें नाजुक खयाली के साथ एक खास किस्म का 'अंदाजे-बयाँ' भी रहता था। ऐसे गीतों में 'ऐ निगाहे-यार तेरा शुकरिया शुकरिया' तथा 'इनकार जो करना था पहले ही बता देते' उल्लेखनीय हैं। सरल हिंदी शब्दावली वाले उनके गीत अधिक लोकप्रिय हुए, यथा—'संसार में सुख दु:ख होते हैं फिर टूटे मन क्यों रोते हैं', 'बाज उठी किस ओर मुरलिया बाज उठी किस ओर' आदि। अमीर बाई आज सशरीर हमारे मध्य में नहीं हैं, किंतु उनके मधुर गीतों ने उनकी स्मृति को अद्यापि जीवित रखा है।

❑

16

अभिनय और गायन में लाजवाब : खुर्शीद बानो

अभिनय और गायन दोनों में महारत हासिल करने वाली 83 वर्षीया खुर्शीद बानो देश विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान के शहर कराची में रहीं। उनका जन्म लाहौर के निकट के एक कस्बे चूनिया में 1918 में हुआ। उनके पिता एक वकील के यहाँ मुंशी का काम करते थे। इस बच्ची का नाम उन्होंने इरशाद बेगम रखा। बचपन से ही इस बालिका को फिल्मों में काम करने का शौक था। गायन में उनकी अभिरुचि अपनी माता के कारण हुई। लाहौर में उनके पड़ोस में उर्दू के शायर डॉ. सर मोहम्मद इकबाल रहते थे। जब वे इस बालिका को खूबसूरत अंदाज में गाते सुनते तो उसे प्रोत्साहन देते और संगीत की साधना को निरंतर जारी रखने के लिए कहते। लाहौर उन दिनों फिल्म निर्माण का एक प्रमुख केंद्र था। इरशाद बेगम ने खुर्शीद बानो के नाम से लाहौर के हिंदमाता सिनेटोन में नौकरी कर ली और 1935 में एक पंजाबी फिल्म 'इश्के-पंजाब' (पंजाब की प्रेम कथा मिर्जा साहिबा पर आधारित) में नायिका का रोल किया। इसी वर्ष उसने 'स्वर्ग की सीढ़ी' नामक एक अन्य फिल्म में काम किया जो नेशनल मूवीटोन ने बनाई थी। पृथ्वीराज कपूर फिल्म के नायक थे और गुलाम हैदर ने संगीत दिया था। फिल्मी दुनिया में कुछ अधिक कर पाने की लालसा उन्हें बंबई ले आई। यहाँ उन्होंने जिन फिल्मों में काम किया उनमें प्रमुख थीं—महालक्ष्मी सिनेटोन की 'बाम्बशेल' तथा 'चिरागेहुस्न'। सरोज मूवीटोन की फिल्म 'गैबी सितारा' में उनके अभिनय की सराहना हुई। उनकी अन्य फिल्में थीं—'ऐलाने जंग', 'कीमियागर' और 'सिपहसालार'। 1936 में बनी 'शोख दिलरुबा' में सर्वप्रथम अनिल बिस्वास के निर्देशन में उन्होंने जो गीत गाया, वह विशेष प्रशंसित हुआ। फिल्मों में गाने और अभिनय का यह सिलसिला चलता रहा। उनके गायन को विशेष ख्याति तब मिली जब 1941 में प्रसिद्ध संगीतकार खेमचंद प्रकाश ने संगीत निर्देशक के रूप में रणजीत मूवीटोन में प्रवेश किया। उनसे पहले यहाँ के संगीत निर्देशक ज्ञानदत्त ने फिल्म 'बेटी' में खुर्शीद से एक सुंदर गीत गवाया था—'ये दर्दे-मोहब्बत है कैसे वो भला जानें' तथा 'अरमान कुछ तो दिल में तड़प के ही रह गए', 'नैनों से नैना मिला के' आदि।

विभिन्न मनोभावों तथा मन:स्थितियों को जीवंत करनेवाले निम्न गीत जब खुर्शीद के मधुर सुरों से निकलते थे तो एक समाँ बँध जाता था। खेमचंद प्रकाश ने फिल्म 'परदेसी' के कुछ गीतों की धुनें बाँधीं और खुर्शीद से इन्हें गवाया। 'पहले जो मोहब्बत से इनकार किया होता', 'मोरी अटरिया है सूनी मोहन नहीं आए' आदि गीत आज भी उतने ही मोहक हैं जितने आधी सदी पहले थे। खुर्शीद के गाए कुछ अन्य लोकप्रिय गीतों के बोल थे—'मोहब्बत में सारा जहाँ जल रहा है', 'जो हम पे गुजरती है सितारों से पूछिए', 'उलफत के फसाने हैं', 'ना दिल ही दिया होता ना प्यार किया होता', 'ये दर्द-मोहब्बत है ये दर्द-जुदाई' आदि। 1942 में बनी फिल्म 'चाँदनी' के गीत भी खेमचंद प्रकाश ने खुर्शीद से ही गवाए।

अमर गायक कुंदनलाल सैगल के साथ खुर्शीद ने नायिका के रूप में केवल दो फिल्मों—'भक्त सूरदास'

(1942) तथा 'तानसेन' (1943) में काम किया, किंतु ये दोनों फिल्में सैगल तथा खुर्शीद के युगल स्वरों में गाए गीतों के कारण अमर हो गईं। 'भक्त सूरदास' के संगीतकार ज्ञानदत्त थे। इनमें युगल गीत थे—'जिस जोगी का जोग लिया है' तथा 'चाँदनी रात और तारे खिले हैं।' उसके अन्य एकल गीत जो लोकप्रिय हुए थे—'मधुर मधुर गा रे मनवा', 'पंछी बावरा चाँद से प्रीत लगाए।' 'तानसेन' का संगीत खेमचंद प्रकाश ने तैयार किया था और पं. इंद्र ने गीत रचना की थी। खुर्शीद ने तानसेन की प्रेमिका तानी की शोख-चुलबुली भूमिका करने के साथ-साथ जो मधुर गीत गाए, वे फिल्म संगीत की अमर धरोहर बन गए। इनमें से कुछ थे—'घटा घनघोर घोर', 'हो दुखिया जियरा डोले ना', 'अब राजा भये मोरे बालम', 'मोरे बालापन के साथी' (सैगल के साथ) आदि।

खुर्शीद का यह फिल्मी सफर जारी रहा। फिल्म 'नर्स', 'जमीन', 'मुमताज महल' तथा 'शहंशाहे बाबर' में उनका अभिनय और गायन सराहा गया। खास तौर से शहंशाहे बाबर के गीत 'मोहब्बत में सारा जहाँ जल रहा है' ने प्रेम की वेदना को साकार कर दिया। 1945 में बनी फिल्म 'मूर्ति' के संगीतकार बुलो सी. रानी थे। इस फिल्म के सर्वाधिक लोकप्रिय गीत को जिन तीन कलाकारों ने मिलकर गाया, उनमें हमीदा और मुकेश के साथ खुर्शीद का स्वर था। 'बदरिया बरस गई उस पार' गीत में प्रिय की मिलनाकांक्षा की पूर्ति न होने से उत्पन्न निराशा का जो करुण चित्रण श्रोताओं के अंतस्तल तक पहुँच जाता है, उसमें उपर्युक्त तीनों गायकों का स्वर-माधुर्य ही प्रधान कारण है। सोहराब मोदी ने मिनर्वामूवीटोन की फिल्म 'मझधार' में खुर्शीद के साथ सुरेंद्र को गायक और नायक दोनों की भूमिकाओं में लिया। इनके द्वारा गाया गया युगल गीत 'मेरा चाँद आ गया मेरे द्वारे' चर्चित रहा। खुर्शीद का एकल गीत 'आज मोहे साजन घर जाना' भी लोगों की जबान पर चढ़कर लोकप्रिय बन गया।

खुर्शीद के गाए कुछ अन्य मधुर गीत थे—'चाँदनी रात और तारे खिले हैं', 'ये ठंडी हवाएँ संदेश सुनाए', 'अंबुवा पै कोयल बोले' तथा 'नैना से नैना मिलाय के' आदि। भारत विभाजन के पश्चात् खुर्शीद भी पाकिस्तान चली गईं। उनकी अंतिम फिल्म 1948 में जारी हुई थी—'आप बीती'। पाकिस्तान में उन्होंने कुछ वर्षों तक फिल्म संसार में जाने का विचार नहीं किया। जब 1956 में वे पुन: फिल्मों में आईं तो उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली और शीघ्र ही उन्होंने रुपहले परदे से किनाराकशी कर ली। वस्तुत: खुर्शीद को अभिनय और गायन में जो ख्याति मिली, वह जीवन के उस पूर्वार्द्ध में ही मिली जो भारत में व्यतीत हुआ था। 18 अप्रैल, 2001 को यह तिरासी वर्षीया महान् गायिका परलोक प्रस्थान कर गई। अपने सोलह वर्ष के फिल्मी जीवन में उन्होंने अड़तालीस फिल्मों में काम किया।

❑

17

लोकप्रिय गायिका जोहराबाई अंबालावाली

1937-38 में 'जोहरा जान ऑफ अंबाला' के नाम से आकाशवाणी (तब आल इंडिया रेडियो) के दिल्ली-लाहौर तथा पेशावर केंद्रों से अपना गायन पेश करने वाली जोहराबाई ने फिल्मों में पार्श्व गायन 1938 में आरंभ किया। सागर मूवीटोन की फिल्म 'ग्रामोफोन सिंगर' से उनकी संगीत यात्रा की शुरुआत हुई। 1938 में बनी इस फिल्म का संगीत अनिल बिस्वास ने दिया था। पं. सुदर्शन का लिखा 'पिया घर अकेली मोहे डर लागे' उनका पहला गीत था, जिसे जोहराबाई ने उक्त फिल्म में गाया। उसके बाद यह सिलसिला चल पड़ा और उन्होंने 'बहूरानी' (1940), 'हिम्मत' (1941), 'रिटर्न ऑफ तूफानमेल' (1942) 'तलाश' (1943) तथा 'विजय लक्ष्मी' (1943) आदि फिल्मों में गाया।

इसके बाद आई फिल्म 'रतन', जिसका संगीत प्रसिद्ध संगीतकार नौशाद अली ने दिया था। इस फिल्म के गीतों ने सारे देश में धूम मचा दी। इसमें जो गीत जोहराबाई ने गाए, वे आज भी उस बीते जमाने के लोगों के कानों में गूँजते हैं। ये हैं—रुमझुम बरसे बादरवा मस्त हवाएँ आईं, पिया घर आ जा', 'अँखियाँ मिला के जिया भरमा के', 'परदेसी बालम आ बादल आए', 'ओ जाने वाले बालमवा लौट के आ', 'आई दीवाली आई दीवाली।' करण दीवान के साथ जोहराबाई ने 'रतन' में एक अत्यंत मधुर गीत गाया था—'सावन के बादलो उनसे ये जा कहो'। जोहराबाई की संगीत यात्रा आगे भी जारी रही। उन्होंने जिन फिल्मों में अपना स्फूर्तिदायक पार्श्व गायन किया, उनके नाम हैं—'जीवन' (1944) तथा 'पहले आप' (1944) फिल्म में गाया गया उनका गीत 'चले गए दिल में आग लगाने वाले' बहुत ही मशहूर हुआ था। 1945 में बनी फिल्म 'संन्यासी' का संगीत भी नौशाद ने ही दिया था। इसमें जोहराबाई का गाया गीत 'सुनो जी प्यारी कोयलिया बोले मस्त जवानी डोले' बहुत प्रसिद्ध हुआ। 'अनमोल घड़ी' (1946) में यद्यपि नूरजहाँ तथा सुरैया ने ही अधिकांश गीत गाए थे किंतु शमशाद बेगम के साथ जोहरा का गाया गीत 'उड़न-खटोले पे उड़ जाऊँ तेरे हाथ न आऊँ' आज भी लोगों की जबान पर चढ़ा हुआ है। (1947) में निर्मित फिल्म 'बेला' के संगीत निर्देशक बुलो सी. रानी ने उनसे इस फिल्म में अधिकतम 10 गीत गवाए। जिन अन्य फिल्मों में जोहराबाई ने गाया, वे हैं—'ऐलान' (1947), 'दूसरी शादी' (1947), 'नाटक' (1948) आदि। यहाँ पाठकों को यह बताना शायद उचित रहेगा कि फिल्म 'जीनत' (1945) की मशहूर कव्वाली 'आहें न भरी, शिकवे न किए, कुछ भी न जुबाँ से काम लिया' में नूरजहाँ और कल्याणी के साथ उनका स्वर भी था।

जोहराबाई के गाए गीतों की कुल संख्या 1,500 बताई जाती है। 1953 के आसपास जब लता मंगेशकर पार्श्वगायन के क्षेत्र में सुस्थापित हो गईं तो सुरैया, शमशाद बेगम तथा जोहराबाई आदि गायिकाएँ पार्श्वभूमि में चली गईं। 1953 में बनी फिल्म 'तीन बत्ती चार रास्ते' में एक सहगान के दौरान जब उनसे एक-आध पंक्ति ही गवाई गई तो जोहराबाई ने पार्श्व गायन से अवकाश ले लिया और फिल्मों से दूर प्राय: गुमनामी की जिंदगी जीती रहीं। 21

फरवरी, 1990 में उनका निधन हो गया।

❑

18

खनकती आवाज की मालकिन : शमशाद बेगम

जिन लोगों ने फिल्म 'पतंगा' में 'मेरे पिया गए रंगून, किया है वहाँ से टेलीफून तुम्हारी याद सताती है' सुना है, उन्हें पता है कि इस युगल गीत में नारी स्वर शमशाद बेगम का था। गीत में रंगून और देहरादून की जिंदगी के दो पहलू नुमायाँ हुए थे। शमशाद बेगम का संगीत के प्रति आकर्षण ग्रामोफोन पर सुने गए गीतों से हुआ। उस जमाने में जब भोंपू वाले ग्रामोफोन से किसी गायिका अथवा गायक की आवाज निकलती तो बच्ची शमशाद भी उसे गुनगुनाने लगती। यही उसका रियाज था, यही उसकी साधना थी। संगीत के प्रति परिवारवालों की अनुकूल धारणा नहीं थी, बल्कि विरोध ही था। इन विपरीत परिस्थितियों में उसने संगीत के प्रति अपने आकर्षण को यथावत् रखा। संगीतकार मास्टर गुलाम हैदर ने जब उसके सुरीले स्वर को सुना तो तेरह साल की कच्ची उमर वाली इस बालिका से उन्होंने एक पंजाबी गीत गवाया—'हथ जोड़ा पँखिया दा।' यह गाना जब लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचा तो रिकार्ड कंपनी ने उससे ढेर सारे गीत गवा डाले। प्रत्येक गीत का मेहनताना केवल साढ़े बारह रुपए के हिसाब से मिला, किंतु उस जमाने में वही क्या कम था? तब तक शमशाद बेगम को न तो पार्श्वगायन का ज्ञान था और न अनुभव।

पंचोली पिक्चर्स के दिलसुख पंचोली ने शमशाद की गायन प्रतिभा को पहचाना और पहली बार पंजाबी फिल्म 'यमला जट' में उसके आठ गीत पार्श्व गायन के रूप में पेश किए। इसके बाद शमशाद बेगम पंजाबी फिल्मों की दुनिया से हटकर हिंदी फिल्मों के विस्तृत संसार में आ गईं। शमशाद बेगम की स्वर-यात्रा 1941 में बनी लोकप्रिय फिल्म 'खजांची' से आरंभ होती है। इस फिल्म की नायिका रमोला अपनी सहेलियों के साथ साइकिल पर बैठकर पिकनिक के लिए जाती है। इस अवसर पर सम्मिलित स्वरों में गाए गए गीत 'सावन के नजारे हैं' में प्रधान स्वर शमशाद का ही था। मुकेश के साथ गाया गया उनका गीत 'मोती चुगने गई रे हंसिनी मानसरोवर तीर' शब्द चयन और गायकी दोनों दृष्टियों से अपूर्व था। 'खजांची' में उसके जो अन्य गीत लोकप्रिय हुए, वे थे—'लौट गई पापन अँधियारी' तथा साथियों के साथ गाया गया गीत 'दीवाली फिर आ गई सजनी।'

शमशाद बेगम द्वारा गाये गए लोकप्रिय गीतों की सूची बहुत लंबी है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं—'जब उसने गेसू बिखराए बादल आया झूम के' ('शाहजहाँ'-1946), राजकपूर की फिल्म 'आग' (1948) में 'न आँखों में आँसू न होंठों पे हाय' तथा 'काहे कोयल शोर मचाए', 'रे मुझे अपना कोई याद आए रे।' नौशाद के संगीत से सजी फिल्म 'मेला' भी 1948 में रिलीज हुई। इसमें शमशाद के ये गीत पसंद किए गए—'तकदीर बनी बनकर बिगड़ी', 'धरती को आकाश पुकारे', 'मोहन की मुरलिया बाजे' तथा 'परदेसी बलम तुम जाओगे' आदि। नौशाद ने 'चाँदनी रात' (1949) का संगीत दिया था। इस फिल्म में शमशाद के कुछ मधुर गीत थे—'आँख मिली दिल चला गया' 'खबर क्या थी कि गम खाना पड़ेगा' (मोहम्मद रफी के साथ)। 1949 में खेमचंद प्रकाश के संगीत निर्देशन में बनी

फिल्म 'रिम झिम' आई तो वियोग की वेदना को व्यक्त करनेवाला शमशाद का करुणासिक्त स्वर सुनाई पड़ा—'न तुम आए न नींद आई, तुम्हारी याद ही आई।' फिल्म 'दुलारी' (1949) का संगीत भी नौशाद ने ही दिया था। इसमें शमशाद के गीत थे—'चाँदनी आई बन के प्यार' तथा 'ना बोल पी पी मोरे अँगना पंछी जा रे जा' संगीत की दृष्टि से लाजवाब फिल्म 'अनमोल घड़ी' (1946) में शमशाद तथा जोहराबाई ने युगल स्वरों में एक ही गीत गाया था—'उड़नखटोले पे उड़ जाऊँ तेरे हाथ न आऊँ।' इस एक गीत ने ही श्रोताओं को विस्मय-विमुग्ध कर दिया था। शमशाद के गायन में चुहल तथा वक्रोक्ति के नमूने फिल्म 'नमूना' (1949) के इस गीत में देखे गए—'टमटम से झाँको ना रानी जी'।

नौशाद के संगीत से सजी फिल्म 'बाबुल' 1950 में रिलीज हुई। इसमें शमशाद की गायन कला श्रेष्ठता की ऊँचाई पर थी। धड़के मेरा दिल, मुझको जवानी राम कसम न भाए, मिलते ही आँखें दिल हुआ दीवाना किसी का (तलत के साथ)। पिता के घर को छोड़कर पतिगृह के लिए प्रस्थान करने वाली नव विवाहित पुत्री के मन के उद्गारों को शमशाद ने इस गीत में अत्यंत भावपूर्ण स्वरों में व्यक्त किया था—'छोड़ बाबुल का घर मोहे पी के नगर आज जाना पड़ा।' विदा के समय जब-जब यह गीत बजता है, सुननेवालों की आँखें भर आती हैं। खुद शमशाद बेगम ने अपने एक संस्मरण में सुनाया—''मेरी बेटी की विदाई हो रही थी। सारा वातावरण गमगीन था। अचानक यही गीत बजाया गया। मेरी बेटी रोती-रोती हँस पड़ी। उसके मुँह से निकला 'अरे, यह तो अम्मी का गाया गीत है।' खुशी की मुसकान से उसका चेहरा आलोकित हो उठा। 'बाबुल' में ही शमशाद ने लता के साथ एक और आकर्षक गीत गाया—'किसी के दिल में रहना था।'

वर्ष 1951 में संगीत प्रधान फिल्म 'दीदार' आई। इसका संगीत भी नौशाद का ही था। इसमें शमशाद ने गाया—'चमन में रहके वीराना मेरा दिल होता जाता है।' इसी साल बनी फिल्म 'बहार' में उसने एस.डी. बर्मन के निर्देशन में एक फड़कता हुआ गीत गाया—'दुनिया का मजा ले लो दुनिया तुम्हारी है।' इसी फिल्म का एक अन्य गीत 'सैंया दिल में आना रे' अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। प्रेम के विभिन्न रंगों को अभिव्यक्त करने वाले उनके अन्य गीत थे—'ये अफसाना नहीं जालिम मेरे दिल की कहानी है' ('दर्द') तथा 'नहीं फरियाद करते हम' ('सावन आया रे')। विभिन्न मनोभावों को व्यक्त करने वाले गीतों को गाने में शमशाद का कोई मुकाबला नहीं रहा। नवोढ़ा की विदाई के अवसर पर वे 'मदर इंडिया' में यह गीत गाती हैं—'पी के घर आज प्यारी दुलहनिया चली' तो फिल्म 'आवारा' में 'एक दो तीन आ जा मौसम है रंगीन' जैसा फड़कता हुआ गीत गाने में भी उन्हें कठिनाई नहीं हुई। गीतों का यह बहुरंगीपन ही शमशाद के गायन की विशेषता है। अवसाद और निराशा के भावों को उन्होंने इस गीत में व्यक्त किया—'तकदीर बनी बनकर बिगड़ी दुनिया ने हमें बरबाद किया।' प्रेम की सूक्ष्म भंगिमा के चित्रण तथा शमशाद के स्वर में इस गीत ने मणिकांचन संयोग पैदा कर दिया था—'बड़ी मुश्किल से दिल की बेकरारी को करार आया', किंतु यहाँ विरोधाभास तो यह है 'जिस जालिम ने तड़पाया उसी पे मुझको प्यार आया।'

आज जो गीत धूम-धड़ाके वाले माने जाते हैं और नई पीढ़ी के युवा जिन पर सौ जान से निछावर हैं, उनका आगाज भी शमशाद बेगम ने ही किया था। उनकी फड़कती और करारी आवाज का एक अलग ही जादू और समाँ था। 'एक दो तीन आ जा मौसम है रंगीन ('आवारा') का संकेत किया जा चुका है। 'कभी आर कभी पार', (सी. आई. डी.) का 'ले के पहला-पहला प्यार' तथा 'आना मेरी जान संडे के संडे' जैसी गीत भी उन्हीं के गाए हुए हैं। 'दुनिया रूप की चोर' इस गाने को उन्होंने पाँच भाषाओं में गाया था। मुकेश के साथ गाए गए उनके एक अत्यंत मधुर गीत 'मोती चुगने गई रे इंसिनी मानसरोवर तीर' की अब स्मृति ही बाकी है। सौभाग्य से शमशाद आज भी हमारे बीच हैं, किंतु संगीत की दुनिया से उन्होंने काफी समय पहले ही संन्यास ले लिया था।

❑

19

मलिका-ए-तरन्नुम—नूरजहाँ

'मलिका-ए-तरन्नुम' अर्थात् सुर-सम्राज्ञी कहलानेवाली नूरजहाँ आज भी भारतीय उपमहाद्वीप में लाखों संगीत-प्रेमियों के दिल की धड़कन बनी हुई है। नूरजहाँ का जन्म पाकिस्तान के कसूर नामक नगर में हुआ था। छह वर्ष की अल्पायु में उसने संगीत सीखना आरंभ किया। अपने परिवार के साथ वह एक बार कलकता आई और मदन थियेटर्स की फिल्म 'गैबी गोला' में बेबी नूरजहाँ के नाम से उसने एक संक्षिप्त भूमिका निभाई। उसके बाद वह पुनः लाहौर चली गई। 1939 में पंजाबी में बनी 'गुले-बकावली' फिल्म में नूरजहाँ ने गीत गाए। इसका श्रेय संगीतकार गुलाम हैदर को दिया जाना चाहिए, जिनके उपयुक्त मार्गदर्शन में नूरजहाँ को संगीत में निपुणता प्राप्त हुई।

पंचोली पिक्चर्स की फिल्म 'खानदान' में नूरजहाँ ने अभिनय तथा गायन दोनों में सफलता पाई। इसमें गाए गए गीत 'तू कौन सी बदली में मेरे चाँद है आ जा' तथा 'मेरे लिए जहान में चैन ना करार है' आज भी पुरानी पीढ़ी के लोगों की जबान पर चढ़े हुए हैं। 'खानदान' की सफलता ने नूरजहाँ को सिने जगत् में प्रतिष्ठित किया और वह बंबई आ गई। यहाँ उसने गायिका और अभिनेत्री के रूप में अनेक फिल्मों में काम किया। नूरजहाँ ने 'नादान' (1943), 'दोस्त' (1944), 'लाल हवेली' (1944), 'भाई जान' (1945), 'बड़ी माँ' (1945), 'गाँव की गोरी' (1945), 'जीनत' (1945), 'अनमोल घड़ी' (1946), 'दिल' (1946), 'हमजोली' (1946), 'जुगनू' (1947) और 'मिर्जा साहिबा' (1947) आदि फिल्मों में काम किया। इन सभी फिल्मों में उसने गाने भी गाए, जो काल की सीमा का अतिक्रमण कर आज भी श्रोता समाज के कानों में रस-वर्षा कर रहे हैं। नूरजहाँ के ऐसे गीतों में कुछ मुख्य हैं—'बदनाम मोहब्बत कौन करे' ('दोस्त'), 'आ इंतजार है तेरा दिल बेकरार है मेरा' ('बड़ी माँ'), 'किसी तरह से मोहब्बत में चैन पा न सके' ('बड़ी माँ'), 'किस तरह भूलेगा दिल उनका खयाल आया हुआ' ('गाँव की गोरी'), 'नाचो सितारो नाचो', 'बुलबुलो मत रो यहाँ', 'आँधियाँ गम की यूँ चलीं बाग उजड़ के रह गया' (तीनों गीत 'जीनत' के)। इन सभी गीतों ने नूरजहाँ को संगीत सम्राज्ञी के आदरास्पद पद पर पहुँचाया। प्रेम और वियोग की अनुभूति को वाणी देने में नूरजहाँ को अपार क्षमता प्राप्त थी। यही कारण था कि 'जीनत' में गाए गए उसके गीत 'बुलबुलो मत रो यहाँ आँसू बहाना है मना' तथा 'आँधियाँ गम की यूँ चलीं' अत्यंत लोकप्रिय हुए।

इसके बाद आई फिल्म 'अनमोल घड़ी' ने उसके संगीत को सफलता की चरम सीमा पर पहुँचा दिया। महबूब प्रोडक्शन की इस फिल्म में प्रेम का त्रिकोण है, जिसमें नूरजहाँ के अतिरिक्त सुरैया और गायक-अभिनेता सुरेंद्र हैं। नौशाद ने इस फिल्म में जो संगीत दिया, वह आज वर्षों बीत जाने पर भी उतना ही ताजा है जितना 1946 में था। 'आ जा मेरी बरबाद मोहब्बत के सहारे', 'क्या मिल गया भगवान तुम्हें दिल को दुखा के', 'सोचा था क्या क्या हो गया', 'मेरे बचपन के साथी', 'जवाँ है मोहब्बत हसीं है जमाना' आदि नूरजहाँ के गीतों ने संगीत की दुनिया में अजीब धूम मचाई थी। सुरेंद्र के साथ गाया गया उसका गीत 'आवाज दे कहाँ है, दुनिया मेरी जवाँ है' आज भी मानो

गीत की गायिका तथा उसके सहगायक को आवाज देकर बुलाता है। 1947 भारत और पाकिस्तान की आजादी का साल था। नूरजहाँ को भी इसी वर्ष भारत से विदा लेनी थी। इसी वर्ष शौकत आर्ट प्रोडक्शन ने 'जुगनू' फिल्म बनाई, जिसमें नूरजहाँ के साथ नायक की भूमिका में दिलीप कुमार थे। इस फिल्म में नूरजहाँ के गाए गीत 'हमें तो शामे-गम में काटनी है जिंदगी अपनी' ने जहाँ गायिका के विरह को साकार किया, वहीं मोहम्मद रफी के साथ गाया गया दार्शनिक भावों से भरा उसका गीत 'यहाँ बदला वफा का बेवफाई के सिवा क्या है' प्रेम की निराशा तथा सुख-दुःख के क्रमिक आने-जाने को रेखांकित करता है। मानवी अवसाद तथा दार्शनिक तटस्थता का इतना सहज चित्रण अन्यत्र कहाँ मिलेगा? 'मिर्जा साहिबा' नूरजहाँ की आखिरी फिल्म थी, जो भारत में बनी। पंजाब की एक लोककथा के रोमांस को इसमें चित्रित किया गया था। इस फिल्म में भी उसके दो गीत प्रसिद्धि पा सके, 'आ जा तुझे अफसाना जुदाई का सुनाएँ' तथा 'क्या यही तेरा प्यार था'।

बाद में 'जुगनू' फिल्म के निर्देशक शौकत हुसैन रिजवी से नूरजहाँ ने विवाह कर लिया। पाकिस्तान बनने पर वह अपने पति के साथ वहाँ चली गईं। पाकिस्तान में भी उनकी संगीत-साधना यथावत् चलती रही। सीमा के दोनों ओर के लोगों ने नूरजहाँ की कला की भरपूर सराहना की है। कुछ वर्ष पूर्व जब वह भारत आईं तो बंबई की एक स्वागत सभा ने नूरजहाँ का जिस उत्साह से स्वागत किया, वह यह सिद्ध कर रहा था कि कला को देश और काल की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता।

❑

20

अभिनय और संगीत में प्रवीणा : सुरैया

एकाधिक कलाओं का एक व्यक्ति में विकास प्राय: दुर्लभ होता है, किंतु हिंदी फिल्माकाश में सुरैया ही एक ऐसी तारिका के रूप में उदित हुई, जिसमें गायन, नृत्य तथा अभिनय—तीनों कलाएँ त्रिवेणी के रूप में विद्यमान थीं। कई दशक पूर्व उन्होंने रजत पट से विदाई ले ली थी तथापि उनके गायन तथा अभिनय से लाखों लोग प्रभावित थे। 15 जून, 1929 को सुरैया का जन्म लाहौर में अजीज शेख के यहाँ हुआ, जो पेशे से आर्किटेक्ट थे। सुरैया के मामा अता जहूर शेख ने उसे रजत पट की दुनिया से परिचित कराया। वे स्वयं खलनायक का रोल किया करते थे। उन्होंने किशोरी सुरैया में छिपे गुणों को पहचाना और उसकी माँ मलिका बेगम तथा नानी सहित उसे माया नगरी बंबई ले आए। बेबी सुरैया की पढ़ने-लिखने में तो रुचि नाम मात्र की ही थी। वह सैगल, कानन और खुर्शीद के गीत प्राय: गुनगुनाती रहती। 1941 में नानू भाई वकील की फिल्म 'ताजमहल' में उसे एक छोटी सी भूमिका मिली। अन्य चार फिल्मों में भी वह बाल कलाकार के रूप में आई और 1942 में बनी फिल्म 'शारदा' में पार्श्वगायिका के रूप में उसने एक गीत गाया—'पंछी जा, पीछे रहा है बचपन मेरा उसको जा के ला'। इस गीत ने सुरैया को शोहरत दिलाई। उसका बचपन तो नहीं लौटा किंतु 'फिल्म संसार' में उसने अपनी मुकम्मल जमीन तलाश कर ली।

1943 में बनी फिल्म 'इशारा' के नायक पृथ्वीराज कपूर थे। यह संयोग ही था कि बीस बरस बाद 1963 में बनी उसकी अंतिम फिल्म 'रुस्तम-सोहराब' के नायक भी वे ही थे। निश्चय ही कला संसार में उसका कार्यकाल लंबा नहीं था। इस दौरान उसने लगभग सभी ख्यातनाम कलाकारों के साथ काम किया, जिनमें कुंदनलाल सैगल, पृथ्वीराज कपूर, श्याम, राजकपूर, देव आनंद, भारत भूषण और शम्मी कपूर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 1949 का वर्ष सुरैया के कृतित्व का सर्वश्रेष्ठ वर्ष रहा, जब उसने ग्यारह फिल्मों में काम किया। इनमें प्रमुख हैं—'अमर कहानी', 'बड़ी बहन', 'बालम', 'चार दिन', 'दिल्लगी', 'दुनिया', 'जीत', 'लेख', 'नाच', 'शायर' तथा 'सिंगार'। इन फिल्मों में उसने गाने भी गाए, जो लोकप्रिय हुए। 'बड़ी बहन' में गाए गीतों में 'वो पास रहें या दूर रहें नजरों में समाए रहते हैं', 'तुम मुझको भूल जाओ', 'बिगड़ी बनाने वाले बिगड़ी बना दे' आदि आज भी उतने ही पसंद किए जाते हैं जितने साठ साल पहले। अभिनेता श्याम के साथ सुरैया की जोड़ी फिल्म 'दिल्लगी' में खूब जमी थी, जब इस अभिनेता के साथ उसने एक-दो गाना गाया—'तू मेरा चाँद मैं तेरी चाँदनी'। संगीत नौशाद का था। उसके गाए कुछ अन्य लोकप्रिय गीत थे—'मुरली वाले मुरली बजा', 'ओ दूर जाने वाले वादा न भूल जाना' ('प्यार की जीत'), 'दुनिया क्या जाने मेरा अफसाना', 'नैन दीवाने इक नहीं माने' ('अफसर'), 'जब तुम ही नहीं अपने, दुनिया ही बेगानी है' ('परवाना') आदि।

यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि सुरैया ने संगीत का विधिवत् प्रशिक्षण नहीं लिया था। केवल ग्रामोफोन

रिकॉर्ड सुन-सुनकर ही उन्होंने अपनी गायकी विकसित की थी। यह सुरैया का ही कमाल था कि उसने अपने से पच्चीस वर्ष बड़े कुंदनलाल सैगल के साथ कई फिल्मों में काम किया। 'तदबीर' (1945), और 'उमर खैयाम' (1946) में वह सैगल की नायिका बनीं। 'परवाना' में गाए गए उनके कुछ गीत सचमुच लाजवाब थे। इनमें 'पापी पपीहा रे पी पी न बोल', 'जब तुम ही नहीं अपने, दुनिया ही बेगानी है', 'मेरे मुँड़ेरे न बोल' आदि चर्चित रहे। 1946 में बनी प्रसिद्ध संगीत प्रधान फिल्म 'अनमोल घड़ी' में वे नूरजहाँ के साथ सहनायिका थीं। यहाँ भी उन्होंने आपा नूरजहाँ की भाँति कुछ सफल तथा लोकप्रिय गीत गाए। 'मैं दिल में दर्द बसा लाई', 'सोचा था क्या, क्या हो गया', 'मन लेता है अँगड़ाई जीवन में जवानी छाई' आदि इसी कोटि के गीत थे। सुरैया को उस युग के सभी विख्यात संगीत-निर्देशकों का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ था। इनमें प्रमुख थे—हुश्नलाल भगतराम, नौशाद, गुलाम हैदर, बुलो सी. रानी, एस.डी. बर्मन, गुलाम मोहम्मद तथा हंसराज बहल आदि। 1954 में सोहराब मोदी द्वारा बनाई गई फिल्म 'मिर्जा गालिब' में संगीतकार गुलाम मोहम्मद ने सुरैया की गायन प्रतिभा का पूरा लाभ उठाया और गालिब की कुछ मशहूर गजलें उनसे गवाईं। गालिब का मशहूर कलाम 'दिले नादाँ तुझे हुआ क्या है' सुरैया से सुनकर गालिब के काव्य के मर्मज्ञ पं. जवाहरलाल नेहरू ने इस गायिका को दाद देते हुए कहा था—''लड़की, तुमने उनकी गजलें क्या गाईं, गालिब की रूह जिंदा कर दी।''

'मिर्जा गालिब' फिल्म को राष्ट्रपति के स्वर्ण पदक से नवाजा गया। इसमें सुरैया की गाई गालिब की अन्य दो गजलें थीं—'नुक्ता-चीं है गमे-दिल' तथा 'ये न थी हमारी किस्मत'। वस्तुत: सुरैया के गाए सभी गीत स्वर माधुर्य तथा अदायगी में अद्वितीय थे। कुछ अन्य गानों के बोल हैं—'रात की नींद छीन ली' ('शोखियाँ'), 'नैन दीवाने' ('अफसर'), 'तेरे नैनों ने चोरी किया' ('प्यार की जीत'), 'धड़कते दिल की तमन्ना' ('शमा'), 'ओ दूर जाने वाले' ('प्यार की जीत') आदि। 'अफसर' में गाया गया उनका गीत 'मन मोर हुआ मतवाला किसने जादू डाला रे' कवि नरेंद्र शर्मा द्वारा रचित था, जो भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से भरपूर साहित्यिक गुणों से परिपूर्ण था। गीत का भाषा एवं भाव सौंदर्य साहित्य की कसौटी पर खरा उतरा था। सुरैया हॉलीवुड के प्रसिद्ध अभिनेता ग्रेगरी पैक से अत्यधिक प्रभावित थी। उसने अपने साथ काम करनेवाले अभिनेता देवानंद में ग्रेगरी पैक की छवि को देखा तथा उन्हें अपने हृदय मंदिर में आराध्य देव की भाँति प्रतिष्ठित किया था। लगभग तय हो चुका था कि दोनों विवाह बंधन में बँध जाते, किंतु सुरैया की नानी ने दोनों के धर्म के अंतर को इस मिलन में बाधक बना दिया। अंतत: अपने प्रिय की वियोगिनी सुरैया ने जीवन-पर्यंत अविवाहित रहने का निश्चय कर लिया। फिल्मों में काम करना भी उसने गत शती के सातवें दशक में ही छोड़ दिया था। छठे दशक में उनकी लोकप्रियता का यह आलम था कि उनकी एक झलक पाने के लिए उनके प्रशंसक सुबह से शाम तक उनकी कोठी के सामने खड़े रहते थे। और ऐसा सौभाग्य अभी तक किसी दूसरी तारिका को नसीब नहीं हुआ है। एक अनोखा कीर्तिमान! बंबई के अपने मकान में शांत, एकांत जीवन व्यतीत करनेवाली सुरैया ने अंतत: एक दिन इस संसार से चुपचाप विदा ले ली।

❑

21

करुणा और पीड़ा की गायिका : गीता दत्त

प्रसिद्ध अभिनेता और निर्देशक गुरुदत्त की पत्नी गीता दत्त अपने युग की प्रसिद्ध पार्श्वगायिका थीं। उन्होंने एक से बढ़कर एक गीत गाकर फिल्म संगीत को समृद्ध किया। गीता राय के नाम से संगीत की दुनिया में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने वाली इस प्रख्यात गायिका के दुखद अंत की करुण-कथा नई पीढ़ी के लिए रहस्य तथा अबूझ पहेली बनकर रह गई। उन्होंने आत्महत्या का प्रयास किया। स्नानागार खून से भर गया था किंतु जिंदगी के दिन शेष थे, इसलिए उन्हें बचा लिया गया। अपने पति के लिए गीता ने सबकुछ बलिदान कर दिया था; परंतु उसी के द्वारा तिरस्कृत तथा प्रेम से वंचित अपने अंतर की पीड़ा को उसने अंत तक छिपाए रखा।

आकर्षक व्यक्तित्व तथा मधुर आवाज की धनी गीता राय ने गुरुदत्त के जीवन में उस समय प्रवेश किया, जब सिने जगत् में उन्हें पर्याप्त प्रसिद्धि मिल चुकी थी। गीता राय का गुरुदत्त से परिचय एक पार्टी में देव आनंद ने कराया था। वे एक बार फिर मिले। तब तक फिल्म 'बाजी' में गाए गए गीता के गीत 'तदबीर से बिगड़ी हुई तकदीर बना ले' ने संगीत जगत् में तहलका मचा रखा था। इसके बाद ही दोनों के प्रेम ने पींगें भरनी शुरू कीं। प्रेम-पत्रों का आदान-प्रदान होता था तथा साथ-साथ लंबी यात्राएँ भी होतीं। इसकी परिणति विवाह में हुई, जब कि दोनों के माता-पिता इससे असहमत थे। गीता बंगाल के कायस्थ परिवार की थीं, जबकि गुरुदत्त कर्नाटक के ब्राह्मण थे। उनका वैवाहिक जीवन कुछ बरसों तक ठीक-ठाक चलता रहा। इस बीच गुरुदत्त ने 'सी.आई.डी.' तथा 'प्यासा' जैसी मशहूर फिल्में बनाईं। यही समय था जब रजत पट पर वहीदा रहमान जैसी सशक्त अभिनेत्री का अवतरण हुआ। गुरुदत्त ने उस नई अभिनेत्री में जब दिलचस्पी लेनी शुरू की तो गीता दत्त को धक्का लगा। वह इस तथ्य को स्वीकार ही नहीं कर सकी कि उनके जैसी प्रेममयी पत्नी से विमुख होकर गुरुदत्त कोई दूसरा रास्ता भी अपना सकते हैं। किंतु धीरे-धीरे सचाई का सामना करना पड़ा और अब गीता की बेचैनी बढ़ने लगी। इस दु:ख को भुलाने के लिए उसने नींद की गोलियों तथा शराब का सहारा लिया।

गुरुदत्त ने पत्नी से बेरुखी तो दिखाई ही, अपनी फिल्मों के अतिरिक्त अन्य फिल्मों में पार्श्वगायन देने के लिए उसने गीता को मना कर दिया। यही आदेश उसने वहीदा रहमान को भी दिया कि वह उसकी फिल्मों के अलावा कहीं अन्य कार्य न करे। गीता दत्त अब टूटने लगी किंतु अपने मन की व्यथा को उसने अपने तक ही रखा। काफी समय तक गीता अपने पति की अन्य नारी के प्रति आसक्ति को दार्शनिक की भाँति तटस्थता से देखती रही, किंतु जब यह प्रकरण सार्वजनिक होने लगा तो उसने पति से अलग होना ठीक समझा। अब वह अपने बच्चों को लेकर अलग रहने लगी। किंतु प्रिय वियोग निरंतर दु:सह होता गया। इधर गुरुदत्त तथा वहीदा का साथ-साथ काम करने का करार भी समाप्त होने को आया। वहीदा रहमान फिल्मी दुनिया में शोहरत तथा मकबूलियत हासिल कर चुकी

थीं। अब उन्हें गुरुदत्त जैसे सहायक या मार्गदर्शक की आवश्यकता नहीं थी। गुरुदत्त चाहते थे कि वहीदा के उनकी फिल्मों में काम करने के सात वर्ष के करार को आगे बढ़ाया जाए, किंतु वहीदा को यह स्वीकार नहीं था। जब उसने अन्यत्र काम करने की इच्छा जाहिर की तो गुरुदत्त को मानसिक आघात लगा। उधर 'कागज के फूल' की असफलता ने उसकी निराशा को चरम सीमा तक पहुँचा दिया। उसने नशेबाजी में अपनी कठिनाइयों का समाधान तलाश किया और एक दिन अधिक मात्रा में नींद की गोलियाँ खाकर अपने दुखद जीवन का अंत कर लिया। 1966 में जब गुरुदत्त की मृत्यु हुई, उस समय गीता की आयु अधिक नहीं थी।

दोनों के निकटस्थ मित्रों का कहना है कि गुरुदत्त की लाश के समीप पत्थर की बुत सी बनी गीता ने अपनी ननद से कहा,''शायद आप लोग इसके लिए मुझे ही जिम्मेवार मानती हैं।'' गुरुदत्त की मृत्यु के बाद लोगों ने गीता के गायन को तो याद रखा किंतु उसे भुला दिया। उसकी विपत्तियों का अंत कहाँ था? जिस मकान में वह अपने बच्चों के साथ जिंदगी का सफर जैसे-तैसे तय कर रही थी, उसका सहारा भी अब नहीं रहा। कोई सहायता के लिए आगे नहीं आया। कहते हैं कि गुरुदत्त फिल्म्स के कलाकारों के वेतन का भुगतान करने के लिए उसने एक बार अपने सारे गहने दे दिए थे। उसके पुत्र तरुण दत्त ने एक बार कहा, ''गुरुदत्त फिल्म्स के बैनर में मेरे चाचा (गुरुदत्त के भाई आत्माराम) ने तीन फिल्में बनाईं, किंतु मेरी मम्मी को इनमें गाने के लिए नहीं कहा।'' संगीत के संसार में गीता अपना गौरवपूर्ण स्थान बना चुकी थी, किंतु जब उन्हें पैसे की जरूरत थी तब कोई निर्माता उनसे गवाने के लिए तैयार नहीं था। गीता प्रबल स्वाभिमानिनी थी, इसलिए उसने अपने बच्चों का पालन करने के लिए मंच पर गाना तो मंजूर किया किंतु पार्श्वगायन नहीं किया। अत्यंत कष्टप्रद जीवन व्यतीत करते हुए भी उसने अपने बच्चों को अपनी तकलीफों का आभास नहीं होने दिया। गीता की मृत्यु के बाद उसके पत्रों तथा डायरियों से ही उसके बच्चे यह जान पाए कि उनकी माँ ने कितने कष्ट उठाकर उनका पालन किया था। जीवन के आखिरी दो साल उसने अत्यंत कष्ट में व्यतीत किए। उसके दोनों बेटे अपनी माँ की रोग शैया के इर्द-गिर्द रहकर अंतिम क्षण-पर्यंत उसकी सेवा करते रहे।

इसे विधि की विडंबना ही कहा जाएगा कि फिल्म 'साहब, बीबी और गुलाम' में छोटी बहू का चरित्र निभानेवाली मीना कुमारी तथा उनके दर्द को अपने गीत 'न जाओ सैयाँ छुड़ा के बैयाँ, कसम तुम्हारी मैं रो पड़ूँगी' के द्वारा सशक्त अभिव्यक्ति देनेवाली गीता दत्त, दोनों ही नशाखोरी में पड़कर जिंदगी से किनारा कर गईं। जिगर के रोग ने इन दोनों अदाकारों का अंत कर दिया। 20 जुलाई, 1972 को गीता की मृत्यु हो गई। जिस गीता ने 'मेरा सुंदर सपना बीत गया, मैं प्रेम में सबकुछ हार गई, बेदर्द जमाना जीत गया' जैसा नैराश्य भाव को प्रकट करनेवाला गीत गाया था, उसके स्वप्नशील जीवन का भी वैसा ही करुणापूर्ण अंत हुआ। 'वक्त ने किया क्या हसीं सितम' के बोल गीत की गायिका पर ही लागू हो गए और 'याद करोगे याद करोगे इक दिन हमको याद करोगे' कहकर गीता ने मृत्यु का वरण कर लिया।

पार्श्वगायिका गीता दत्त

गीता राय ने सर्वप्रथम सोलह वर्ष की आयु में फिल्म 'प्रह्लाद' में पार्श्वगायन किया। उन्हें इस क्षेत्र में प्रसिद्धि मिली फिल्म 'दो भाई' के गानों से। इसमें संगीत निर्देशन सचिनदेव बर्मन का था। यह फिल्म 1947 में बनी थी और इसमें उन्होंने 'मेरा सुंदर सपना बीत गया' तथा 'याद करोगे याद करोगे इक दिन हमको याद करोगे' जैसे मधुर तथा लुभावने गीत गाए थे। 1950 में बनी फिल्म 'जोगन' में उन्होंने मीराबाई के भजनों का सुंदर प्रस्तुतीकरण किया। 'मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ' भजन में जहाँ कवयित्री मीरा की प्रगाढ़ भक्ति व्यक्त हुई है, वहाँ गीता की मधुर स्वर लहरी ने उसे प्रभावी बनाया है। 'नव दुर्गा', 'गणेश महिमा' तथा 'हर-हर महादेव' आदि धार्मिक फिल्मों के लिए भी

उन्होंने अनेक भक्ति गीत गाए। 'कंकर कंकर से मैं पूछूँ शंकर मेरा कहाँ है' यह गीत उस समय गली-गली में गूँज उठा था। 1950 में फिल्म 'बावरे नयन' बनी तो उन्होंने मुकेश के साथ एक और रससिक्त गीत गाया था—'खयालों में किसी के इस तरह आया नहीं करते'। इसी साल बनी एक अन्य फिल्म 'जान-पहचान' में उन्होंने तलत महमूद के साथ गाया—'अरमान भरे दिल की लगन तेरे लिए है ओ सजन तेरे लिए है।' फिल्मी संगीत में गीता दत्त की पक्की पहचान फिल्म 'बाजी' ने बनाई। इसका संगीत भी एस.डी. बर्मन का ही था। इसमें उनके दो गीत विशेष लोकप्रिय हुए—'सुनो गजर क्या गाए' तथा 'तदबीर से बिगड़ी हुई तकदीर बना ले, किस्मत पे भरोसा है तो इक दाँव लगा ले।' भारत के प्रथम राजनीतिक उपन्यास बंकिमचंद्र के 'आनंद मठ' पर 1952 में जब फिल्म बनी तो गीता ने महाकवि जयदेव के 'जय जगदीश हरे' स्तोत्र को विशिष्ट गरिमा तथा भाव भंगिमा के साथ गाकर संस्कृत की इस गीतिका को जनमानस तक पहुँचाया। उसके अन्य चर्चित गीत हैं—'ये लो मैं हारी पिया', 'प्रीतम आन मिलो', 'ए दिल मुझे बता दे तू किस पे आ गया है' तथा 'जाने क्या तूने कही जाने क्या मैंने सुनी।' गुरुदत्त द्वारा बनाई गई 'आर-पार', 'सी.आई.डी.', 'प्यासा' तथा 'कागज के फूल' आदि सभी फिल्मों में गीता का प्रभावशाली और मोहक गायन गुणवत्ता तथा अदाकारी की ऊँचाइयों को छू सका था। 'आर-पार' का गीत 'बाबूजी धीरे चलना', 'प्यासा' का गीत 'आज सजन मोहे अंग लगा लो जनम सफल हो जाए' तथा 'कागज के फूल' में गाया गया गीत 'वक्त ने किया क्या हसीं सितम' सभी लाजवाब थे। ओ.पी. नैयर ने फिल्म 'हावड़ा ब्रिज' में उनसे एक गीत गवाया था—'मेरा नाम चिन चिन चू'। यह गीत गीता की करुणा और विषाद की जानी-पहचानी शैली से हटकर था, जो उल्लास तथा उत्फुल्लता का संदेश देता है। सच तो यह है कि उनकी शोख और मद भरी आवाज का सर्वोत्कृष्ट उपयोग ओ.पी. नैयर ने ही किया।

❑

22

शताब्दी की पार्श्वगायिकालता मंगेशकर और उनके हमसफर

पचास साल से अधिक काल तक लगातार संगीत साधना में लगे रहना दुनिया का आठवाँ आश्चर्य है और इसे साकार किया है सुर सम्राज्ञी लता मंगेशकर ने। 28 अक्तूबर, 1929 को मराठी के सुप्रसिद्ध अभिनेता तथा गायक दीनानाथ मंगेशकर के यहाँ जनमी लता पर अपने भाई, बहनों तथा विधवा माता के पालन-पोषण का भार उसी समय आ गया था जब वह मात्र तेरह वर्ष की किशोरी थी। गुरु से अधिक अपने पिता के समीप रहकर उसने जो कुछ सीखा, उसी के बलबूते पर उसे अपनी गायन कला का विकास और परिष्कार करने का अवसर मिला। पार्श्वगायन में लाजवाब गायकी का नया मानदंड स्थापित करनेवाली लता ने देश-विदेश में सैकड़ों मंच-कार्यक्रम दिए, जहाँ हजारों श्रोताओं ने उससे रू-ब-रू होकर उसकी वीणा विनिंदित स्वरमाधुरी का आनंद लिया और स्वयं को सम्मोहित महसूस किया। लता का यह मंचीय कार्यक्रम गीता के इस श्लोक से आरंभ होता है, जब वह मंगलाचरण के रूप में भगवान् कृष्ण के आश्वासन भरे कथन को प्रस्तुत करती है—

इदं तु गुह्यतमं ज्ञानं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष सेऽशुभात्॥

लता के कार्यक्रम का समापन देश के लिए सर्वस्व निछावर करनेवाले शहीदों को श्रद्धासुमन रूप में गाए गए गीत 'ए मेरे वतन के लोगो' से होता है। इसी हृदय द्रावक गीत के बोलों को गायिका के स्वर में सुनकर 26 जनवरी, 1963 के दिन तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. नेहरू की आँखें भर आई थीं और उन्होंने लता से कहा था, ''बेटी, आज तूने मुझे रुला दिया।'' यह थी गाने की हृदय-द्रावक शक्ति।

लता और सैगल

शालीन, विनम्र तथा संगीत के लिए पूर्ण समर्पित लता के मन में अपने अग्रज गायकों के प्रति सम्मान का भाव रहा तो अपने समकालीन हमसफर गायकों को उन्होंने भरपूर स्नेह तथा आदर दिया। अपने से कनिष्ठ गायक-गायिकाओं को उनका आशीर्वाद सदा सुलभ रहा है। लता ने पार्श्वगायन के क्षेत्र में जिस समय प्रवेश किया था, उस समय के.एल. सैगल, पंकज मलिक, कोकिलकंठी कानन तथा खनकती आवाज की मलिका नूरजहाँ के चर्चे थे, जबकि इनमें से अधिकांश स्वर-संसार से विदा ले चुके थे। 1947 के आरंभ में सैगल स्वर्ग सिधार गए तथा नूरजहाँ ने पाकिस्तान की नागरिकता स्वीकार कर ली थी। सैगल के जादू भरे गीतों ने लता को किशोरावस्था में ही आकर्षित किया था। महाराष्ट्र के नगर सांगली में जब उसने अपने पिता की मौजूदगी में सैगल का प्रसिद्ध गीत 'मैं क्या जानूँ क्या जादू है' गाया तो उसे सुननेवालों से अपार वाहवाही मिली थी। सैगल की फिल्म 'चंडीदास' को उसने तब देखा था जब वह मात्र छह साल की बच्ची थी और तब उसने घर आकर ऐलान कर दिया था कि 'बड़ी होकर मैं सैगल से शादी करूँगी।' 1942 में पिता दीनानाथ मंगेशकर की मृत्यु हो गई। दो बरस बाद जब कोल्हापुर

के पैलेस-थियेटर में उनकी दूसरी पुण्यतिथि आयोजित की गई तो लता ने पुन: सैगल का वही गीत गाया, 'मैं क्या जानूँ क्या जादू है'। सैगल की गायकी ने लता को अंतस्तल तक प्रभावित किया किंतु कैसी विडंबना थी कि लता को उनसे मिलने का कभी अवसर नहीं मिला। जनवरी 1947 में लता ने स्वोपार्जित राशि के पूरे सवा पाँच सौ रुपयों में एक रेडियो सैट खरीदा, जिसकी तमन्ना उनको बहुत दिनों से थी। घर में पूरा फर्नीचर भी नहीं था, इसलिए दरी पर रखकर उन्होंने ज्यों ही रेडियो ऑन किया, तो जो पहली आवाज सुनाई पड़ी, वह सैगल के निधन का समाचार था। सैगल की मृत्यु 18 जनवरी, 1947 को हुई थी। पार्श्वगायन में जिसे अपना आदर्श माना उस महान् कलाकार कुंदनलाल सैगल की मौत की खबर देनेवाले रेडियो सैट को लता ने अपशगुन समझा और दूसरे ही दिन कम पैसों में उसे बेच दिया। सैगल विषयक अपनी स्मृतियों को कुरेदते हुए लता ने बताया था कि यद्यपि उसे इस महान् गायक का दीदार हासिल करने का मौका तो नहीं मिला था, किंतु बाद में जब वह उनके परिवारवालों से मिली तो यादगार के तौर पर सैगल की अँगजी उनसे माँग लाई, जिसे वह एक अनमोल धरोहर के रूप में अभी तक सहेजे हुए हैं। वर्षों बाद जब दिवंगत गायकों को 'श्रद्धांजलि' अर्पित करते हुए इसी नाम की कैसेट तैयार की गई तो लता ने सैगल का वही गीत 'मैं क्या जानूँ क्या जादू है' गाया, जो उनकी राय में उस स्वर्गीय गायक की कला का शीर्ष बिंदु है।

लता और नूरजहाँ

पाकिस्तान में 'मलिका-ए-तरन्नुम' के सम्मान से नवाजी गई नूरजहाँ से लता का बहनापा रहा है। लता ने अपने ऊपर नूरजहाँ के प्रभाव को स्वीकार किया है। मास्टर विनायक (अभिनेत्री नंदा के पिता) ने जब अपनी फिल्म 'बड़ी माँ' का निर्माण किया (प्रफुल्ल पिक्चर्स के बैनर तले) तो नूरजहाँ और लता का मिलना हुआ। नूरजहाँ उस जमाने की जानी-मानी अभिनेत्री तथा गायिका थीं। इस फिल्म में बेबी लता का भी एक संक्षिप्त रोल था। दो शॉटों के बीच जब फुरसत के कुछ लम्हे आते तो नूरजहाँ लता से गाने का आग्रह करतीं और कभी दोनों मिलकर गातीं। उसी समय नूरजहाँ ने मानो भविष्यवाणी करते हुए कहा था, ''विनायक साहब, मैं अभी से बता देती हूँ, यह लता एक दिन बहुत बड़ी गायिका बनेगी।'' 'मलिका-ए-तरन्नुम' तथा 'स्वर सम्राज्ञी' के स्नेह संबंधों का सूत्रपात उसी दिन से हुआ था।

मास्टर गुलाम हैदर लता को फिल्मिस्तान के मालिक शशधर मुखर्जी के पास ले गए और अठारह साल की इस साँवली सी मराठी लड़की को काम देने के लिए कहा। पता नहीं, मुखर्जी मोशाय को लता की आवाज कुछ ज्यादा ही पतली लगी और उन्होंने उसे अपनी फिल्मों में गवाने से इनकार कर दिया। इस पर संगीतकार गुलाम हैदर ने साफ कहा, ''आप मालिक हैं, भले आज इनकार कर दें, पर देखिएगा, एक दिन फिल्म निर्माता इसी लड़की के पाँवों में लोटेंगे।'' बात सच निकली, आगे चलकर लता ने फिल्मिस्तान के लिए अनेक गाने गाए। गुलाम हैदर बड़े गर्व के साथ कहा करते थे कि जैसे नूरजहाँ को फिल्मों में लाने का श्रेय उन्हें मिला, लता को भी सही मायनों में वे ही इस क्षेत्र में लाए हैं।

देश विभाजन के बाद नूरजहाँ पाकिस्तान चली गईं किंतु लता से उनकी मैत्री का बंधन अटूट रहा। दोनों फोन पर बड़ी देर तक बतियातीं। नूरजहाँ की फरमाइश के गीतों को लता फोन पर बड़ी देर तक सुनाती। टेलीफोनवालों को इनकी दिलचस्प बातों में बड़ा रस मिलता। बाद में जब हिंदुस्तानी फिल्मी गीतों पर पाकिस्तान में रोक लगा दी गई तो लता को पता चला कि उसकी प्रिय सहेली 'नूर' को तास्सुबी लोगों से कैसे-कैसे बोल सुनने पड़े थे, 'इन लोगों से क्यों दोस्ती बढ़ानी चाहिए, अब तो हम अलग-अलग हो गए हैं' आदि। किंतु जहाँ हृदय के तार मिल जाते हैं, वहाँ मजहब और मुल्क की सरहदें बेकार हो जाती हैं।

वर्ष 1953-1954 के साल में एक ऐसा ही मौका आया जब फिल्म 'झाँझर' के सिलसिले में लता को अमृतसर जाना पड़ा। उन्होंने नूरजहाँ से ट्रंककॉल द्वारा बात की और बाघा सीमा के नो मैन्स लैंड में मिलने का निश्चय किया। काफी देर तक दोनों सखियों ने अपनी प्यार भरी यादें ताजा कीं। भीगी पलकें लिये जब जुदाई का क्षण आया तो नूरजहाँ ने लता के हाथ में एक छोटा सा डिब्बा थमा दिया। सुरक्षाकर्मियों ने जब उसे देखा तो पता चला कि नूरजहाँ ने उसमें मीठी सिवइयाँ तथा आम का एक व्यंजन रखा था, जो लता को प्रिय था। यादगार के तौर पर नूरजहाँ ने लता को अपनी फोटो भेजी। उस पर उर्दू में लिखा था—''गाने की मलिका लत्तो (लता) को उसकी नूरी (नूरजहाँ) का नाचीज तोहफा कुबूल हो। फकत, लत्तो की नूरी।'' नूरजहाँ का प्यार इन लफ्जों से टपक रहा था।

लता और जोहराबाई

'रतन' फिल्म के गानों की अमर गायिका जोहराबाई अंबालावाली लता से वरिष्ठ थीं। उस दिन राजकमल स्टूडियो में लता के गाने की रिहर्सल थी। पता चला कि अभी इसी वक्त जोहराबाई के गाने की भी रिकार्डिंग होनेवाली है। अपने से वरिष्ठ गायिका को अपने सामने पाकर एक बार तो लता नर्वस हो गई, किंतु संगीतकार वसंत देसाई ने खुद लता का परिचय जोहराबाई से करवाया और कहा कि आपको एक नई आवाज सुनवाता हूँ। इस पर लता को गाना पड़ा। थोड़ा सा सुनते ही जोहराबाई बोलीं, ''अहा हा, सुभान अल्लाह, क्या गाती है लड़की।'' लता ने सोचा, शायद ये मुँहदेखी बात कह रही हैं और कहा, ''आप तो मेरी बेवजह तारीफ कर रही हैं।'' इस पर जोहराबाई ने किंचित् नाराजगी दिखाते हुए समझाने के अंदाज में कहा, ''ऐसे नहीं कहना चाहिए। कहना चाहिए कि अल्लाह की मेहरबानी है।'' पंकज मलिक और कानन देवी जैसे बंगाल के विख्यात गायक-गायिकाओं के संपर्क में आने का लता को अवसर ही नहीं मिला किंतु ये दोनों उनकी गायन कला के कायल थे। कानन ने कहा था, ''पार्श्वगायन की शुरुआत से पहले जो गीत गाए जाते थे, वे इसलिए 'गीत' कहलाते थे, क्योंकि उन्हें हम अभिनेत्रियाँ खुद गाती थीं, लेकिन असल गायन का आरंभ तो लता से ही हुआ है।'' पंकज मलिक के अनुसार लता जितना गाती हैं, उतनी ही हमारी संगीत संपदा समृद्ध होती जाती है।

लता तथा रफी

लता बाई (महाराष्ट्र में आदरणीय महिला के लिए 'बाई' शब्द का प्रयोग होता है) के समसामयिक गायकों में मोहम्मद रफी, मुकेश (पूरा नाम मुकेशचंद माथुर), हेमंत कुमार, किशोर कुमार, मन्ना डे आदि के नाम जाने-माने हैं। उन्होंने सबसे अधिक युगल गीत, लगभग चार सौ, रफी साहब के साथ गाए। मोहम्मद रफी अत्यंत शालीन, सौम्य तथा नि:स्पृह स्वभाव के थे। लता का आग्रह रहता था कि फिल्म निर्माता उनके गानों का पारिश्रमिक तो देवें ही, आगे चलकर होनेवाली रेकार्डों की बिक्री पर उन्हें रॉयल्टी भी देनी चाहिए। इस प्रसंग में वे किसी प्रकार की रियायत करने के खिलाफ रही हैं। रफी साहब इस मामले में अधिक उदार थे। उनका कहना था कि जब गाना गाने के लिए फिल्म निर्माता हमें पैसा देता है तो उससे अधिक माँगने का हक हमारा कहाँ बनता है? लता का विचार दूसरा था। उसका तर्क था कि कई गायक अपने गायन कर्म से रिटायर होकर गुमनाम जिंदगी, मुफलिसी की हालत में गुजारते हैं, जबकि उनके गाए गीतों के रिकार्ड धड़ाधड़ बिकते हैं। यदि इन्हें रॉयल्टी मिलती रहे तो इसमें अनुचित क्या है? रफी साहब को अंतत: लता के कथन से सहमत होना पड़ा। उन्होंने खुद कहा कि पुराने पार्श्वगायक खान मस्ताना को वे पाँच सौ रुपए भेज चुके हैं, जब उन्हें आर्थिक मदद की आवश्यकता थी। 31 जुलाई, 1980 को जब रफी इस नश्वर संसार से विदा हुए तो लता के मुँह से मात्र यह उद्गार निकला, ''क्या कहूँ? समझ में नहीं आता। आसमान का चाँद अस्त हुआ या फिल्म संगीत का सूर्य?''

लता और मुकेश

राखी बँधवाने वाले भाई जैसा प्यार व आदर जिससे मिला, उस गायक मुकेश की मृत्यु लता के सामने अमेरिका के डिट्रायट नगर में हुई थी। इस दुर्घटना के पहले मुकेश को दिल के चार दौरे पड़ चुके थे। शराब उनके लिए जहर थी किंतु इसे लेकर मुकेश का फलसफा कुछ और ही था। वे कहा करते, ''दिन में कभी छुओ मत और रात को कभी छोड़ो मत।'' बड़े भाई मुकेश तथा लता बहन के न जाने कितने संस्मरण और मूल्यवान प्रसंग लोगों की स्मृति में हैं। खुद लता ने एक बार इस अनोखे भाई के प्यार की बात सुनाते हुए कहा था, ''जानते हैं, मुकेश भैया प्यार से मुझे क्या कहते हैं? कहते हैं, ससुरी मैं तेरा क्या करूँ? अचार डालूँ?'' मुकेश के गायक पुत्र नितिन को भी लता से बुआ का-सा प्यार मिला है। वे उसे अपने साथ विदेशों में आयोजित मंचीय गायन के कार्यक्रमों में ले जाती रहीं। मुकेश की इस अंतिम यात्रा से जुड़े कार्यक्रम में नितिन ने अपने पिता के गाए दो गीत 'कभी-कभी मेरे दिल में' तथा 'दिल जलता है तो जलने दे' गाए और लता बुआ से उसे शाबाशी मिली। पिता को भी पुत्र की सफल गायकी पर हर्ष हुआ और उनके मन के उद्गार निकल पड़े, ''लगता है, मेरी पैंशन पक्की हो गई। नितिन दाल-रोटी जरूर कमा लेगा।'' नितिन ने भी लताजी के संरक्षण भाव को समझा, तभी उसने कहा, ''जितनी सहजता के साथ मैं दीदी के साथ गा पाता हूँ, उतना शायद और किसी के साथ नहीं।''

लता तथा हेमंत कुमार

वरिष्ठ गायक हेमंत कुमार और मन्ना डे के प्रति लता का सम्मान भाव सदा रहा। हेमंत दा के फिल्मों में पचास वर्ष पूरे होने पर जब अभिनंदन समारोह आयोजित किया गया तो लता ने उनका चरण स्पर्श किया। हेमंत बाबू इस सम्मान से अभिभूत हो गए और बोले, ''लता को जितना सम्मान मिला है, उससे ज्यादा सम्मान तो वह अपने से बड़ों को देती है।'' मन्ना डे विदेशों में मंचित अनेक कार्यक्रमों में उनके सहगायक के रूप में गए हैं।

लता और किशोर

आयु में लता से छोटे स्व. किशोर कुमार जितने ऊँचे कलाकार थे, हास्य-विनोद तथा नकल करने में उतने ही उस्ताद। गीत-रेकार्डिंग के समय वे उपस्थित लोगों को निरंतर हँसाते रहते। उन्हें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था कि यह गाना सीरियस है या मजाकिया (हास्यपूर्ण)। लता और किशोर की पहली मुलाकात अत्यंत नाटकीय तथा विनोदपूर्ण प्रसंग में हुई। उस दिन जब स्टूडियो जाने के लिए लता ने लोकन ट्रेन पकड़ी तो उसने चौकन्नी नजर से देखा कि भीड़ से अलग लगने वाला एक लंबा छरहरा नौजवान भी उसी गोरेगाँव स्टेशन पर उतरा है, जहाँ लता को उतरना था। जब स्टेशन से बाहर आकर लता ने स्टूडियो के लिए ताँगा लिया तो वह युवक भी एक ताँगे में सवार होकर उसके पीछे हो लिया। जहाँ लता का ताँगा मुड़ता वहीं उस नौजवान का भी। फिल्मिस्तान के गेट पर दोनों के ताँगे रुके। लता घबराई सी भीतर आई और संगीत निर्देशक खेमचंद प्रकाश से उस युवक की शिकायत की, जो लगातार उसका पीछा करता यहाँ तक आ गया था। तब तक वह युवक भी मास्टर खेमचंद प्रकाश के पास पहुँच गया। अब दोनों को देखकर मास्टरजी हँस पड़े और बोले, ''कौन—यह लड़का! हाँ, शरारती तो जरूर है, पर है अपने दादामणि अशोक कुमार का छोटा भाई किशोर कुमार गांगुली। यहाँ इसे तुम्हारे साथ ही गाना है। दोनों का यह पहला युगल गीत था—'यह कौन आया करके सोलह सिंगार।' (फिल्म 'जिद्दी'-1948) किशोर के साथ लता ने तीन सौ से अधिक गीत गाए हैं।

पुराने जमाने के गायक गुलाम मोहम्मद दुर्रानी (जी.एम. दुर्रानी) दबंग किस्म के व्यक्ति थे। किसी जमाने में उन्हें काफी मकबूलियत और शोहरत हासिल हुई थी। वे जब-तब 'मेरा भी एक जमाना था' के फिकरे के साथ अतीत के अनुभव सुनाते रहते थे। दुर्रानी को अपनी सफलता तथा लोकप्रियता का तो नशा था ही, उनमें एक विचित्र किस्म

की रसिकता भी थी। तबीयत की इस रंगीनी ने जब एक दिन जोर मारा तो सादे अंदाज में रहनेवाली लता की सफेद साड़ी को लक्ष्य कर उन्होंने कह दिया—''लता, रेकार्डिंग में जरा शोख लिबास में आया करो। यह क्या बात हुई कि सफेद साड़ी में लिपटी हुई चली आई।'' स्वाभिमान की धनी लता को यह अशालीन उक्ति कब गवारा होती। उसने चट संगीतकार नौशाद से सारा माजरा बयान कर दिया। पिता के तुल्य स्नेह तथा संरक्षण देने वाले नौशाद ने उसे समझाने की कोशिश की, किंतु लता अपनी बात पर डटी रहीं। अंततः दुर्रानी के साथ गाया जानेवाला वह गाना कैंसिल कर दिया गया।

लता और तलत महमूद

रेशम की सी कोमल आवाज और उतना ही कोमल स्वभाव पाया था तलत महमूद ने। पता नहीं, किसने तलत को एक गलतफहमी का शिकार बना दिया कि मुसलमान होने के कारण आगे से लता उनके साथ नहीं गाएगी। जब लता को इस बात का पता चला तो उसने आमने-सामने बैठकर इस गलतफहमी को दूर करना उचित समझा। अपने से बड़े तलत साहब से उन्होंने कहा, ''आपने ऐसी बात मान कैसे ली? रफी साहब, नौशाद साहब, ये भी तो मुसलमान हैं। इनके साथ मैं चाव से काम करती हूँ। अमानअली और अमानत खाँ साहब मेरे उस्ताद रहे हैं। मैं उनकी गंडाबंद शागिर्द हूँ।'' लता के इस निश्छल कथन से तलत साहब का समाधान हो गया। उनके साथ लता ने लगभग पैंसठ गाने गाए हैं।

अनेक क्षेत्रों में यह धारणा फैली अथवा जान-बूझकर फैलाई गई कि फिल्मी पार्श्वसंगीत पर मंगेशकर बहनों ने अपना एकाधिकार जमा रखा है। वे किसी नई प्रतिभा को आगे बढ़ने ही नहीं देतीं। इस आरोप में थोड़ी भी सत्यता नहीं है। यदि ऐसा होता तो आज की युवा गायिकाएँ—कविता कृष्णमूर्ति, अलका याज्ञनिक, साधना सरगम आदि इस क्षेत्र में जम नहीं पातीं।

लता को अपने से कनिष्ठ गायिकाओं के प्रति स्नेह और सौहार्द का भाव रहा है। इसका एक उदाहरण कविता कृष्णमूर्ति ने दिया। 1982 में राजकुमार कोहली ने अपनी एक फिल्म में संगीतकार बप्पी लाहिरी से कहकर कविता से एक गाना डबिंग गायिका के रूप में गवा लिया। उसने सोचा कि बाद में लता से यह गाना गवा लिया जाएगा। कुछ समय बाद जब इसके लिए लता को बुलाया गया तो उसने पूरी बात बताने के लिए कहा। गीत की तर्ज सुनी और कविता का रेकार्ड किया गाना भी सुना। उन्हें यह गाना सर्वथा निर्दोष प्रतीत हुआ और राजकुमार कोहली से वे स्पष्ट कह बैठीं, ''इस लड़की ने जब इतना अच्छा गाया है तो आप मुझसे क्यों गवाना चाहते हैं?'' लता ने इस प्रकार एक जूनियर गायिका की हौसलाअफजाई तो की ही, उसका मान भी रखा। जब कविता को इस घटना की जानकारी मिली तो उसने लता के इस कथन को अपने लिए प्रशंसा का एक तमगा समझा। कविता कृष्णमूर्ति बचपन से ही लता का संगीत सुनती रही है। उसके इस कथन में एक ठोस सचाई है कि ''लता के संगीत को सुनते-सुनते मुझे विश्वास हो चला है कि संगीत केवल मनोरंजन ही नहीं है, यह साधक को ईश्वर तक पहुँचाने का मार्ग भी है।''

बड़े बुजुर्गों ने लता की संगीत साधना को सराहा है। उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ के शब्दों में, ''कम्बख्त, कभी बेसुरी नहीं होती। लता का फन अल्लाह की देन है।'' संगीतकार नौशाद ने लता के लिए निम्न पंक्तियाँ कही हैं—

''सुनी सबने मोहब्बत की जबाँ आवाज में तेरी,
धड़कता है दिल-ए-हिंदोस्तां आवाज में तेरी।''

❑

23

वे जमाने, वे तराने

अतीत के प्रति मनुष्य का सहज आकर्षण होता है। वार्धक्य की सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते विगत का पुनरवलोकन करने की इच्छा होती है और तब मनुष्य क्षण भर के लिए रुककर अतीत के पुराने सपनों में खो जाता है। आज तो पुरानी चीजों को सहेजकर रखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। पुरानी मूर्तियों, स्थापत्य के पुराने अवशेषों, प्राचीन सिक्कों तथा टिकटों आदि को सुरक्षित करने के लिए लोगों में असाधारण जागरूकता दिखाई देती है। लोग अपने बैठकखानों को पुरातात्त्विक वस्तुओं से सजाने में रुचि लेते हैं। यही स्थिति फिल्मों के पुराने गीतों की भी है। श्रीलंका रेडियो से पुराने फिल्मी गीत नियमित रूप से प्रसारित किए जाते हैं। ऑल इंडिया रेडियो के उर्दू प्रोग्राम में एक शुक्रवार को छोड़कर दूसरे शुक्रवार को नियमित रूप से पुराने गीतों का कार्यक्रम 'आवाज दे कहाँ है' प्रसारित किया जाता है। इसके सुननेवालों की संख्या भारत तथा पड़ोसी देश पाकिस्तान में हजारों में है। तथ्य तो यह है कि इन पुराने नगमों में श्रोता को भाव-विभोर करने की जैसी क्षमता है वैसी आज के कर्कश तथा कानफोड़ू संगीत में नहीं है।

फिल्मों में संगीत का सिलसिला सवाक् फिल्मों के साथ ही आरंभ हुआ। आरंभ में अभिनेता तथा अभिनेत्री को अपने गाने खुद गाने पड़ते थे। चाहे संगीत में उनकी रुचि तथा दक्षता हो या न हो। बात यह थी कि उन दिनों पार्श्वगायन का रिवाज ही नहीं था।

आज के वयोवृद्ध किंतु सदाबहार अभिनेता अशोक कुमार ने अपने फिल्मी जीवन के आरंभ में अपने गाने खुद गाए थे। 1936 में बनी फिल्म 'अछूत कन्या' में उन्होंने देविका रानी के साथ एक गीत गाया था—'मैं बन का पंछी बनके बन बन डोलूँ रे।' 1939 में बनी फिल्म 'कंगन' में उन्होंने लीला चिटनिस के साथ दो गीत गाए—'राधा राधा प्यारी राधा' तथा 'क्यों बजे हृदय वीणा के तार।' 1940 में बनी फिल्म 'बंधन' में उन्होंने एक गीत गाया था—'चल चल रे नौजवान'। वह उस समय देश के नौजवानों की जबान पर चढ़ गया था। इसे सुनकर विदेशी शासकों को यह मुगालता होने लगा था कि ऐसे गीत कहीं देशवासियों में स्वतंत्रता के प्रति जागृति का भाव पैदा न कर दें। अशोक कुमार के गाए गीतों में जो गीत लोकप्रिय हुए वे हैं—'ना जाने किधर आज मेरी नाव चली रे', 'आज मौसम सलोना सलोना रे' ('झूला' 1941) तथा 'धीरे-धीरे आ रे बादल' ('किस्मत' 1943)।

जब फिल्म निर्देशकों ने यह अनुभव किया कि एक ही व्यक्ति से अभिनय करवाना तथा संगीत में रुचि न होने पर भी उससे गाना गवाना व्यावहारिक नहीं है तो पार्श्वगायन का सिलसिला चल पड़ा। न्यू थियेटर्स की फिल्म 'धूप-छाँव' (1935) के संगीत निर्देशक रायचंद्र बोराल ने पारुल घोष, सुप्रभा सरकार तथा हरिमती से एक गीत 'मैं खुश होना चाहूँ हो न सकूँ' गवाकर पार्श्वगायन का शुभारंभ किया था। फिर भी फिल्म निर्माण के आरंभिक काल में ऐसे गायक-अभिनेताओं की कमी नहीं थी, जो अभिनय तथा गायन दोनों में ही कुशल थे। के.एल. सैगल, के.सी. डे,

पंकज मलिक, सुरेंद्र आदि कलाकार इसी श्रेणी में आते हैं। अभिनेत्रियों में कानन देवी, नूरजहाँ, खुर्शीद, सुरैया, उमा शशि, उमा देवी आदि को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है, जो गायन तथा अभिनय दोनों में अपना वर्चस्व रखती थीं।

आज जब पश्चिमी संगीत से उधार ली हुई धुनों की नकल वाले, शोर-शराबे तथा कर्णकटु ध्वनियोंवाले संगीत ने युवा पीढ़ी को अपने मोहजाल में फँसा रखा है, परंतु संगीत के पारखी जनों ने सैगल, सुरैया, नूरजहाँ, कानन आदि को भुलाया नहीं है। इन विख्यात गायकों के अलावा भी विगत के फिल्मी संगीत में ऐसी-ऐसी प्रतिभाएँ समय-समय पर आती रहीं जो आज हमारे स्मृति-पटल से लगभग लुप्त हो गई हैं। कृष्णचंद्र डे एक ऐसे ही गायक थे, जिनके गायन को भुलाना कठिन है। वे दृष्टिहीन थे, किंतु भक्त सूरदास की भाँति उनकी संगीत साधना भी अथाह थी। न्यू थियेटर्स की फिल्म 'पूरन भगत' (1933) में उन्होंने अभिनय के साथ अध्यात्म भावापन्न कुछ गीत गाए थे। 'क्या कारण है अब रोने का काली रात हुई उजियाली' तथा 'जाओ जाओ ए मेरे साधो रहो गुरु के संग' उनके ऐसे ही गीत थे। भक्ति, नीति, ज्ञान तथा वैराग्य के भावों से युक्त उनके गीत अन्य फिल्मों में भी गूँजे। 1935 में बनी फिल्म 'धूप-छाँव' में उन्होंने जो गीत गाए, वे थे—'बाबा मन की आँखें खोल', 'तेरी गठरी में लागा चोर मुसाफिर जाग जरा', 'जीवन का सुख आज प्रभु मोहे जीवन का सुख आज' तथा 'अंधे की लाठी तू ही है।' अंत के इन दो गीतों को के.एल. सैगल ने भी गाया था। 'पनघट पै कन्हैया आता है' 'विद्यापति' फिल्म का यह गीत महाकवि विद्यापति के भावों की अनुगूँज है। डे ने इस फिल्म में कानन के साथ भी एक-दो गीत गाए थे।

बीते युग की अनेक गायिकाओं के तो नाम भी आज के श्रोताओं की स्मृति से लुप्त हो गए हैं। कितने लोग जानते हैं कि सुरीली आवाज की धनी पारुल घोष (विख्यात संगीत निर्देशक अनिल बिस्वास की बहन तथा प्रसिद्ध बांसुरीवादक पन्नालाल घोष की पत्नी) अपने जमाने की लोकप्रिय पार्श्वगायिका थीं। जैसा कि लिखा जा चुका है, 'धूप-छाँव' में एक गीत गाकर पारुल घोष ने पार्श्वगायन की शुरुआत की थी। बॉम्बे टॉकीज की फिल्म 'बसंत' (1942) को पारुल के गीतों ने सौंदर्य तथा आकर्षण दिया था। इस फिल्म में उनके गाए गीत थे—'मेरे छोटे से मन में इक छोटी सी दुनिया रे' तथा 'उम्मीद उनसे क्या थी और कर वो क्या रहे हैं।' गायक अभिनेता अरुण कुमार के साथ उन्होंने एक अन्य लोकप्रिय गीत गाया—'गोरी मोसे गंगा के पार मिलना।' 1943 में बनी फिल्म 'हमारी बात' के संगीत निर्देशक तो पारुल के भाई अनिल बिस्वास ही थे। इस फिल्म में उन्होंने जो गीत गाए, उनमें 'मैं उनकी बन जाऊँ रे' विशेष लोकप्रिय हुआ। अपने भाई के साथ उन्होंने एक अन्य गीत गाया—'इनसान क्या जो ठोकरें नसीब की न खा सके।' फिल्म 'किस्मत' (1943) में गाया गया पारुल का गीत 'पपीहा रे मेरे पिया से कहियो जाए' उन दिनों गली-गली में गाया जाने लगा था। उसी साल ए.आर. कारदार ने फिल्म 'नमस्ते' बनाई। इसमें पारुल ने कुछ श्रुति मधुर गीत गाए थे। यथा—'अम्बवा पै पंछी बावरा बोलो बोलो क्या सुनाए है' (जी.एम. दुर्रानी के साथ) तथा 'आए भी वो गए भी वो खत्म फसाना हो गया, मेरे लिए तो मौत का हाय बहाना हो गया।'

1920 में बनारस में जनमी आभिजात्य कुलोत्पन्न राजकुमारी को अपनी कला का जौहर दिखाने के लिए बंबई आना पड़ा। 1947 में जब फिल्म 'परवाना' बनी तो उसमें राजकुमारी का एक गीत था, जो मुग्धा नायिका की चुहल भरी प्रणयासक्ति को व्यक्त करता है—'सैंया ने अंगुली मरोरी रे राम कसम शरमा गई मैं।' बॉम्बे टॉकीज की रहस्य-रोमांच से भरी फिल्म 'महल' में गाए गए राजकुमारी के इस गीत को भुलाना सहज नहीं है—'घबरा के जो हम सर को टकराएँ तो अच्छा हो।' 1950 में बनी फिल्म 'बावरे नयन' के संगीत का तो प्राणतत्त्व ही राजकुमारी के गाए सदा-बहार गीत थे—'सुन बैरी बलम सच बोल', 'क्यूँ मेरे दिल में दर्द बसाया जवाब दो' तथा मुकेश के साथ गाया गया गीत 'मुझे सच-सच बता दो क्या? कि कब दिल में समाए थे?' राजकुमारी के कुछ अन्य कर्णप्रिय गीत हैं

—'कजरारी मतवारी मद भरी दो अँखियाँ', 'जिंदगी बदली मोहब्बत का मजा आने लगा', 'मेरे रूठे हुए बलमा मेरे रूठे हुए चंदा, चलो अब मान भी जाओ', 'हाय मेरा दिल', 'जो हम पै गुजरती है हम कैसे बताएँ', 'जरा सुन लो हम अपने प्यार का अफसाना कहते हैं' (अनेक स्वरों में) तथा चंद्रमुखी नायिका को संबोधित यह गीत—'हे चंद्र बदन, चंदा की किरण तुम किसका चित्र बनाती हो।' शब्द चयन की दृष्टि से गीत की अपूर्वता विचारणीय है।

अपनी स्थूल काया से लोगों का मनोरंजन करनेवाली 'टुनटुन' का विदूषक रूप दर्शकों के स्मृति पथ में ज्यों-का-त्यों है किंतु उस गायिका उमा देवी (टुनटन का वास्तविक नाम) को आज कितने लोग याद करते हैं? कारदार की फिल्म 'दर्द' में उमा देवी के दर्द भरे गीत लाजवाब थे—'अफसाना लिख रही हूँ दिले-बेकरार का' तथा 'ये कौन चला ये कौन चला मेरी आँखों में समा कर'। कारदार की फिल्म 'नाटक' (1947) में गाया गया उमा देवी का यह गीत 'दिल वाले दिल वाले जलकर ही मर जाना' उस समय पर्याप्त लोकप्रिय हुआ था।

कम प्रसिद्धि पाने वाली किंतु गायन कला में कुशल अनेक गायिकाओं के नाम हमें याद आ रहे हैं। एक गायिका थी मंजू। 1944 में जब प्रभात फिल्म कंपनी ने एक सामाजिक फिल्म 'चाँद' का निर्माण किया तो इसके संगीत निर्देशक हुस्नलाल भगतराम ने इस गायिका से दो गीत गवाए थे। आधी सदी से अधिक पुराने ये गीत आज भी उतने ही नए हैं, जितने 1944 में थे। 'दो दिलों को ये दुनिया मिलने ही नहीं देती' तथा 'आई आई मुसीबत आई, मुसाफिर भाग चलो' यही इन गीतों के बोल थे। उसी साल बनी फिल्म 'रतन' में जोहराबाई अंबालावाली के गीतों ने विचित्र धूम मचाई थी। इसमें मंजू ने भी दो गीत गाए थे। नायिका की अँगड़ाई को उसके जाने का बहाना बताने की सुंदर प्रतीक व्यंजना मंजू का स्वर पाकर और अधिक मुखर हो गई है—'अँगड़ाई तेरी है बहाना, साफ कह दो हमें कि जाना जाना'। दूसरा गीत था—'झूठे हैं सब सपने सुहाने।'

एक अन्य गायिका थी सितारा कानपुरी। 1940 में बनी रणजीत मूवीटोन की फिल्म 'होली' में उसने वासंती मादकता को झंकृत करनेवाला एक गीत गाया—'फागुन की रुत आई रे जरा बाजे बाँसुरी।' उसमें पुरुष स्वर अमृतलाल का था। महबूब के निर्देशन में बनी फिल्म 'रोटी' (1942) में सितारा के गाए तीन गीत थे—'जोबन उमड़ाए नयन रसियाए खबर बिसराए', 'स्वामी घरवा नीक लागे' तथा 'सजना साँझ भई आन मिलो।' 'मन की जीत' (1944) में उसने यह लाजवाब गीत गाया—'नगरी मेरी कब तक यूँ ही बरबाद रहेगी।'

रणजीत मूवीटोन की फिल्म 'राजपुतानी' (1946) अपने संगीत के कारण ही ख्याति प्राप्त कर सकी। इसके संगीतकार बुलो सी. रानी मूलत: सिंध के निवासी थे। इस फिल्म में उन्होंने हमीदा और मुकेश के सम्मिलित स्वरों में एक खूबसूरत गीत गवाया था—'जा परवाने जा, कहीं शमा जल रही है'। इसका पूरक एकल गीत हमीदा ने गाया था—'आ परवाने आ, यहाँ शमा जल रही है।' हमीदा, खुर्शीद और मुकेश के गाए गीत (फिल्म 'मूर्ति' 1945) 'बदरिया बरस गई उस पार, खड़ी लिए है प्रीत गगरिया जोगनिया इस पार' की चर्चा हम मुकेश के प्रकरण में कर चुके हैं। इस गीत की धुन भी बुलो सी. रानी ने ही तैयार की थी।

भुलाई गई गायिकाओं की ही भाँति अनेक ऐसे गायक भी विस्मृति की भेंट चढ़ गए जो अपने युग में श्रोताओं के मन की धड़कन बन चुके थे। करण दीवान, गुलाम मुस्तफा दुर्रानी, चितलकर, एस.डी. बातिश तथा खान मस्ताना के नाम हमारी स्मृति में आज कहाँ आते हैं? चितलकर को छोड़कर उपर्युक्त सभी मूलत: पंजाब के निवासी थे। करण दीवान के स्वर माधुर्य का पता फिल्म 'रतन' में जोहराबाई के साथ गाए गए गीत 'सावन के बादलो उनसे ये जा कहो' की पंक्तियों से लगाया जा सकता है। उनका एक अन्य गीत था—'जब तुम ही चले परदेस लगा कर ठेस हो प्रीतम प्यारा, दुनिया में कौन हमारा।' 1949 में बनी फिल्म 'लाहौर' में लता के साथ गाए गीत 'दुनिया हमारे प्यार की यूँ ही जवाँ रहे' में पुन: करण दीवान का श्रुति मधुर स्वर सुनाई दिया था। गायन के साथ-साथ अभिनय में

भी उन्होंने ख्याति पाई थी। एस.डी. बातिश के गाए गीतों का नमूना फिल्म 'लाडली' (1949) में दिखाई पड़ता है। बातिश ने 'इसी रंगीन दुनिया में क्या-क्या जिंदगी देखी' तथा 'आँखें कह गईं दिल की बात' जैसे भावना प्रधान गीत गाए थे। फिल्म 'सिकंदर' के प्रयाण गीत 'जिंदगी है प्यार से' में प्रधान स्वर खान मस्ताना का था। 1941 में बनी फिल्म 'स्वामी' के संगीत निर्देशक रफीक गजनवी ने भी खान से गीत गवाए। इन गीतों में 'प्रेम पुजारी जमुना तट पर' तथा 'जीवन मधुर बनाएँ' में उनकी सहगायिका सितारा कानपुरी थीं।

संगीतकार सी. रामचंद्र चितलकर के नाम से यदा-कदा गा भी लेते थे। फिल्म 'पतंगा' (1949) में रंगून से टेलीफोन पर नायक की विरह वेदना को व्यक्त करनेवाला पुरुष स्वर चितलकर का ही था। फिल्मिस्तान की फिल्म 'साँवरिया' (1949) में उन्होंने जहाँ संगीत दिया, वहाँ ललिता देउस्कर तथा शमशाद बेगम के साथ उन्होंने कुछ गीत भी गाए। स्त्री गायिकाओं के साथ फड़कते हुए गीत गाने में चितलकर का कोई जवाब नहीं था। 1947 में बनी फिल्मिस्तान की फिल्म 'शहनाई' का मुलाहिजा करें। 'आना मेरी जान मेरी जान संडे के संडे' के दो भागों को उन्होंने मीना कपूर तथा शमशाद बेगम के साथ गाया। इसी फिल्म में 'जवानी की रेल चली जाए रे' में उनके साथ नारी स्वर लता तथा गीता राय का था। एक अन्य गीत 'चढ़ती जवानी में झूलो झूलो मेरी रानी' में उनका साथ दिया था—गीता राय तथा वीणा पाणि मुखर्जी ने। बीते जमाने की भाँति इन पुराने तरानों की आज यादें ही शेष रह गई हैं।

❑

24

हिंदी फिल्म जगत् के पितामह पृथ्वीराज कपूर

हिंदी फिल्म संसार में पितामह के तुल्य सम्मान पानेवाले पृथ्वीराज कपूर का व्यक्तित्व हिमालय के तुल्य विशाल तथा अपरिमेय था। उनके परिवार की चार पीढ़ियाँ सिनेमा व्यवसाय से जुड़ी रहीं तथा सभी ने अपने-अपने क्षेत्र में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। हिंदी फिल्मों की नई-पुरानी पीढ़ी ने पृथ्वीराज कपूर को सम्मान दिया तथा उन्हें प्यार से पापाजी कहकर पुकारा। पृथ्वीराज कपूर का जन्म 3 नवंबर, 1906 को पश्चिमोत्तर सीमांत प्रदेश (अब पाकिस्तान) की राजधानी पेशावर में विश्वेश्वरनाथ कपूर के यहाँ हुआ। उनकी आरंभिक शिक्षा समुंदरी नामक कस्बे में हुई, जहाँ उनके पिता तहसीलदार थे। नाटकों में अभिनय करने की रुचि उनमें प्रारंभ से ही थी। 1927 में पृथ्वीराज ने पेशावर के एडवर्ड्स कॉलेज से बी.ए. किया और कानून की पढ़ाई के लिए लाहौर गए। कला, साहित्य, सौंदर्य और फैशन की नगरी लाहौर में रहकर पृथ्वीराज का आकर्षण फिल्म तथा अभिनय में अधिक मुखर हो गया। परिणाम यह निकला कि वे 1929 में कानून की परीक्षा में असफल रहे। इसी वर्ष 29 सितंबर को वे फिल्मों की अघोषित राजधानी बंबई चले आए और अर्देशर ईरानी की इंपीरियल फिल्म कंपनी में भरती हो गए। वह जमाना मूक फिल्मों का था। 'चैलेंज' नाम की एक मूक फिल्म में उन्होंने बिना कुछ पारिश्रमिक लिये काम किया, किंतु दूसरी फिल्म 'सिनेमा गर्ल' के लिए उन्हें सत्तर रुपए पारिश्रमिक के रूप में प्राप्त हुए।

1930 तक आते-आते मूक फिल्मों का युग समाप्त हुआ और बोलती फिल्में चल पड़ीं। 1931 में जब अर्देशर ईरानी ने प्रथम सवाक् फिल्म 'आलमआरा' बनाई, तो पृथ्वीराज को इसमें खलनायक का रोल मिला।

1932 में पृथ्वीराज ने एंडरसन थियेटर कंपनी ज्वॉइन कर ली और इसकी टोली के साथ देश के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया। इस कंपनी में रहकर कपूर का नाटकों में अभिनय करने का शौक अवश्य पूरा हुआ। एंडरसन कंपनी बंद हो गई तो पृथ्वीराज कलकत्ता में बी.एन. सरकार द्वारा स्थापित न्यू थियेटर्स कंपनी में आ गए। यहाँ उन्हें नायक के रूप में अनेक फिल्मों में काम करने का अवसर मिला। 1933 में न्यू थियेटर्स ने 'राजरानी मीरा' का निर्माण किया, जिसमें पृथ्वीराज ने प्रमुख पुरुष पात्र भोजराज की भूमिका अदा की थी। मीरा का रोल दुर्गा खोटे को मिला था। 1935 में 'भूकंप के बाद' ('आफ्टर दि अर्थ क्वेक') में भी उन्होंने दुर्गा खोटे के साथ काम किया। 1936 में बँगला के विख्यात कथाकार शरतचंद्र के उपन्यास 'गृहदाह' को लेकर न्यू थियेटर्स ने फिल्म 'मंजिल' बनाई। इसमें पृथ्वीराज के साथ प्रसिद्ध अभिनेत्री जमुना थी, जिसने एक वर्ष पूर्व 'देवदास' में पारो का रोल कर ख्याति पाई थी। 1937 में वे 'विद्यापति' तथा 'अनाथ आश्रम' में आए। 'विद्यापति' में उनके साथ प्रसिद्ध गायिका कानन थीं तो 'अनाथ आश्रम' में एक दूसरी विख्यात कलाकार उमा शशि। पृथ्वीराज 1939 तक कलकत्ता में रहे और इस बीच उनकी 'अभागिन' (1938), 'सपेरा' तथा 'दुश्मन' (दोनों 1939 में) फिल्में रिलीज हुईं।

वर्ष 1939 में बंबई का आकर्षण पुन: उन्हें वहाँ खींच लाया। इस बार उन्होंने रणजीत स्टूडियो में काम करना

आरंभ किया और 'अधूरी कहानी', 'चिनगारी', 'पागल' तथा 'आज का हिंदुस्तान' शीर्षक फिल्मों में काम किया। फिल्म जगत् में उनके अभिनय, प्रभावशाली संवाद, अभिव्यक्ति तथा आदर्शवादी विचारधारा का सम्मान हुआ। आगे के वर्षों में उनकी अनेक प्रसिद्ध फिल्में दर्शकों को सम्मोहित करती रहीं। 1941 में मिनर्वा मूवीटोन ने प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथानक लेकर फिल्म 'सिकंदर' का निर्माण किया। इसमें पृथ्वीराज ने जगत् विजय का स्वप्न देखनेवाले यूनानी शासक सिकंदर का रोल किया। पं. सुदर्शन के गीतों तथा संवाद योजना ने इस फिल्म को सफलता की ऊँचाइयों तक पहुँचा दिया। 1942 में वे शालीमार पिक्चर्स की फिल्म 'एक रात' में आए। जब प्रख्यात गायिका और अभिनेत्री नसीम बानो के पति मोहम्मद अहसान ने ताजमहल पिक्चर्स कंपनी बनाई और 'उजाला' शीर्षक फिल्म बनाने की घोषणा की तो उसमें नसीम और पृथ्वीराज की जोड़ी ने स्मरणीय अभिनय किया। 1943 में बनी 'इशारा' में सुरैया उनकी नायिका थीं। इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों को रजतपट पर लाने में निपुणता प्राप्त विजय भट्ट ने 1945 में 'विक्रमादित्य' का निर्माण किया और पृथ्वीराज ने पराक्रमी सम्राट् विक्रमादित्य की भूमिका निभाई। भालजी पेंढारकर की धार्मिक फिल्म 'वाल्मीकि' में भी पृथ्वीराज का काम सराहनीय रहा।

देश के स्वाधीनता प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी उनकी अभिनय यात्रा निरंतर अग्रसर रही। 'दहेज', 'आवारा' तथा 'मुगले-आजम' जैसी फिल्मों में उनकी शानदार अदाकारी, प्रभावशाली संवाद-योजना तथा पात्र के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेने की कला के कारण उनके अभिनय को शीर्षस्थ माना गया। पृथ्वीराज का रंगमंच से विशेष लगाव रहा। वे नाटकों के मंचन को देश की सामाजिक अवस्था तथा सार्वजनिक जीवन में परिवर्तन लाने का अहम साधन समझते थे। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर उन्होंने 15 जनवरी, 1944 को पृथ्वी थियेटर्स नामक नाट्य-कंपनी बनाई और अपने पुत्रों सहित अनेक कलाकारों को रंगमंच से जोड़ा। पृथ्वी थियेटर्स से मंचित किए गए नाटकों के कथानक, पात्र-योजना तथा संवाद आदि स्वयं पृथ्वीराज के मस्तिष्क से ही निकले थे। उन्होंने अपनी इस कंपनी के द्वारा 'दीवार', 'पठान', 'गद्दार', 'आहुति', 'शकुंतला', 'पैसा', 'कलाकार' और 'किसान' शीर्षक नाटकों का मंचन किया। देश के 130 नगरों में जाकर उन्होंने ये नाटक अभिनीत किए तथा उन्हें स्वयं 2,662 बार इन नाटकों के पात्रों की भूमिका में आना पड़ा। इन नाटकों के माध्यम से वे देश में नई सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना का संचार करना चाहते थे। उन्होंने रंगमंच की तकनीक में भी प्रभावी परिवर्तन किए।

दरअसल, पृथ्वीराज अपने पृथ्वी थियेटर के आदर्श पर एक राष्ट्रीय रंगमंच का निर्माण करना चाहते थे। जब उनके नाटकों का मंचन समाप्त होता तो वे थियेटर हॉल के गेट पर अपने कुरते को झोली की तरह फैलाकर खड़े हो जाते और दर्शकों से राष्ट्रीय रंगमंच के लिए सहायता माँगते। उनकी यह योजना सफल नहीं हुई और 1960 में पृथ्वी थियेटर्स को बंद करना पड़ा। वर्षों बाद उनके कनिष्ठ पुत्र शशि कपूर ने उसे पुनरुज्जीवित किया। पृथ्वीराज कपूर मात्र अभिनेता तथा कलाकार ही नहीं थे, वे देश के राष्ट्रीय आंदोलनों तथा सामाजिक सरोकारों से सदा जुड़े रहे। शुभ्र खादी की वेशभूषा धारण करनेवाले पृथ्वीराज कपूर की कांग्रेस में सदा निष्ठा रही। वे पं. जवाहरलाल नेहरू जैसे राष्ट्रीय नेताओं के प्रिय पात्र रहे। 1952 तथा 1954 में उन्हें कलाकार की हैसियत से राज्यसभा का सदस्य मनोनीत किया गया। उन्हें 'पद्मभूषण' उपाधि से भी सम्मानित किया गया तथा मरणोपरांत, दादा साहब फाल्के पुरस्कार प्रदान किया गया। 29 मई, 1972 को हिंदी फिल्म संसार की इस महनीय विभूति ने संसार से विदा ली।

❑

25

नायक तथा खलनायक,

दोनों भूमिकाओं में माहिर—चंद्रमोहन

बीते जमाने के सफल अभिनेता चंद्रमोहन के बारे में पापा पृथ्वीराज ने एक बार कहा था, ''हर अभिनेता अपने शरीर के हाव-भाव का अपने अभिनय में सहारा लेता है, पर चंद्रमोहन केवल अपनी आँखों से वह कमाल कर देता है जो किसी कलाकार के लिए बहुत कठिन है।'' 'अमृत मंथन', 'अमर ज्योति', 'पुकार', 'शकुंतला', 'मुमताजमहल' तथा 'शहीद' जैसी लोकप्रिय फिल्मों में नायक तथा खलनायक, दोनों तरह की भूमिकाओं में सफल अभिनय कर चंद्रमोहन ने सिद्ध कर दिया कि सफल अभिनय के लिए परिश्रम तथा प्रतिभा का समान अनुपात आवश्यक होता है। मध्य प्रदेश की रियासत नरसिंहपुर में 1905 में एक कश्मीरी परिवार में जन्म लेनेवाले चंद्रमोहन न तो उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके और न किसी उपयुक्त काम में लग सके। यह अवश्य है कि मथुरा, बनारस व नैनीताल में सिनेमाघरों की मैनेजरी तथा बाद में फिल्मों के वितरण-कार्य ने उन्हें रजतपट की दुनिया के निकट ला दिया। 1933 में उनकी भेंट प्रभात फिल्म कंपनी के निर्देशक, जाने-माने कलाकार वी. शांताराम से हुई। उनके अनुरोध पर 100 रुपए मासिक पर चंद्रमोहन ने प्रभात कंपनी में काम करना स्वीकार कर लिया। 1934 में जब शांताराम ने अपनी प्रसिद्ध फिल्म 'अमृत मंथन' बनाई तो उन्हें एक सशक्त खलनायक (खूँखार राजगुरु) के लिए उपयुक्त व्यक्ति की तलाश हुई। यद्यपि बाबूराव पेंढारकर ऐसी भूमिकाओं के लिए सर्वथा उपयुक्त थे किंतु परिस्थितिवश वे 'अमृतमंथन' में खलनायक नहीं बन सके और चंद्रमोहन को इस किरदार के लिए चुन लिया गया। इस फिल्म में चंद्रमोहन ने अपनी आँखों के इतने खूँखार और भयानक क्लोजअप शॉट दिए, जिससे आगे चलकर आँखों के माध्यम से प्रभावशाली अभिनय की एक नई शैली ने जन्म लिया। यह सत्य है कि आँखें मन की बात कहने में सक्षम होती हैं।

वर्ष 1935 में शांताराम के निर्देशन में बनी फिल्म 'अमर ज्योति' में शांता आप्टे के साथ प्रभावशाली अभिनय कर चंद्रमोहन ने लोकप्रियता के नए झंडे गाड़े। इसी वर्ष आई फिल्म 'धर्मात्मा' में एक दंभी महंत का अभिनय कर चंद्रमोहन ने सिद्ध कर दिया कि खलनायकी में वह लाजवाब हैं। 'पुकार' चंद्रमोहन की सर्वाधिक लोकप्रिय फिल्म थी। मिनर्वा मूवीटोन ने 1939 में मुगल इतिहास के एक अनछुए घटनाचक्र को 'पुकार' के रूप में प्रस्तुत किया। यहाँ चंद्रमोहन न्यायप्रिय सम्राट् जहाँगीर की सकारात्मक भूमिका में आए। अब दर्शकों को यह विश्वास हो गया कि वे खलनायक ही नहीं, नायक की भूमिका में भी उतने ही सफल सिद्ध हुए हैं। इस फिल्म में अपने जमाने की अनिंद्य सुंदरी नसीम बानो नायिका थीं। सोहराब मोदी, सरदार अख्तर, राम आप्टे आदि सहायक भूमिकाओं में थे।

कई दशक बीत जाने के बाद भी 'पुकार' के कलाकार तथा नसीम द्वारा गाया गया गीत 'जिंदगी का साज भी क्या साज है' पुरानी पीढ़ी के लोगों के स्मृति-पटल पर विद्यमान है। 'पुकार' की सफलता ने चंद्रमोहन के पारिश्रमिक में अभूतपूर्व वृद्धि की। कहाँ तो वे मिनर्वा कंपनी में 1,200 रुपए माहवार लेते थे और अब एक फिल्म में काम करने के लिए उन्हें पचपन हजार तक के ऑफर मिलने लगे। इतनी अधिक फीस तो उस समय सैगल, पृथ्वीराज कपूर, अशोक कुमार तथा मोतीलाल की भी नहीं थी।

चंद्रमोहन की अन्य फिल्में, जो प्रसिद्धि की सीमारेखा को छू सकीं, वे थीं—1940 में बनी 'गीत', 1942 में प्रदर्शित 'अपना घर' तथा 1943 में बनीं 'फैशन', 'नौकर', 'शकुंतला' और 'तकदीर'। उन्होंने अपने युग की विख्यात तारिकाओं के साथ काम किया, जिनमें नूरजहाँ, शोभना समर्थ, जयश्री, खुर्शीद, नरगिस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 1944 में उनकी तीन महत्त्वपूर्ण फिल्में आईं—'बड़े नवाब साहब', 'मुमताज महल' तथा 'रौनक'। 1946 में बनी 'श्रवण कुमार' पौराणिक कथानक पर आधारित थी, जबकि 'मगधराज' ऐतिहासिक फिल्म थी।

देश के स्वतंत्र हो जाने पर 1948 में रमेश सैगल ने फिल्मिस्तान के बैनर तले देशभक्ति के जज्बे से भरपूर फिल्म 'शहीद' का निर्देशन किया। इसके नायक थे दिलीप कुमार और नायिका की भूमिका में कामिनी कौशल ने भावपूर्ण अभिनय किया था। चंद्रमोहन को गोराशाही के प्रतिनिधि एक न्यायाधीश के रूप में प्रस्तुत किया गया था, जो अपने देशभक्त पुत्र को आजादी की लड़ाई से अलग रहने के लिए कहता है। ब्रिटिश शासकों ने नौकरशाहों में देशभक्ति के भावों को किस प्रकार समाप्त कर दिया था, यह चंद्रमोहन की असरदार भूमिका से स्पष्ट हो सका। कुंदनलाल सैगल की भाँति यह प्रतिभाशाली कलाकार भी मदिरापान के व्यसन का शिकार हो गया। शराब और घुड़दौड़ के शौक ने चंद्रमोहन को शारीरिक तथा मानसिक दोनों तरह से निर्बल बना दिया। चंद्रमोहन आजीवन अविवाहित रहे। अंतत: 2 अप्रैल, 1949 को केवल चवालीस वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया। मृत्यु के समय उनका कोई रिश्तेदार बंबई में नहीं था। उनकी अंतिम रस्में पृथ्वीराज कपूर के आग्रह पर उनके बड़े पुत्र राजकपूर ने पूरी कीं। एक प्रतिभाशाली कलाकार का यह करुणापूर्ण अंत था।

❑

26

अशोक कुमार का फिल्मों में प्रवेश कैसे हुआ?

11दिसंबर, 2001 सोमवार को हिंदी फिल्म संसार में एक युग का अंत हो गया, जब दादा साहब फाल्के पुरस्कार से सम्मानित कुमुदलाल गांगुली (चित्रपट जगत् के अशोक कुमार) ने अंतिम श्वास ली। सदाबहार नायक अशोक कुमार प्रारंभ से ही सम्मान, स्नेह तथा आत्मीयता की दृष्टि से देखे जाते रहे। वे अपने निकटस्थ जनों एवं प्रिय पात्रों में दादामणि (दादा मुनि नहीं) के स्नेहपूर्ण संबंध से पुकारे जाते थे। बंगाली शिष्टाचार में 'दादा मणि' बड़े भाई के लिए प्रयुक्त होता है। अशोक कुमार का जन्म 13 अक्तूबर, 1911 को मध्य प्रदेश के खंडवा नगर के एक प्रतिष्ठित बंगाली ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता मूलत: भागलपुर के निवासी थे, जो खंडवा में आकर वकालत करने लगे। वकील कुंजीलाल गांगुली अपने पुत्र कुमुदलाल को एक सफल वकील बनाना चाहते थे किंतु विधाता को यही स्वीकार था कि कुमुदलाल वकालत की पढ़ाई करके भी इस पेशे से न जुड़े और रजतपट के सितारे बनकर लाखों के चहेते बने। बी.एस-सी. करने के बाद वे कानून का अध्ययन करने के लिए कलकत्ता गए। आरंभ से ही उन्हें फोटोग्राफी का शौक था। कलकत्ता में उनकी भेंट प्रफुल्ल घोष नाम के फिल्म निर्देशक से हुई, जिसने फोटोग्राफी में उनकी रुचि को देखकर उन्हें न्यू थियेटर्स की लैब में जाकर कुछ व्यावहारिक प्रशिक्षण लेने की राय दी। वस्तुत: कानूनी किताबों में कुमुद की रुचि थी ही नहीं।

1935 की जनवरी में वे अपने बहनोई शशधर मुखर्जी के पास बंबई आ गए और उनके माध्यम से बॉम्बे टॉकीज के मालिक हिंमाशु राय से मिले। राय महाशय युवा कुमुद गांगुली के शालीन किंतु आकर्षक चेहरे से प्रभावित हुए तथा फोटोग्राफी में उनकी रुचि को देखकर अपने जर्मन कैमरामैन से उन्हें मिलवाया। अब वह युवक बॉम्बे टॉकीज की प्रयोगशाला में डेवलपिंग, प्रोसेसिंग तथा एडिटिंग के तकनीकी काम करने लगा। हिमांशु राय की पारखी नजर यह समझ चुकी थी कि इस युवक में अभिनेता बनने की प्रतिभा है। उसे अवसर मिले तो यह फिल्मी दुनिया में करिश्मा कर सकता है। अपनी कंपनी के द्वारा बनाई गई 'जवानी की हवा' फिल्म में एक छोटा सा रोल देकर उन्होंने कुमुद गांगुली की परख भी कर ली। फिल्म में काम करने की यह उड़ती खबर जब खंडवा में पहुँची तो उनके वकील पिता को यह अच्छा नहीं लगा। कहाँ तो वे अपने पुत्र को यशस्वी वकील के रूप में देखना चाहते थे और कहाँ फिल्मों में उसकी रुचि, जिसे प्रतिष्ठित घरानों में अच्छा नहीं समझा जाता था।

वर्ष 1936 में जब 'जीवन नैया' का निर्माण होने लगा तो हिमांशु राय ने अशोक कुमार (यह नाम उन्होंने ही दिया था) को कह दिया कि इस फिल्म में उसे काम करना है, जिसकी नायिका होंगी देविका रानी, जो आयु में उससे कुछ बड़ी थीं। मालिक का यह आदेश सुनते ही युवा अशोक के हाथ-पाँव फूल गए। उसने इस आनेवाली विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए अपना सिर मुँड़वा लिया। मालिक की खूबसूरत बीवी के साथ इश्क का नाटक करना अशोक के लिए सहज कार्य नहीं था। किंतु देविका रानी ने कहा, कोई चिंता नहीं, नए बाल आने के बाद ही शूटिंग

होगी। जब शूटिंग का दिन आया तो मेकअप रूम में उसे नायक के रूप में सज्जित किया गया। अब उसे जो सीन करना था, उसकी रूपरेखा कुछ इस प्रकार थी—नायिका को एक दुष्ट के पंजे से छुड़ाने के लिए वह (अशोक) एक खिड़की से धमाके के साथ कूदेगा और नायिका को सुरक्षित बचा लेगा। संकोची और शरमीले स्वभाव के अशोक के लिए यह लपक-झपक करना सहज नहीं था। शूटिंग के समय हिमांशु राय, फिल्म के जर्मन निर्देशक फ्रैंज आस्टिन, जर्मन कैमरामैन विरसिंग तथा नायिका देविका रानी सभी मौजूद थे। निर्देशक आस्टिन ने अशोक कुमार को अंग्रेजी में समझाया—''तुम्हें दौड़ते हुए सीढ़ियाँ चढ़नी हैं और अत्याचारी खलनायक पर खिड़की की राह से कूद पड़ना है।'' इसके बाद सैट पर शांति छा गई। थोड़ी देर बाद जब निर्देशक ने 'स्टार्ट' कहा तो कैमरा चालू हो गया। उत्तेजना भरा अशोक सीढ़ियाँ चढ़ता है और खिड़की से छलाँग मारता है। नतीजा—नायिका एक ओर गिरती है और विलेन दूसरी ओर। डायरेक्टर के 'कट' कहने पर कैमरा बंद हो जाता है। अब पता चलता है कि जोरदार धक्के से खलनायक की तो टाँग ही टूट गई है और देविका रानी को भी थोड़ी चोट लगी है। अब जब तक खलनायक को अस्पताल से छुट्टी नहीं मिलती, शूटिंग नहीं हो सकती। अशोक कुमार का यह पहला फिल्मी धमाका था।

जैसे-तैसे शूटिंग का काम फिर शुरू हुआ। प्रेम दृश्य करने में अशोक को और अधिक परेशानी हुई। 'जीवन नैया' में उसे नायिका (वस्तुतः मालिक की बीवी) को संबोधित करना है—''मैं तुमसे मोहब्बत करता हूँ।'' उसे इस डायलॉग अदायगी ने असमंजस में ला खड़ा किया। आस्टिन और हिमांशु राय दोनों उसे समझाते हैं—''यह कोई सचमुच की बात तो है नहीं। तुम्हें तो फिल्म के लिए बोलना है।'' किंतु अशोक हैं कि शर्मसार हो रहे हैं। अंत में वह शर्त रखता है कि यह सीन रात को रखा जाए और उस समय वहाँ कोई न रहे। अशोक ने यह वाक्य कहा, ''मैं तुमसे मोहब्बत करता हूँ'' और संवाद पूरा कर अपनी जेब से नेकलेस निकालकर नायिका को पहनाता है। शर्म और झेंप के मारे देविका रानी के गले में नेकलेस पहनाना उसके लिए एक समस्या बन गया। इस घबराहट में नायिका के सजे-सँवरे बाल बिखर जाते हैं और नेकलेस गले तक आने के पहले जूड़े में फँसा रह जाता है।

कुछ ऐसी ही घटना 'अछूत कन्या' को फिल्माए जाने के समय हुई। यहाँ भी अशोक कुमार को देविका रानी से प्रेम-संवाद बोलने थे, प्रेम का अभिनय भी करना था। मातृभाषा बँगला बोलने वाले अशोक के लिए सुष्ठु हिंदी में संवाद बोलना कठिन था। बहनोई शशधर मुखर्जी ने समझाया—''तुम चिंता मत करो। हम सब समझा देंगे।'' जैसे-तैसे अशोक को राजी किया गया। शॉट देने के लिए जब वे आए तो रूप की रानी, सौंदर्यशालिनी, इससे भी बढ़कर मालिक की बीवी को अपने सामने देखकर अशोक कुमार के हाथ-पाँव फूल गए। निर्देशक आस्टिन को भी कहना पड़ा—''जोड़ी कुछ जम नहीं रही है। नायिका तो अपनी भूमिका को लेकर पूरी आश्वस्त है, जबकि नायक के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही हैं।'' किंतु हिमांशु राय तो अशोक कुमार से ही नायक की समग्र भूमिका करवाने के लिए कटिबद्ध थे। पहले शॉट में नायक नायिका को फूलमाला पहनाएगा। अशोक ने हार तो पहनाया किंतु घबराहट के मारे हार बालों में फँसकर रह गया। जैसे-तैसे शॉट पूरा हुआ। इस चक्कर में देविका रानी के बाल खिंच गए और वह दर्द के मारे चीख उठी। अशोक को संवाद बोलने में भी कठिनाई आ रही थी। हिमांशु राय मदद के लिए आए, किंतु उनके मार्गदर्शन से भी अधिक सफलता नहीं मिली। बँगला का ओकारांत उच्चारण हिंदी फिल्म में बाधक हो रहा था। इससे भी बढ़कर फिल्म-संसार की जानी-मानी हस्ती और मालिक की सहधर्मिणी से मात्र अभिनय के लिए प्रेम-संवाद बोलना कठिन लग रहा था। उधर यह प्रेम का नाटक अग्रज तुल्य जीजा शशधर मुखर्जी की उपस्थिति में करना और भी कठिन था।

अब अशोक कुमार ने शर्त रखी। मुखर्जी महाशय सैट पर न रहें, तभी वे संवाद बोल सकेंगे। उनकी शर्त मान ली

गई। शशधर वहाँ से हट गए और काम शुरू हुआ। अच्छे-खासे संवाद बोले जा रहे थे कि ऊपर गैलरी में खड़े शशधर पर अशोक की नजर पड़ी और वे चीख उठे—देखो, मुखर्जी मोशाय वहाँ खड़े हैं। इस चीख ने सारा शॉट बेकार कर दिया। सारा काम दुबारा करना पड़ा। अंतत: 'अछूत कन्या' रिलीज हुई। अब हिमांशु राय ने उन्हें समझाया, ''अब तो तुम्हें रोज यही करना है। शशधर को देखकर घबराना और देविका रानी से डरना कब तक चलेगा? जब शॉट चालू हो, समझो कि देविका रानी तुम्हारी प्रेमिका है, मालकिन नहीं। यह सोचकर अभिनय करो कि सामने तुम्हारी प्रेयसी के सिवा और कोई नहीं है।'' यह सलाह काम कर गई।

वह दिन और बाद के कई दशक। इस बीच अशोक कुमार ने सैकड़ों फिल्में कीं और हजारों शॉट दिए। 1938 में कलकत्ता के कैप्टन बनर्जी की पुत्री शोभा के साथ अशोक विवाह बंधन में बँध गए। उनका दांपत्य जीवन सुदीर्घ तथा शांतिपूर्ण रहा। ग्यारह वर्ष पूर्व 1990 में पत्नी के निधन के बाद दादा मणि को एकांत ने घेर लिया। उनके अभिनय की ताजगी, गहराई तथा यथार्थता को फिल्म समीक्षकों ने स्वीकार किया है। बॉम्बे टॉकीज में रहते हुए 'कंगन', 'बंधन' और 'किस्मत' जैसी फिल्मों ने उन्हें लोकप्रियता दिलाई। लीला चिटनिस के साथ उनकी आरंभिक फिल्में बहुत पसंद की गईं। उन्होंने गत शताब्दी की सभी प्रख्यात अभिनेत्रियों के साथ काम किया। उर्दू के प्रसिद्ध कथाकार सआदत हसन मंटो ने कुछ काल तक फिल्मिस्तान स्टूडियो में पटकथा लेखन का काम किया था। वे अशोक कुमार के समवयस्क तथा मित्र थे। फिल्म 'आठ दिन' की कहानी मंटो ने लिखी थी। इसके निर्देशक के रूप में नाम तो दत्ताराम एन. पई का दिया गया था, किंतु मंटो के अनुसार वास्तव में निर्देशन अशोक कुमार ने दिया था। फिल्मोद्योग के पितामह तुल्य अशोक कुमार ने छोटे परदे पर भी अपनी धाक जमाई। 'हम लोग' धारावाहिक के प्रत्येक सीन के अंत में उनकी दमदार टिप्पणियों को आज भी दर्शक भूल नहीं पाए हैं।

❑

27

रजत पट के राम—प्रेम अदीब

भगवान् राम के मर्यादा पुरुषोत्तम चरित्र को रजत पट पर साकार करनेवाले थे अभिनेता प्रेम अदीब। मूल रूप से कश्मीरी प्रेम अदीब का जन्म 10 अगस्त, 1916 को उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर में हुआ। उनकी माता जोधपुर के कश्मीरी पंडित लक्ष्मणप्रसाद राजदान की पुत्री थीं। ध्यान रहे कि रियासती काल में विशेषत: महाराजा जसवंत सिंह द्वितीय के शासन काल में अनेक कश्मीरी पंडित मारवाड़ राज्य में उच्च पदाधिकारी बनकर नियुक्त हुए थे। इनमें गुर्टू, राजदान, काक, शिवपुरी, कुंजरू, हुक्कू आदि नामोंवाले सुसंस्कृत परिवारों ने जोधपुर राज्य के सांस्कृतिक वैभव को बढ़ाया था। शिवपुरी परिवार के आनंद शिवपुरी तथा वर्तमान की प्रसिद्ध अभिनेत्री हिमानी शिवपुरी का संबंध जोधपुर से है। प्रेम अदीब को कुछ काल तक जोधपुर रहने का मौका मिला था।

प्रेम अदीब की मैट्रिक तक की शिक्षा उनकी ननिहाल जोधपुर में हुई, जहाँ 1932 में उन्होंने दरबार हाई स्कूल से दसवीं की परीक्षा पास की, बाद में उन्होंने जसवंत कॉलेज जोधपुर में प्रवेश किया, किंतु तकदीर आजमाने के लिए वे कोलकाता गए और न्यू थियेटर्स के मालिक बी.एन. सरकार से मिले, किंतु यहाँ भी सफलता नहीं मिली। फिर वे लाहौर गए, जो गत शती के तीसरे-चौथे दशक में फिल्म निर्माण का एक प्रमुख केंद्र था। यहाँ दो वर्ष रहकर भी जब सफलता हाथ नहीं लगी तो 1936 में बंबई आए। यहाँ उन्हें इच्छित काम मिला। उनके फिल्मी जीवन की शुरुआत राजपूताना फिल्म्स की 'रोमांटिक इंडिया' फिल्म से हुई। कैरिअर के प्रारंभिक दौर में यहाँ उन्हें सौ रुपए मासिक वेतन मिलता था। 1936 से 1942 तक उनकी कई सामाजिक फिल्में आईं। इनमें 'खान बहादुर', 'डाइवोर्स', 'घूँघटवाली', 'स्टेशन मास्टर', 'चूड़ियाँ' आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रेम अदीब 1942 में प्रकाश पिक्चर्स द्वारा निर्मित और विजय भट्ट द्वारा निर्देशित 'भरत मिलाप' में प्रथम बार राम की भूमिका में आए। इस फिल्म में सीता का पार्ट प्रसिद्ध अभिनेत्री शोभना समर्थ ने किया था, जो आगे बनने वाली रामायण आधारित अनेक फिल्मों में इसी भूमिका में आती रहीं। अगले वर्ष 1943 में रामायण की उत्तरार्द्ध कथा पर आधारित प्रसिद्ध फिल्म 'रामराज्य' बनी। इसे भी प्रकाश पिक्चर्स ने विजय भट्ट के निर्देशन में बनाया था। प्रेम अदीब ने यहाँ भी राम के रोल को बखूबी निभाया। 'भावना से कर्तव्य ऊँचा है' यह प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय सूक्ति राम बने प्रेम अदीब के मुख से ही उच्चरित हुई थी। रामराज्य की स्थापना को अपने जीवन का लक्ष्य माननेवाले महात्मा गांधी ने भी समय निकालकर इस फिल्म का अवलोकन किया था।

सन् 1948 में विजय भट्ट ने 'राम बाण' का निर्देशन किया और राम-सीता की इसी जोड़ी (प्रेम अदीब-शोभना समर्थ) को इसमें लिया। 1950 में रामकथा पर आधारित प्रेम अदीब की दो फिल्में आईं—नाना भाई भट्ट की 'लवकुश' तथा 'रामजन्म'। 'लवकुश' उत्तर रामचरित के कथानक का आधार लेकर बनाई गई थी। 1954 में बनी 'हनुमान जन्म' में भी उन्हें राम की भूमिका मिली।

कृष्णार्जुन युद्ध की भाँति राम-हनुमान युद्ध का एक अप्रसिद्ध प्रसंग यत्र-तत्र वर्णित हुआ है। उसे आधार बनाकर 1957 में जब एक फिल्म बनी तो राम का किरदार प्रेम अदीब ने निभाया, किंतु यहाँ सीता का पार्ट निरूपा राय को दिया गया था। प्रेम अदीब की रामायण आधारित अंतिम फिल्म 'भक्त विभीषण' थी, जो रजनी चित्र द्वारा 1958 में बनाई गई। रामकथा के अतिरिक्त इस प्रतिभाशाली कलाकार ने अनेक ऐतिहासिक फिल्मों में भी काम किया। निहायत मासूम चेहरेवाला यह कलाकार अधिक काल तक जीवित नहीं रहा। मात्र 42 वर्ष की आयु में 25 दिसंबर, 1959 को दिमाग की नस फट जाने के कारण उनका निधन हो गया।

❑

28

लेखन तथा अभिनय दोनों में सफल—बलराज साहनी

सफल साहित्य रचना तथा सफल अभिनय—इन दोनों का एक व्यक्ति में पाया जाना मणि-कांचन संयोग ही माना जाएगा। फिल्मों में सफल अभिनय द्वारा अपनी कलात्मक क्षमता को व्यक्त करना तथा साथ ही सामाजिक सरोकारों को प्रधानता देनेवाले उत्कृष्ट निबंध, रेखाचित्र तथा कहानियों की रचना करना बलराज साहनी के व्यक्तित्व की दो धाराएँ थीं। 1 मई, 1913 को उनका जन्म पंजाब के रावलपिंडी नगर के एक संपन्न परिवार में हुआ। उनके पिता हरवंशलाल साहनी अपने नगर के एक समृद्ध नागरिक थे, जो आयात-निर्यात का कारोबार करते थे। अंग्रेजी में एम.ए. करने के पश्चात् बलराज (घर का नाम युधिष्ठिर साहनी) ने अपने पिता के काम में सहयोग देना आरंभ किया। शीघ्र ही उनके जीवन में एक परिवर्तन आया। गुरुदेव रवींद्रनाथ के साथी और सहयोगी गुरुदयाल मलिक जब एक बार रावलपिंडी आए तो उन्होंने युवक बलराज की सुप्त प्रतिभा को पहचाना और पिता से कहा, ''आपने इस पक्षी को पिंजरे में क्यों डाल रखा है? इसे पिंजरे से मुक्त कीजिए और उन्मुक्त गगन में विचरण करने दीजिए।''

इस बीच बलराज ने टैगोर के साहित्य को पढ़ा और 'गीतांजलि' तथा 'डाकघर' जैसी रचनाओं में निहित महाकवि की रहस्यवादी अवधारणाओं से परिचय प्राप्त किया। 1936 में बलराज का विवाह दमयंती के साथ हुआ और यह विवाहित युगल हनीमून मनाने शांति निकेतन गया। गुरुदयाल मलिक से परिचय के कारण उन्हें शांति निकेतन के अतिथिगृह में ठहराया गया और गुरुदेव से भेंट भी हुई। लाहौर जैसी विलास और फैशन की नगरी में रहे तथा शैले, कीट्स तथा बायरन जैसे रोमांटिक कवियों की मांसल श्रृंगार से आपूरित कृतियों से रस ग्रहण करनेवाले इस युवक को शांति निकेतन का सौम्य, शांत वातावरण बहुत रुचिकर तो नहीं लगा, किंतु गुरुदेव के आग्रह से वे वहाँ पर्याप्त समय तक रहे।

इस बीच बलराज ने साहित्य-लेखन के द्वारा जीवनयापन का निश्चय किया। वे कलकत्ता आए और 'विशाल भारत' के तत्कालीन संपादक अज्ञेयजी का सहारा पाकर पत्रों में नियमित रूप से लिखने लगे। शीघ्र ही उनकी अनेक कृतियाँ प्रकाश में आईं और बलराज का एक कविता संग्रह 'कुंगपोश' प्रकाशित हुआ। प्रारंभ में उन्होंने हिंदी तथा अंग्रेजी में लिखा, किंतु महाकवि रवींद्रनाथ की प्रेरणा से वे पंजाबी में भी लिखने लगे, क्योंकि गुरुदेव ने उन्हें बताया कि पंजाबी भी बँगला जितनी पुरानी भाषा है और जिस भाषा में गुरु नानक ने लिखा, उसमें लिखकर हर कोई स्वयं को कृतार्थ मानेगा। कलकत्ता जैसे महानगर में रहकर केवल लेखन से गुजारा करना बलराज को कठिन जान पड़ा तो वे पुन: शांति निकेतन आ गए और कृष्ण कृपलानी के माध्यम से एक बार पुन: गुरुदेव से मिले। उन्होंने गुरुदेव से निवेदन किया कि वे यथा सुविधा उन्हें शांति निकेतन में अध्यापक रख लें। यह भी कहा कि चाहे नौकरी देर से मिले, उन्हें फिलहाल अपने पिता के भेजे सौ रुपयों का भरोसा है, जिससे कुछ दिन तक तो निर्वाह हो

ही जाएगा। बलराज के इस सहज, सरल कथन को सुनकर विनोदी स्वभाववाले गुरुदेव हँस पड़े और बोले, ''तो तुम्हारे पास सौ रुपए हैं। तुम मुझसे अधिक अमीर हो। खैर, तुम निश्चिंत रहो, तुम्हें ये रुपए भी खर्च नहीं करने पड़ेंगे। यथासमय नौकरी भी मिल जाएगी।'' गुरुदेव ने अपना वचन निभाया और बलराज को विश्वभारती में अंग्रेजी पढ़ाने का काम मिल गया। शांति निकेतन का यह निवास बलराज साहनी के लिए नवीन स्फूर्ति तथा नवप्रेरणा का स्रोत बना। यहाँ रहकर उन्होंने अपने में जिन कलात्मक अभिरुचियों को जगाया तथा उपनिषद् काल के सदृश सौम्य एवं शालीनता के संस्कार अर्जित किए, उन्हें वे अपने अभिनय काल में भी यथा-तथा सुरक्षित रख पाए और फिल्मी दुनिया में एक सुसंस्कृत व्यक्तित्व की छाप छोड़ सके।

शांति निकेतन में कुछ वर्ष रहकर बलराज महात्मा गांधी के सेवाग्राम में रहे, जहाँ उन्हें गांधीवादी सर्वोदय चिंतन से रू-ब-रू होना पड़ा। गांधीजी के आग्रह पर वे बी.बी.सी. में समाचार प्रवक्ता के रूप में लंदन चले गए। चार वर्ष वे वहाँ रहे और 1944 में स्वदेश लौटकर इंडियन पीपल्स थियेटर एसोसिएशन (इप्टा) से जुड़ गए। इस प्रकार अपनी अभिनय क्षमता को विकसित करने का अवसर उन्हें मिला। सर्वप्रथम चेतन आनंद की सिफारिश पर फणि मजूमदार ने अपनी फिल्म 'इंसाफ' में उन्हें काम दिया। कुछ समय बाद कला को सामाजिक प्रतिबद्धता से जोड़ने वाले ख्वाजा अहमद अब्बास ने उन्हें 'धरती के लाल' में अभिनय करने का अवसर दिया। इसी फिल्म से बलराज साहनी फिल्मी दुनिया में अपनी स्थायी पहचान बना पाए। यही वह फिल्म थी, जिसका रूस में प्रदर्शन हुआ और जो श्रेष्ठ भारतीय फिल्म का गौरव प्राप्त कर सकी। उनकी पत्नी दमयंती साहनी ने पति के साथ फिल्म 'गुड़िया' में काम किया, किंतु इस क्षेत्र में आगे बढ़ना उनके लिए संभव नहीं हो सका। श्रेष्ठ फिल्म निर्माता बिमल राय ने जब धरती-पुत्र किसान की व्यथाकथा को आवाज देनेवाली फिल्म 'दो बीघा जमीन' बनाई तो बलराज को अपनी अभिनय क्षमता दिखाने का एक और अवसर मिला। समाजवादी विचारधारा से प्रतिबद्ध साहनी की कला के परिष्कार और विकास में दलित अैर शोषित वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति, करुणा और संवेदना के भाव कारक बनकर आए थे। 60 वर्ष की कुल आयुवाले बलराज ने फिल्मी जीवन बहुत काल तक नहीं जिया। तथापि वे लगभग 94 फिल्मों में आए। इनमें 'औलाद', 'सीमा', 'भाभी', 'घर संसार', 'सोने की चिड़िया', 'हीरा-मोती', 'काबुलीवाला', 'भाभी की चूडियाँ', 'अनपढ़', 'वक्त', 'हकीकत', 'हमराज', 'नीलकमल', 'दो रास्ते', 'एक फूल दो माली', 'पवित्र पापी', 'पराया धन', 'गरम हवा' और 'अमानत' आदि विशेष लोकप्रियता प्राप्त कर सकीं। किसी साहित्यिक कृति पर आधारित फिल्म में काम करना बलराज को विशेष प्रिय था, क्योंकि वे स्वयं को भी साहित्यकार मानते थे। यही कारण था कि प्रेमचंद की कहानी पर आधारित फिल्म 'हीरा-मोती' (दो बैलों की कथा), रवींद्र की विख्यात कहानी 'काबुलीवाला' तथा पंजाब के उपन्यासकार नानक सिंह की औपन्यासिक कृति 'पवित्र पापी' के आधार पर बनी फिल्मों में उनकी भूमिकाएँ विशेष प्रभावशाली रहीं। कालांतर में वे चरित्र अभिनेता के रूप में भी रजत पट पर आए। 1969 में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' के सम्मान से नवाजा। 1971 में पंजाब सरकार ने साहित्य और कला के लिए उन्हें 'शिरोमणि पुरस्कार' प्रदान किया। 13 अप्रैल, 1973 को जब वे फिल्म 'गरम हवा' की शूटिंग के लिए तैयारी कर रहे थे, उन्हें दिल का दौरा पड़ा और उसी शाम वे अनंत पथ के यात्री बन गए। जीवंत और मार्मिक अभिनय तथा कला और समाज की पारस्परिक प्रतिबद्धता जैसे विचारों के कारण बलराज साहनी सदा स्मरण किए जाएँगे।

❑

29

चरित्र अभिनेताओं के आदर्श थे मोतीलाल

विगत युग के चरित्र अभिनेताओं में मोतीलाल एक आदर्श कलाकार थे। अभिनय में उनको जैसी निपुणता प्राप्त थी, उनका वैयक्तिक जीवन भी वैसा ही बहुरंगी था। दिल्ली के एक कुलीन कायस्थ परिवार में उनका जन्म हुआ था। 1936 में उनका विवाह डॉक्टरी पास एक लड़की से हुआ, जो उन दिनों एक चमत्कार से कम नहीं था। उनके परिवार की प्रतिष्ठा और हैसियत का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि भारत कोकिला सरोजिनी नायडू ने उनके विवाह में शिरकत की थी। कला-प्रेमी मोतीलाल ने फिल्म व्यवसाय में प्रवेश किया और सफलता की सीढ़ियों पर चढ़ते गए। बहुत कुछ कमाया किंतु शाही ठाठ-बाट के रहन-सहन और घुड़दौड़ के शौक ने उन्हें आर्थिक दृष्टि से खोखला बना दिया। अब स्थिति यह आ गई कि उन्हें चरित्र भूमिकाएँ स्वीकार करनी पड़ीं। किंतु कलाकार तो कलाकार होता है। वह किसी भी भूमिका में आए, उसकी प्रतिभा छिपी नहीं रहती। 'देवदास', 'जागते रहो', 'अनाड़ी' तथा 'पैगाम' में मोतीलाल ने जो किरदार निभाए, वे इस बात के प्रमाण हैं कि मानवी चरित्र की विभिन्नताओं को उन्होंने परखा ही नहीं, उन्हें जिया भी था। तभी तो बिमल राय के 'देवदास' में चुन्नीलाल के सहज अभिनय को भुलाना हमारे लिए आज भी कठिन है। इसकी तुलना में संजय लीला भंसाली की 'देवदास' का चुन्नीलाल एक लंपट विदूषक दिखाई देता है।

मोतीलाल का फिल्मी सफर सागर मूवीटोन की एक फिल्म 1934 में बनी 'शहर का जादू से' आरंभ हुआ था। कुछ अन्य फिल्मों के बाद उनकी फिल्म आई 'जागीरदार', जिसमें मोतीलाल ने सहज अभिनय की अपनी मिसाल कायम की। उनकी सफलता का कारण था—जिस किरदार को निभाना, उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेना। रेसकोर्स में दाँव लगाना यद्यपि उनकी आर्थिक हानि का कारण बना, किंतु घुड़सवारी को उन्होंने अपनी हॉबी बनाया था। वे सफल अश्वारोही थे और विमान के लाइसेंसशुदा पायलट भी थे। विभिन्न रुचियों का अद्भुत मेल थे मोतीलाल। मोतीलाल गायक नहीं थे, किंतु उनमें गाने की धुन भी थी। 'जागीरदार' फिल्म में उन्होंने एक गाना बखूबी गाया, जिसके बोल थे—'नदी किनारे बैठ के आओ खेल में जी बहलाएँ।' माया बनर्जी इस गीत में उनकी सहगायिका थीं।

गायक मुकेश को फिल्मी गायन में प्रवेश दिलाने में मोतीलाल का प्रमुख हाथ था। 1945 में जब फिल्म 'पहली नजर' बन रही थी, मोतीलाल ने संगीत निर्देशक अनिल बिस्वास को मुकेश से गीत गवाने का आग्रह किया। इससे पहले मुकेश को पार्श्वगायन में कुछ उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली थी, किंतु 'पहली नजर' में गाया गया, उनका गीत 'दिल जलता है तो जलने दे' लोकप्रियता की ऊँचाइयों को छूने लगा। तथापि मुकेश ने इस गीत को गाने में फिल्म संगीत के शिखर पुरुष के.एल. सैगल का अनुकरण किया था। इस तथ्य से अनभिज्ञ लोग यह बात समझ नहीं सके कि इस गीत का गायक सैगल नहीं अपितु इस फिल्मी दुनिया में नया-नया आया दिल्ली का मुकेश है।

फिर तो मुकेश के शुभचिंतकों ने उसे राय दी कि गायकी में वह सैगल का अनुकरण न कर अपनी अलग पहचान बनाए और मुकेश ने ऐसा किया भी।

मोतीलाल ने फिल्म निर्माण में भी रुचि दिखाई थी। उनका इरादा दो फिल्में एक साथ बनाने का था—'छोटी-छोटी बातें' तथा 'जुआरी'। घुड़दौड में बाजी लगाकर वे इस दुर्व्यसन के दुष्परिणामों को देख चुके थे, इसलिए वे स्वयं को इस फिल्म में जुआरी की जीवंत भूमिका में पेश करना चाहते थे, किंतु आर्थिक कठिनाइयों के कारण एक ही फिल्म जैसे-तैसे बनी, जबकि 'जुआरी' बनाने की उनकी इच्छा मन में ही रह गई। 'छोटी-छोटी बातें' एक ऐसी कहानी पर आधारित है, जिसका प्लाट सामान्य होते हुए भी चित्रण की दृष्टि से लीक से थोड़ा हटकर है। कहानी एक ऐसे अवकाश प्राप्त व्यक्ति का चित्रण करती है, जो सेवानिवृत्त होने के बाद परिजनों की दृष्टि में तो महत्त्वहीन बन ही गया है, स्वयं की नजर में भी अपना आपा खो बैठा है। उपेक्षा और अवसाद का जीवन जीनेवाला नायक अपने को तुच्छ और अपदार्थ समझ बैठता है। अब उसके लिए जीवन में कोई आकर्षण नहीं है, यहाँ तक कि उसमें जीने की इच्छा भी समाप्त हो गई है। इस दुखद स्थिति में उसमें जीवन के प्रति विश्वास और जीने की प्रबल इच्छा भरने का काम करती है उसके संपर्क में आनेवाली एक अनुभूति प्रवण महिला। इस किरदार को उस जमाने की प्रसिद्ध अभिनेत्री नादिरा ने निभाया था।

संगीत की दृष्टि से भी यह फिल्म महत्त्वपूर्ण रही। मीना कपूर ने इस फिल्म में एक अविस्मरणीय गीत गाया था—'कुछ और जमाना कहता है, कुछ और है जिद मेरे मन की।' 'छोटी-छोटी बातें' बन रही थी, किंतु मोतीलाल अपना स्वास्थ्य खो रहे थे। उनके अभिन्न मित्र संगीत निर्देशक अनिल बिस्वास ने जैसे-तैसे पार्श्वगायन का काम पूरा किया और उसकी खबर नर्सिंग होम में भर्ती बीमार मोतीलाल को देना चाहते थे। किंतु उनसे मिलने के लिए अस्पताल में पहुँचने के पहले ही इस कलाकार के संसार त्याग का समाचार उन्हें मिला। सच तो यह है कि अपने द्वारा अभिनीत चरित्र के साथ स्वयं को तदाकार करनेवाले मोतीलाल जैसे कलाकार विरल ही होते हैं।

❑

30

फंतासी फिल्मों के अभिनेता—महिपाल

राजस्थान की धरती ने महिपाल जैसे प्रतिभा संपन्न अभिनेता को जन्म दिया, जो एक श्रेष्ठ कलाकार होने के साथ-साथ कोमल अनुभूतियों को व्यक्त करनेवाला सफल कवि भी था। जोधपुर में जनमे किंतु बंबई को अपना स्थायी निवास बना लेने वाले महिपालचंद भंडारी का जन्म 24 नवंबर, 1919 को एक प्रतिष्ठित ओसवाल (जैन) परिवार में हुआ। जोधपुर से उन्होंने बी.ए. पास किया। अपने विद्यार्थी काल से ही वे लेखन, अभिनय, काव्य-रचना आदि प्रवृत्तियों में रुचि लेने लगे। जब वे कॉलेज में पढ़ते थे, तभी से नाटकों में अभिनय करने तथा पत्र-पत्रिकाओं में लिखने में उनकी रुचि दिखाई देने लगी। यह 1942 की बात है। हिंदी तथा राजस्थानी में साथ-साथ बननेवाली फिल्म 'नजराना' के लिए युवा कलाकारों की तलाश में निर्देशक तथा संगीतकार जे.पी. कपूर जोधपुर आए। इसी दौरान उनकी नजर उभरते कलाकार महिपाल पर पड़ी तो उन्हें अपनी तलाश पूरी होती दिखाई दी। इस प्रकार इस मारवाड़ी युवक को अपनी मातृभाषा की पहली फिल्म में पार्ट मिल गया। फिल्म नगरी बंबई में बिना संघर्ष किए सफलता मिलनी तो दूर रही, पाँव जमाना भी कठिन होता है। महिपाल को भी अनेक विपरीत परिस्थितियों से जूझना पड़ा। यहाँ उनकी काव्य-प्रतिभा काम आई और 1943 में उन्होंने प्रसिद्ध निर्माता वी. शांताराम की फिल्मों के लिए गीत लिखना आरंभ कर दिया। आगामी चार वर्षों में उन्होंने चार फिल्मों के लिए गीत लिखे तो उन्हें अनुमान भी नहीं था कि 'आपकी सेवा में' नामक फिल्म में प्रयुक्त उनका लिखा गीत 'पा लागूँ कर जोरी रे, श्याम मोसे ना खेलो होरी' (यह ठुमरी है) लता मंगेशकर द्वारा गाया जानेवाला पहला गीत है। यह फिल्म 1947 में बनी थी।

इस बीच गीत लिखने के साथ-साथ उन्हें छोटी-छोटी भूमिकाएँ भी मिलने लगीं। कुछ काल पश्चात् वे शांताराम की कंपनी से अलग हो गए और सोहराब मोदी के मिनर्वा मूवीटोन में आ गए। सोहराब मोदी के निर्देशन में बनी धार्मिक फिल्म 'नृसिंह अवतार' (1949) में उन्हें नारद की भूमिका मिली। वसंत पिक्चर्स की फिल्म 'श्रीगणेश महिमा' (1950) होमी वाडिया द्वारा निर्देशित फिल्म थी। इसमें महिपाल ने कृष्ण का रोल किया। इसमें उन्हें असाधारण सफलता मिली। इसके बाद महिपाल ने 'लक्ष्मी नारायण' (1951) तथा 'हनुमान पाताल विजय' (1952) में विष्णु तथा राम का रोल किया और पौराणिक फिल्मों के सफलतम नायक स्वीकार कर लिये गए। पौराणिक फिल्मों में प्रशंसा बटोरने के दौरान 1952 में उन्होंने अरबी-फारसी के कथाकारों, विशेषकर अलिफ-लैला (Arabian Nights या सहस्र रजनी चरित्र) की चमत्कारमूलक कथाओं पर आधारित फंतासी फिल्मों में काम करना आरंभ किया। इन फिल्मों में रहस्य-रोमांच, जादू के चमत्कार, मारधाड़ जैसे अलौकिक तत्त्वों के लिए काफी गुंजाइश रहती थी।

उपर्युक्त प्रकार की जो फंतासी फिल्में महिपाल ने कीं, उनमें प्रमुख थीं—'अली बाबा और चालीस चोर',

‘लालपरी’, ‘हुस्न का चोर’, ‘खुल जा सिम सिम’, ‘अलादीन का बेटा’, ‘शाह बहराम’, ‘शेरे-बगदाद’, ‘मस्त कलंदर’, ‘शेखचिल्ली’, ‘शाही बाजार’, ‘अलहिलाल’, ‘जबक’, ‘सुनहरी नागिन’ तथा ‘पारसमणि’। इन फिल्मों का एक बड़ा प्रशंसक वर्ग सदा रहा है। इन दर्शकों के लिए महिपाल वास्तविक अर्थों में हीरो थे। जिन पौराणिक फिल्मों में उन्होंने काम किया, वे हैं—‘नव दुर्गा’, ‘तुलसीदास’, ‘बजरंग बली’, ‘संपूर्ण रामायण’, ‘कण-कण में भगवान’, ‘सती सावित्री’, ‘वीर भीमसेन’, ‘राम भरत-मिलाप’। उन्हें जैसा सौम्य, सुदर्शन चेहरा तथ कोमल वाणी युक्त मोहक व्यक्तित्व मिला था, ये भूमिकाएँ भी उसी के अनुरूप थीं, क्योंकि देवताओं और अवतार पुरुषों में आकृति की कमनीयता तथा मोहकता को प्रथम गुण समझा जाता है। उनके साथ जिन नायिकाओं ने काम किया, वे थीं—अनीता गुहा तथा निरूपा राय, जो सीता जैसी देवी के रूप में खूब जमती थीं। जिस प्रकार चालीस के दशक की धार्मिक फिल्मों में प्रेम अदीब तथा शोभना समर्थ ने राम और सीता के चरित्र को वास्तविक अर्थों में जिया था, वैसी ही स्थिति पचास के दशक में महिपाल तथा निरूपा राय एवं अनीता गुहा की रही।

महिपाल ने ऐतिहासिक फिल्मों में भी काम किया है। ‘महाराजा विक्रम’ तथा ‘पत्थर का ख्वाब’ उनकी इतिहास पर आधारित फिल्में थीं। सामाजिक सरोकारों से जुड़ी ‘दौलत’, ‘धर्म पत्नी’ तथा ‘मक्खीचूस’ आदि फिल्मों में भी उन्हें सफलता मिली। महिपाल की कला का उत्कर्ष फिल्म ‘नवरंग’ (1959) में देखने को मिला, जिसमें उन्होंने राजकवि नवरंगी की भूमिका को अत्यंत स्वाभाविक तथा संवेदनशीलता के साथ निभाया। ‘आधा है चंद्रमा रात आधी, रह न जाए तेरी-मेरी बात आधी, मुलाकात आधी’ जैसे रसमय गीत के साथ सफल अभिनय करना महिपाल जैसे समर्थ कलाकार के लिए ही संभव था। 1969 में बनी ‘पत्थर का ख्वाब’ उनकी अंतिम फिल्म थी, जिसमें उन्होंने ताजमहल के शिल्पी का रोल किया था। महिपाल को अपने जमाने की प्राय: सभी अभिनेत्रियों के साथ काम करने का अवसर मिला।

जमाने में आने वाले बदलाव के साथ दर्शकों की रुचियों तथा बौद्धिक स्तर में भी परिवर्तन आता है। सन् 1970 तक रहस्य, रोमांच तथा अलौकिक तत्त्वों से भरपूर फिल्मों तथा पौराणिक-धार्मिक चित्रों में दर्शकों की रुचि कम होने लगी तो महिपाल ने यदा-कदा बननेवाली इस तरह की फिल्मों में चरित्र भूमिकाएँ करनी आरंभ कीं। ‘श्याम तेरे कितने नाम’, ‘गंगा-सागर’, ‘बद्रीनाथ धाम’, ‘जय बाबा अमरनाथ’, ‘नवरात्रि’ आदि फिल्मों में उन्होंने गौण भूमिकाएँ कीं। हिंदी के साथ-साथ अपनी मातृभाषा राजस्थानी में भी उन्होंने सफल भूमिकाएँ निभाईं। इनमें ‘बाबा रामदेव’, ‘ढोला मरवण’ और ‘गोगाजी पीर’ आदि मुख्य हैं। वे कुछ मराठी, गुजराती तथा असमिया फिल्मों में भी काम कर चुके थे। उनके द्वारा अभिनीत कुल फिल्मों की संख्या लगभग 140 है। कुछ वर्ष पहले हृदयाघात से पीड़ित हो जाने के पश्चात् उन्होंने फिल्मी जीवन से संन्यास ले लिया था। काव्य-रचना के प्रति उनका आकर्षण तो यथावत् रहा, किंतु रजत पट की स्मृतियाँ उन्हें एकांत क्षणों में रोमांचित तथा उल्लसित कर देती थीं।

महिपाल कवि के रूप में

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि महिपाल ने जब फिल्म जगत् में प्रवेश किया, तब उन्हें एक गीतकार के रूप में ही नियुक्ति मिली थी। काव्य रचना में उनकी रुचि उसी समय पनपने लगी थी, जब वे जोधपुर के जसवंत कॉलेज में छात्र थे। आगे चलकर जब वे अभिनय में आकंठ डूब गए तो काव्य रचना के लिए समय निकालना उनके लिए संभव नहीं रहा। तथापि यथा सुविधा वे अपने मानसिक भावों और उद्गारों को काव्य का जामा पहनाते रहे। यहाँ हम उनके द्वारा रचित कुछ कविताओं के आधार पर कवि महिपाल के भाव-संसार की समीक्षा करेंगे। महिपाल की कविता जीवन के यथार्थ चित्रण को प्राथमिकता देती है, साथ ही व्यंग्य-विनोद की फुलझड़ियाँ छोड़कर वे इनके द्वारा अपने उद्देश्य को भी व्यक्त करते हैं। एक सूखा, शुष्क ठूँठ हुआ वृक्ष अपनी बात कितनी मार्मिकता से

कहता है—

आज ठूँठ हूँ उजड़ के, फिर भी दूँगा छाँव।
निजता कैसे छोड़ दूँ, गाली देगा गाँव॥

उक्त दोहे में अन्योक्ति अलंकार की छटा दर्शनीय है। सत् पुरुष सब तरह से विपन्न और बरबाद हो जाने पर भी अपनी परोपकार वृत्ति को नहीं छोड़ता। इसी तथ्य को कवि ने सूखे पेड़ के व्याज से व्यक्त किया है।

जीवन की निष्फलता से उत्पन्न निराशा युक्त अवसाद का जैसा सादा किंतु प्रभावशाली चित्रण कवि ने किया है, इसे निम्न दोहे में देख सकते हैं—

जीवन के इस द्यूत में मिलता नहीं उधार।
रातें फूटी कौड़ियाँ दिवस चुका हूँ हार॥

साहित्य और कला से विहीन व्यक्ति को सींग-पूँछ से रहित पशु तो भर्तृहरि ने भी कहा था, किंतु महिपाल ने ऐसे मनुष्य के लिए एक नया उपमान (बिना फोटो का फ्रेम) तलाश किया है—

कलाविहीन व्यक्ति है बिन फोटो का फ्रेम।
बिना नशे की वारुणी बिना दर्द का प्रेम॥

प्रकृति में मानवी चेतना तथा सौंदर्य को देखना छायावादी कवियों को प्रिय रहा। कवि महिपाल ने भी संध्या सुंदरी को एक मतवाली नायिका के रूप में चित्रित किया है—

सूरज के रथ से उतर, चली लजीली शाम।
झनक-झनक झाँझर बजे झूम-झूम अभिराम॥

कवि की कविता में आशावाद के स्वर सर्वत्र सुनाई पड़ते हैं। वह लिखता है—

वे दिन बीते जो थे अपने,
निर्धन का धन सूने सपने।
अंतर के कुंठित अंकुर भी
कौन जानता लगे पनपने।
तू सतत गति से बढ़े जा विश्व के प्रतिकूल।
अपनी साधना मत भूल।

महिपाल ने जिस युग में अपनी कविताएँ लिखीं, वह हिंदी साहित्य में छायावाद के नाम से प्रसिद्ध था। कल्पना की सूक्ष्मता, भावों की कोमलता, प्रतीक विधान युक्त सौंदर्य-चित्रण उस युग के कवियों के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ थीं। महिपाल युगीन काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों से अप्रभावित नहीं रहे। 'वीणा मधुर मधुर गाती है' तथा 'मधुर कल के स्वप्न मेरे' शीर्षक उनके गीत छायावादी कविता के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। महादेवी वर्मा की भाँति इस कवि ने वेदना, पीड़ा और आँसुओं को अपने काव्य में जीवंत अभिव्यक्ति दी है—

जिधर तेरे श्रीचरण हों अश्रु मेरे मग बिछें रे।
अधर से मिल अधर खोये, प्राण से मिल प्राण रोये।
अग्नि भी साक्षात् साक्षी व्योम ने शुभ दीप जोये।
लघु किरण ने बेध डाले गहन युग-युग के अँधेरे।
मधुर कल के स्वप्न मेरे।

युग ने करवट ली और कविता के क्षेत्र में सामाजिक प्रतिबद्धता का चित्रण आवश्यक माना जाने लगा। द्वितीय

महायुद्ध आरंभ होने से कुछ वर्ष पहले ही हिंदी काव्य में प्रगतिवाद का प्रवेश हुआ। अब कविता में किसान और मजदूर की संघर्षमयी जिंदगी, सामाज्यवादी शक्तियों द्वारा किए जानेवाले अत्याचारों तथा पूँजीवादी शोषण का चित्रण प्रमुखता से होने लगा। राष्ट्रीय भावधारा से जुड़े काव्य का आरंभ तो दिनकर तथा सोहनलाल द्विवेदी की कविता से हो चुका था, अब तो सर्वहारा वर्ग के संघर्ष का यथातथ्य चित्रण करने की बात थी। महिपाल की 'किसान' शीर्षक कविता उसी युग की प्रतिध्वनि है। सबको अन्न देनेवाला किसान कितना भीत, त्रस्त, दुखी तथा प्रपीड़ित है, इसे कवि ने निम्न पंक्तियों में चित्रित किया है—

जो जग को अन्न प्रदान करे जग उसको ही ठुकराता है।
उसकी हड्डी को नोच-नोच जग वैभव भवन बनाता है।
वह चरणों में मस्तक रखता जग ठुकराकर इतराता है।
उसके चिथड़ों में आग लगा जग हँसता है, मुसकाता है॥

आशा और निराशा के बीच दोलायमान कृषक की वेदना को कवि ने इस प्रकार साकार किया—

लहराकर जग की आशा फिर उसकी पलकों पर बिछ जाती।
उसके अधरों पर हँसने की भोली-सी रेखा खिंच आती।
मजबूरी देती गला घोंट निर्धनता तन पर चढ़ आती।
आँखों की लहरें आँखों से टकराकर मिट जातीं॥

आज के सामाजिक जीवन में आई विकृतियों तथा मूल्यों के ह्रस को कवि अनुभव करता है। वह देखता है कि देश के आजाद हो जाने के बाद भी सामाजिक तथा सार्वजनिक जीवन में कोई आशाजनक परिवर्तन नहीं आया है। सबकुछ वैसा ही है। इसी विचार को कवि ने 'केवल पलट गया पासा' शीर्षक कविता में तीखी अनुभूति के साथ पेश किया है—

दिलगीरी कैसी दिलगीरी, कैसी व्यथा निराशा।
खेल वही है सारा केवल पलट गया पासा॥
आना जाना नियम जगत का क्या पहले क्या पीछे?
नैतिकता को भूलो अब जो हुई शून्य के नीचे।
छीना-झपटी चोरी-जारी अब इनकी बाजारी।
शीश कहाँ वे तो झुकते चरणों में आँखें मीचे।
अब युगधर्म किसी बेबस के अल गए फाँसा।
खेल वही का सारा, केवल पलट गया पासा॥

महिपाल के काव्य की इस बानगी को देखकर यह सहज ही कहा जा सकता है कि यदि वे अपने व्यस्त अभिनय जीवन से कुछ अधिक समय काव्य रचना के लिए निकाल पाते तो हिंदी के काव्य-भंडार की कुछ अधिक श्रीवृद्धि होती।

❑

31

भारतीय चित्रपट की फर्स्ट लेडी—देविका रानी

प्रथम फाल्के पुरस्कार से सम्मानित अभिनेत्री देविका रानी को भारतीय रजत पट की प्रथम सौंदर्यशालिनी सम्राज्ञी का गौरव प्राप्त था। उसे 'फर्स्ट लेडी ऑफ दि इंडियन स्क्रीन' भी कहा गया। देविका रानी का जन्म 30 मार्च, 1908 को आंध्र प्रदेश के वाल्टेयर नगर में एक उच्च कुलोत्पन्न बंगाली परिवार में हुआ। उसके पिता मेजर जनरल एम.एन. चौधरी सेना के उच्च अधिकारी थे। महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर रिश्ते में उसके नाना लगते थे। ऐसे सुरुचिपूर्ण तथा कलाप्रेमी परिवार में जन्म लेने के कारण देविका रानी में संस्कारशील व्यक्तित्व का विकास होना स्वाभाविक ही था। अभी वह नौ वर्ष की ही थी कि उसे पढ़ने के लिए इंग्लैंड भेज दिया गया। यहाँ उसने अध्ययन के साथ-साथ अभिनय, नृत्य, वस्त्रों की डिजाइनिंग आदि कलाओं में रुचि दिखाई और अठारह वर्ष की आयु में लंदन के एक प्रसिद्ध आर्ट स्टूडियो में वस्त्र डिजाइनर के रूप में काम करने लगी। उसने इसे विदेश में अपनी जीविका का साधन बना लिया।

फिल्म निर्माता हिमांशु राय भी उन दिनों इंग्लैंड में थे। देविका रानी तथा हिमांशु राय का परिचय हुआ और दोनों एक-दूसरे के काफी नजदीक आ गए। राय महाशय ने महात्मा बुद्ध की कथा को लेकर 'लाइट ऑफ एशिया' नामक एक अंग्रेजी फिल्म बनाई थी और अब वे 'कर्म' नामक एक अन्य फिल्म बनाने का विचार कर रहे थे। इस दौरान हिमांशु राय और देविका रानी की मैत्री विवाह में परिणत हो गई। आयु में पर्याप्त अंतर होते हुए भी देविका रानी और हिमांशु राय दांपत्य बंधन में बँध गए। अब इन्होंने मिलकर 1933 में फिल्म 'कर्म' बनाई, जिसमें राय दंपती नायक-नायिका के रूप में आए। यही देविका रानी की पहली फिल्म थी। यह भारत की प्रथम सवाक् अंग्रेजी फिल्म मानी जानी चाहिए। इसका प्रीमियर शो लंदन में हुआ, जिसमें देविका रानी स्वयं उपस्थित थीं। मादक सौंदर्य, अभिनय चातुर्य तथा विशुद्ध अंग्रेजी उच्चारण के कारण फिल्म के साथ-साथ देविका रानी भी प्रशंसित हुईं।

इसके पश्चात् हिमांशु राय तथा देविका रानी स्वदेश लौटे और बंबई के मलाड़ इलाके में जमीन खरीदकर एक फिल्म निर्माण संस्था आरंभ की, जो आगे चलकर बॉम्बे टॉकीज के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस कंपनी की सर्वोच्च व्यवस्था राय दंपती के हाथों में रही। ये दोनों ही कंपनी के निदेशक तथा प्रबंध निदेशक थे। अन्य दो निदेशकों में एक सर रिचर्ड टेंपल तथा दूसरे राय बहादुर चुन्नीलाल थे। बॉम्बे टॉकीज की पहली फिल्म 'जवानी की हवा' से देविका रानी का फिल्मी जीवन आरंभ होता है। यह फिल्म 1935 में बनी। बॉम्बे टॉकीज की आरंभिक फिल्मों का निर्माण फ्रांज आस्टिन नामक एक जर्मन ने किया था। इस फिल्म में नायक के रूप में एक सुंदर और युवा कलाकार नजमुल हुसैन को उतारा गया। बॉम्बे टॉकीज की फिल्मों का संगीत निर्देशन एक पारसी महिला के जिम्मे था, जिसे हिमांशु राय ने पारसी समाज के प्रबल विरोध के बावजूद सरस्वती देवी नाम देकर संगीत का दायित्व

सौंपा था।

देविका रानी की दूसरी प्रसिद्ध फिल्म थी 'अछूत कन्या'। यह 1936 में बनी। इसे देविका रानी तथा बॉम्बे टॉकीज की एक कालजयी रचना कहा गया है। देश की तत्कालीन सामाजिक समस्याओं में प्रधान थी छुआछूत की समस्या और इसे इस फिल्म में बड़ी शिद्दत के साथ पेश किया गया था। बॉम्बे टॉकीज की प्रयोगशाला में तकनीकी सहायक के रूप में काम करनेवाले बंगाली युवक अशोक कुमार (यह भी उसका फिल्मी नाम ही था) को किन परिस्थितियों में 'अछूत कन्या' में नायक का रोल मिला, यह तो एक पृथक् कहानी है, किंतु यह कहना आवश्यक है कि इस फिल्म को असाधारण सफलता मिली। अशोक कुमार और देविका रानी ने फिल्म में मिलकर एक गाना गाया। उसके बोल थे—''मैं बन की चिड़िया बनके बन बन डोलूँ रे-मैं बन का पंछी...'' उन दिनों नायक-नायिका को अपने गाने खुद गाने पड़ते थे। 'जीवन-नैया' का निर्माण भी 1936 में ही हुआ। अब देविका रानी तथा अशोक कुमार की जोड़ी बन गई थी, जो आगे भी अनेक फिल्मों में आती रही।

वर्ष 1937 में बनी फिल्म 'जीवन प्रभात' में किशोर साहू नायक की भूमिका में आए। निर्देशन फ्रांज आस्टिन का ही था। देविका रानी ने इस फिल्म में तीन गीत गाए। सामाजिक फिल्म 'निर्मला' का निर्माण 1938 में हुआ। अशोक कुमार पुन: इसमें नायक बने। दोनों ने मिलकर दो गीत भी गाए। इसी साल वेशभूषा प्रधान फिल्म 'वचन' भी बनी, जिसमें दोनों (देविका रानी और अशोकुमार) ने अपने गीत खुद गाए।

वर्ष 1939 में देविका रानी को लेकर बनी फिल्म 'दुर्गा' में अशोक कुमार अनुपस्थित थे। नाना पलसीकर ने नायक का रोल किया। 1941 में देविका रानी और अशोक कुमार की फिल्म 'अंजान' बनी। अब बॉम्बे टॉकीज ने जर्मन निर्देशक आस्टिन के स्थान पर अमिय चक्रवर्ती की नियुक्ति कर दी थी। अत: इन्होंने ही इस फिल्म का निर्देशन किया। 'अंजान' के संगीत निर्देशक पन्नालाल घोष थे, जो आगे चलकर बाँसुरीवादक के रूप में विख्यात हुए। 1943 में बनी फिल्म 'हमारी बात' देविका रानी की अंतिम फिल्म थी, जिसमें नायक की भूमिका में जयराज थे। संगीत निर्देशन अनिल बिस्वास का था, जिन्होंने अपनी बहन तथा प्रसिद्ध पार्श्व गायिका पारुल घोष से इसमें कुछ मधुर गीत गवाए। 'मैं उनकी बन जाऊँ रे' पारुल का एक मधुर गीत था, जबकि पारुल तथा अनिल बिस्वास ने मिलकर एक अन्य गीत इस फिल्म में गाया 'इनसान क्या जो ठोकरें नसीब की न खा सके।' 'जवानी की हवा' से देविका रानी का जो फिल्मी सफर 1935 में आरंभ हुआ, वह 1943 में फिल्म 'हमारी बात' तक आकर समाप्त हो गया। यह एक दशक से भी कम का था और उनके द्वारा अभिनीत फिल्मों की संख्या भी अधिक नहीं थी।

तथापि हिंदी फिल्म संसार में देविका रानी ने अपनी एक पृथक् छवि बनाई थी। एक फिल्म समीक्षक के शब्दों में —''उस जमाने में देविका रानी नाम में एक अद्भुत अपील थी। समकालीन महिलाएँ आपसी फिकरेबाजी में 'तुम अपने आपको देविका रानी समझती हो क्या?' कहा करती थीं। उस जमाने में वे एक मानदंड बन गई थीं। उन दिनों सिनेमा-संस्कृति ने सामाजिक जीवन पर अपना प्रभाव डालना शुरू ही किया था। परदे के आदर्श आकार ग्रहण करने लगे थे। साज-सज्जा में देविका रानी, आपसी व्यवहार में देविका रानी, बोलचाल में देविका रानी छाने लगी। महिलाएँ उनका अनुकरण करने के लिए लालायित रहती थीं। फिल्म जगत् में कदम रखनेवाली वह संभ्रांत घर की पहली शिक्षित महिला थीं। उन्होंने फिल्म माध्यम को उस समय आगे बढ़ाया जब महिलाओं को इसमें आने की सामाजिक अनुमति भी नहीं थी। उन्होंने अपनी फिल्मों में महान् सुसंस्कृत परंपराएँ डालीं। उनकी फिल्मों में संस्कृति, समाज सुधार और मनोरंजन का अच्छा सामंजस्य होता था। इसलिए हिंदी फिल्मों में जो गरिमा, जो प्रतिष्ठा देविका रानी को प्राप्त हुई, वह किसी अन्य नायिका को नहीं मिली।''

फिल्मों में काम करते समय देविका रानी ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे। 1940 में हिमांशु राय का निधन हो गया तो

बॉम्बे टॉकीज का सारा भार उन पर आ गया। कतिपय कारणों से बॉम्बे टॉकीज के साथ जुड़े कलाकारों तथा तकनीकी कर्मचारियों का इस संस्था की स्वामिनी देविका रानी से वैसा सौहार्दपूर्ण संबंध नहीं रहा जैसा हिमांशु राय के समय में था। इसका एक कारण तो था अमिय चक्रवर्ती का कंपनी का डायरेक्टर बनना। उनके तानाशाही व्यवहार को न तो कर्मचारियों ने पसंद किया और न राय बहादुर चुन्नीलाल आदि अन्य निदेशकों ने। परिणाम यह निकला कि शशधर मुखर्जी के नेतृत्व में बॉम्बे टॉकीज से जुड़े अनेक कलाकार और कर्मचारी इससे अलग हो गए और उन्होंने एक नई कंपनी फिल्मिस्तान के नाम से बना ली।

अंततः देविका रानी और अमिय चक्रवर्ती का साथ भी नहीं निभा और 1945 में उन्होंने फिल्म व्यवसाय से अपना नाता तोड़ लिया। रजत पट की दुनिया से संन्यास ले लेने के पश्चात् देविका रानी ने भारत में बसे प्रसिद्ध रूसी चित्रकार स्वेतोस्लाव रोरिक से विवाह कर लिया। अब वे कुल्लू के निकट अपने पति की जमींदारी में रहने लगीं। रोरिक की मृत्यु के बाद वे बैंगलोर आ गईं। 9 मार्च, 1994 को यहीं पर उनका निधन हो गया।

फिल्मों में संस्कारशीलता तथा आभिजात्य तत्त्वों को प्रतिष्ठित करने के लिए देविका रानी को सदा स्मरण किया जाएगा। महाकवि रवि ठाकुर ने उनकी कला की प्रशंसा की थी। सरोजिनी नायडू उनकी मित्र थीं। उनकी संस्तुति से पं. जवाहरलाल नेहरू ने फिल्म 'अछूत कन्या' देखी तथा फैन लेटर लिखकर देविका रानी को भेजा। भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री अलंकरण से सम्मानित किया। युवावस्था में देविका रानी के बड़े चर्चे रहे। बंबई के गवर्नर सर रिचर्ड टेंपल उनके प्रशंसक थे। बॉम्बे टॉकीज की स्थापना में उनका पूरा सहयोग रहा। सर टेंपल पर देविका रानी के सौंदर्य और भव्य व्यक्तित्व का जबरदस्त असर था। जब वे मार्केटिंग के लिए जातीं तो उनकी गाड़ी को सर टेंपल ही चलाते थे। एक अन्य गवर्नर लार्ड ब्रेबार्न तो 'अछूत कन्या' की नियमित रूप से शूटिंग देखने गवर्नर हाउस से चुपके से स्टूडियो पहुँचते और वहाँ राय दंपती के साथ डिनर लेकर ही लौटते। ऐसी थी देविका रानी फिल्म जगत् की सम्राज्ञी तथा फर्स्ट लेडी।

❑

32

संगीत, सौंदर्य तथा अभिनय का संगम—नसीम बानो

सुंदर शरीर तो प्रकृति का वरदान है किंतु कलाओं में व्युत्पन्न होना परिश्रम-साध्य होता है। यह आवश्यक नहीं है कि अप्रतिम सौंदर्य पाकर कोई उत्कृष्ट गायक या अभिनेता बन ही जाए। यह एक संयोग ही था कि विगत काल की अभिनेत्री नसीम को जहाँ अपार सौंदर्य मिला, वहाँ वह अभिनय तथा गायन की कसौटी पर भी खरी उतरीं। नसीम मूलत: दिल्ली की रहनेवाली थी। गरमी की छुट्टियों में वह बंबई घूमने आ गई। अभी तो वह पढ़ ही रही थी। यहाँ उसने एक स्टूडियो में मोतीलाल और सविता देवी को फिल्म 'सिल्वर किंग' में शूटिंग करते देखा। इससे वह इतनी प्रभावित हुई कि उसने फिल्म में काम करने का निश्चय कर लिया। उसकी माँ शमशाद बेगम, जो अपने जमाने की विख्यात शास्त्रीय गायिका थीं, नसीम को डॉक्टर बनाना चाहती थीं, किंतु लड़की को तो रजत पट की दुनिया इतनी पसंद आई कि उसमें प्रविष्ट होने के लिए उसने भूख हड़ताल कर दी। अंतत: माँ राजी तो हुई किंतु इस शर्त पर कि वह दिल्ली में अपनी पढ़ाई जारी रखेगी और केवल ग्रीष्मकालीन अवकाश में बंबई आकर शूटिंग किया करेगी। ऐसा ही हुआ और 1936 में नसीम ने मिनर्वा मूवीटोन की फिल्म 'हैमलेट' या 'खून का खून' में आफेलिया (नायक की प्रेयसी) का पार्ट किया। यह फिल्म शेक्सपियर के इसी नाम के नाटक पर आधारित थी।

फिल्म तो पूरी हो गई किंतु दिल्ली की इस युवा लड़की को उसके सौंदर्य के कारण ही दर्शकों ने अधिक सराहा। एक बात और हुई। जब लोगों को यह पता चला कि अमुक स्कूल की एक छात्रा ने फिल्म में अभिनय किया है तो अभिभावकों ने उस स्कूल के संचालकों पर जोर डाला कि वे इस अभिनेत्री छात्रा को विद्यालय से निकाल बाहर करें। उन्हें अंदेशा था कि अभिनेत्री के साथ पढ़नेवाली उनकी लड़कियाँ बिगड़ जाएँगी। अंतत: नसीम ने पढ़ाई छोड़ दी और वह सर्वात्मना फिल्म संसार में आ गई। उसकी दूसरी फिल्म 'खान बहादुर' थी, जिसके निर्देशक सोहराब मोदी थे। फिल्म की कहानी आर्य सुबोध कंपनी द्वारा मंचित इसी नाम के एक नाटक का आधार लेकर लिखी गई थी। यह फिल्म 1937 में तैयार हुई। 1938 में नसीम 'डाइवोर्स या तलाक' फिल्म में आई। फिल्म की नायिका नसीम ने इसमें अपने गीत खुद गाए थे। इसी वर्ष मिनर्वा मूवीटोन की फिल्म 'वासंती' में भी उसने काम किया।

नसीम बानो का फिल्मी सफर प्रगति की मंजिलें पार कर रहा था। 1938 में उसने सोहराब मोदी द्वारा निर्देशित 'मीठा जहर' फिल्म में काम किया। इसमें गाए गए उसके दो गीत लोकप्रिय हुए। वास्तविक अर्थ में नसीम को शोहरत और इज्जत फिल्म 'पुकार' से मिली। मुगल काल की एक घटना, जिसकी यथार्थता में संदेह किया जा सकता है, को लेकर सोहराब मोदी ने 1939 में यह फिल्म बनाई थी। इसमें बादशाह जहाँगीर के न्याय को लेकर कथा का ताना-बाना बुना गया था। जहाँगीर का रोल उस जमाने के लोकप्रिय अभिनेता चंद्रमोहन ने किया और अशेष सौंदर्य की स्वामिनी बेगम नूरजहाँ की भूमिका में अनिंद्य सुंदरी नसीम को उतारा गया था। उस युग में प्रचलित पारसी नाटक कंपनियों की साज-सज्जा तथा चमक-दमक का 'पुकार' पर स्पष्ट प्रभाव देखा गया। नाटकीय भंगिमा से बोले जानेवाले संवाद, भड़कीले वस्त्राभूषण तथा बादशाहों की शानो-शौकत ने इस फिल्म को आकर्षण तथा

गरिमा प्रदान की। इस फिल्म में गाया गया नसीम का एक गीत 'जिंदगी का साज भी क्या साज है, बज रहा है और बेआवाज है' अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त कर सका। गीत में जीवन रूपी वाद्य यंत्र के बजने तथा साथ ही आवाज न करने की विरोधाभासी दार्शनिकता ने श्रोताओं पर अभूतपूर्व प्रभाव डाला। 1940 में गजाननद जागीरदार के निर्देशन में तैयार फिल्म 'मैं हारी' में भी नसीम ने नायिका का पार्ट किया।

चालीस के दशक के समाप्त होते-होते मोहम्मद अहसान नाम के एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति ने ताजमहल पिक्चर्स नाम से एक फिल्म कंपनी बनाई और फिर 'उजाला' फिल्म बनाई। फिल्म को अधिक सफलता नहीं मिली, यद्यपि इसकी प्रमुख भूमिकाओं में पृथ्वीराज कपूर तथा नसीम जैसे कलाकार थे। इसके संवाद कमाल अमरोही ने लिखे थे, जो इससे पहले बनी फिल्म 'पुकार' के फड़कते संवाद लिखकर प्रसिद्धि पा चुके थे। फिल्म चाहे सफल नहीं हुई किंतु इसने नसीम के व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित किया। वह निर्माता अहसान के साथ विवाह बंधन में बँध गई। अहसान के पिता खान बहादुर मोहम्मद सुलेमान अपने जमाने के प्रभावशाली रईस थे। विवाह के बाद नसीम अपनी ससुराल दिल्ली चली गई। लोगों ने समझा, उसकी फिल्मी भूमिका खत्म हो गई है। वास्तव में ऐसा हुआ नहीं। बॉम्बे टॉकीज से जुड़े कुछ मशहूर फिल्मकर्मियों ने फिल्मिस्तान के नाम से एक अलग कंपनी बनाई, जिसके सूत्र संचालक शशधर मुखर्जी थे। मुखर्जी ने इस कंपनी के बैनर तले 'चल चल रे नौजवान' नामक फिल्म बनाने की घोषणा की और नसीम को नायिका की भूमिका में उतारा।

उसके जैसी खूबसूरत तथा कला दक्ष अभिनेत्री के पुन: रजत पट पर उतरने की खबर ने ही कला-प्रेमियों को रोमांचित कर दिया। इस फिल्म में उसकी भूमिका इससे पहले लोकप्रियता की सर्वोच्च सीढ़ी को छूनेवाली फिल्म 'पुकार' से सर्वथा भिन्न थी। यहाँ उसे सेवादल की एक स्वयंसेविका बनना पड़ा, जो सीधी-सादी यूनीफॉर्म में जनसेवा का आदर्श उपस्थित करती है। इसमें नसीम ने खूब मेहनत की और निर्देशक को पूरा सहयोग दिया। शशधर मुखर्जी 'काम के समय काम' में विश्वास करते थे और काम में ढिलाई उन्हें नापसंद थी। नसीम भी एकाग्र मन से शूटिंग में लगी रहती और कड़ी मेहनत से उसने कभी मुँह नहीं मोड़ा। अशोक कुमार के साथ उसकी जोड़ी अच्छी जमी।

'चल चल रे नौजवान' (निर्माण काल 1944) ने नसीम के पति अहसान तथा शशधर मुखर्जी को काफी करीब ला दिया। नतीजा यह निकला कि अहसान ने अपनी कंपनी ताजमहल पिक्चर्स का दायित्व अब मुखर्जी को ही सौंप दिया। इन दोनों ने मिलकर एक फिल्म 'बेगम' का निर्माण किया। 1945 में बनी इस फिल्म की कहानी प्रख्यात लेखक सआदत हसन मंटो ने लिखी थी। यहाँ उसे एक कश्मीरी युवती की भूमिका करनी थी, जो असीम सौंदर्यशालिनी नसीम के लिए कठिन नहीं थी। फिल्म को सफल बनाने के लिए देर रात तक मशविरे चलते, जिनमें निर्देशक, कहानी लेखक (मंटो) तथा नायिका नसीम का शामिल होना जरूरी होता था। ये बैठकें नसीम के घोड़बंदर रोड स्थित मकान में चलतीं, जहाँ वह अत्यंत सादगी से रहती थी। घर-गृहस्थी के कामों में सावधान, दूधवाले को अच्छा दूध न देने के लिए फटकारती तथा उससे हुज्जत करती नसीम को देखकर यह विश्वास करना भी कठिन था कि सम्राट् जहाँगीर को अपनी अंगुलियों पर नचानेवाली, सौंदर्य तथा सत्ता की प्रतीक बेगम नूरजहाँ की भूमिका इसी घरेलू किस्म की औरत ने की होगी।

नसीम का फिल्मी सफर जारी था। 1946 में वह दुर्गा पिक्चर्स की फिल्म 'दूर चलें' में आई। 1947 में उसके पति की कंपनी ताजमहल पिक्चर्स ने 'मुलाकात' शीर्षक फिल्म बनाई तो नसीम प्रेम अदीब के साथ परदे पर दिखाई पड़ी। उसका अभिनय अप्रतिम तथा हृदयग्राही था। खेमचंद प्रकाश के संगीत निर्देशन में उसने खूबसूरत गीत भी गाए। 1948 में प्रसिद्ध निर्माता महबूब ने नसीम को अपनी फिल्म 'अनोखी अदा' में पेश किया। यहाँ उसके साथ

प्रसिद्ध गायक-अभिनेता सुरेंद्र थे। नौशाद के संगीत से सजी इस फिल्म में सुरेंद्र, मुकेश, शमशाद बेगम तथा उमा देवी (टुनटुन) ने गीत गाए। अब पार्श्व गायन का रिवाज चल पड़ा था, अत: नसीम को गाने के लिए अवसर नहीं मिला। अगले वर्ष जब फिल्म 'चाँदनी रात' (ताजमहल पिक्चर्स) बनी, तब भी यही कहानी दोहराई गई। इसमें नायिका की भूमिका तो नसीम की ही थी किंतु गाने दूसरों ने गाए। नसीम की फिल्मी यात्रा सोहराब मोदी के मिनर्वा मूवीटोन से आरंभ हुई थी। बीच में उसने अन्य निर्माताओं के साथ भी काम किया। 1950 में उसे फिल्म 'शीशमहल' में सोहराब मोदी ने पुन: लिया। अगले साल 1951 में वह फिल्मिस्तान की फिल्म 'शबिस्तान' में स्पेनिश राजकुमारी की भूमिका में आई। 'बागी', 'सिंदबाद दि सेलर', 'तरंग', 'अजीब लड़की' तथा 'नौशेरवाने आदिल' आदि फिल्मों में काम करने के पश्चात् नसीम का फिल्मी जीवन अस्ताचल की ओर बढ़ चला।

अब उसने खुद अनुभव कर लिया था कि सफलता के शीर्ष बिंदु पर पहुँचने के बाद ढलान की ओर आना स्वाभाविक है। उसकी पुत्री सायरा बानो अपनी माता के मार्ग पर चलने के लिए तत्पर थी। नसीम का उर्दू, पंजाबी और हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी पर भी अधिकार प्राप्त था। संगीत से उसका लगाव उसकी माता शमशाद बेगम के कारण हुआ, जो अपने युग की अच्छी गायिका थीं। नसीम की माता का निधन वर्ष 1998 में हुआ। नसीम सांप्रदायिक सौहार्द के लिए पूर्णतया समर्पित रहीं। फिल्मी दुनिया में आज भी सब त्योहार बिना भेदभाव के मनाए जाते हैं। यह बात तब की है जब फिल्मिस्तान के कलाकारों ने नसीम तथा अहसान को होली के दिन रँगने के लिए उनके घोड़बंदर स्थित निवास की राह पकड़ी। रंगीन पानी से भरी बाल्टियाँ तथा पिचकारियों से लैस मस्तानों की यह टोली जब नसीम के घर में प्रविष्ट हुई तो उस समय वह निहायत सादगी के अंदाज में हल्के रंग की जार्जेट की साड़ी पहने थी। टोली में आए संवाद लेखक शाहिद लतीफ ने अपने साथियों को फौरन हमला बोलने के लिए कहा, किंतु कहानी लेखक मंटो ने नसीम को कपड़े बदल लेने तक का वक्त देने की बात कही। नसीम ने नाजुक अंदाज में कहा, ''यों ही ठीक है। कपड़े कौन बदले।'' दूसरे ही क्षण वह रंगीन पानी से भरी पिचकारियों से तर-बतर हो गई। उसके नेत्रों की 'श्वेत-श्याम रतनार' छवि तथा दाड़िम द्युति को लज्जित करनेवाली श्वेत दंत पंक्ति विभिन्न रंगों में रँग गई, मानो किसी शरारती बच्चे ने मोनालिसा या उर्वशी की तसवीर पर स्याही उलट दी हो।

❑

33

भगवती सीता से तदाकार होनेवाली शोभना समर्थ

चालीस के दशक की अभिनेत्रियों में शोभना समर्थ लोकप्रियता के शिखर पर थी। अनेक धार्मिक व सामाजिक चित्रों में उसने अपने अभिनय कौशल तथा अपूर्व सौंदर्य से दर्शकों पर अमिट प्रभाव डाला। 'रामराज्य' और 'भरत मिलाप' जैसी रामकथा पर आधारित फिल्मों में सीता की भूमिका में सहज, स्वाभाविक अभिनय करनेवाली शोभना आज की वृद्ध पीढ़ी में अपनी स्मृति बनाए हुए है। उसका घर का नाम सरोज था और वह एक संपन्न परिवार की बेटी थी। उसके पिता शिलोत्री बैंक के स्वामी थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् माता ने सरोज का विवाह कुमार सेन समर्थ से कर दिया। विवाह के पश्चात् वह शोभना समर्थ कहलाई। फिल्मों में काम करने में उसकी रुचि थी, इसलिए उसने विवाह से पूर्व अपने पति से यह पूछ लिया कि उसके कला-संसार में प्रवेश करने पर पति को आपत्ति तो नहीं है? शोभना का वैवाहिक जीवन सफल नहीं रहा, किंतु कला के क्षेत्र में उसे अपार ख्याति तथा ऐश्वर्य मिला।

शोभना की पहली फिल्म 1935 में बनी। कोल्हापुर सिनेटोन की इस फिल्म का निर्देशन मास्टर विनायक ने किया था और वही नायक की भूमिका में भी थे। फिल्म की कथा मराठी के श्रेष्ठ लेखक मामा वरेरकर ने लिखी थी। उन दिनों फिल्मों के नाम उर्दू-हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी में भी विज्ञापित किए जाते थे। 'निगाहें नफरत' को 'Orphans of Society' का नाम दिया गया था। पात्रों के संवाद कठिन उर्दू में थे, इसलिए ये मराठीभाषी नायिका शोभना के लिए दिक्कत पैदा कर रहे थे।

सन् 1936 में शोभना सागर मूवीटोन की सामाजिक फिल्म 'दो दीवाने' में मोतीलाल के साथ आई। यहाँ से इन दोनों कलाकारों की जो जोड़ी बनी, वह आगे कई फिल्मों में लगातार आती रही। फलत: दोनों में निकटता भी बढ़ी। 1937 में यह जोड़ी सागर मूवीटोन की फिल्म 'कोकिला' में आई, जिसका संगीत अनिल बिस्वास ने दिया था। सौंदर्य और अभिनय में शोभना के समकक्ष रहनेवाली सविता देवी की भी इस फिल्म में प्रमुख भूमिका थी। इसी कंपनी ने एक अन्य फिल्म 'साधना' बनाई, जिसमें शोभना के साथ नायक के रूप में आए प्रेम अदीब, जो आगे भी उनके साथ अनेक फिल्मों में आते रहे। रामकथा विषयक फिल्मों में तो दोनों की राम और सीता की भूमिका में एक सफल जोड़ी ही बन गई। 1939 में बनी सामाजिक फिल्म 'पति-पत्नी' में उसकी प्रमुख भूमिका थी।

1940 में हिंदुस्तान सिनेटोन द्वारा निर्मित फिल्म 'अपनी नगरिया' में शोभना समर्थ का रोल काफी प्रभावशाली था। आर्थिक विषमताओं को उजागर करनेवाली इस फिल्म का अंग्रेजी नाम Mud (कीचड़) था, जो समाज में दुरवस्था भोगनेवाले शोषित एवं पीड़ित वर्ग की हीनदशा का परिचायक था। चौथे दशक के अंत तक शोभना समर्थ फिल्मी दुनिया की फिसलन भरी धरती पर अपने पाँव मजबूती के साथ जमा चुकी थी और उसने अपने कला सामर्थ्य के द्वारा स्वयं के 'समर्थ' नाम को सार्थक कर दिया था। अगला दशक उसकी अपार

सफलताओं तथा उपलब्धियों का था, जिसके समाप्त होने के साथ-साथ उसका रजत पट जीवन भी उपसंहार की ओर बढ़ा।

सन् 1942 में विजय भट्ट ने 'भरत मिलाप' के नाम से एक अत्यंत लोकप्रिय फिल्म बनाई। भगवान् राम की जन-मन रंजनकारी लोक पावनी कथा को लेकर बनी यह फिल्म राम और भरत के पावन प्रेम को अभिव्यक्ति देती थी। फिल्म का संगीत शंकरराव व्यास ने दिया था तथा पं. अनुज और पं. इंद्र के लिखे गीतों ने भ्रातृ प्रेम की पवित्र गंगा को गली-गली में बहा दिया था। उन दिनों इसी फिल्म की एक सूक्ति 'भावना से कर्तव्य ऊँचा है' लोगों के द्वारा बार-बार बोली जाती थी। इसी फिल्म से शोभना समर्थ तथा प्रेम अदीब की राम और सीता की जोड़ी बनी। अगले वर्ष 1943 में विजय भट्ट ने रामायण के उत्तरार्द्ध के कथानक को लेकर एक अन्य फिल्म 'रामराज्य' बनाई। इस फिल्म ने सफलता के सारे रेकार्ड तोड़ दिए। स्वयं महात्मा गांधी भी इसके दर्शक बने। शंकरराव व्यास ने इस फिल्म में संगीत दिया था। सरस्वती राणे द्वारा गाए गए गीत 'बीना मधुर मधुर कछु बोल' तथा विष्णुपंत फगणीस और साथियों द्वारा गाए गए 'भारत की इक सन्नारी की हम कथा सुनाते हैं' गीत के बोल भारत की गली-गली में गूँज उठे थे। रामकथा का एक अन्य प्रसंग 'राम विवाह' फिल्म में प्रस्तुत किया गया। उसके निर्माता स्वयं राम की भूमिका करनेवाले प्रेम अदीब थे, जिन्होंने अपनी निज की संस्था प्रेम अदीब पिक्चर्स बना ली थी। 1949 में बनी 'राम विवाह' में भी शंकरराव व्यास ने ही संगीत दिया था।

धार्मिक फिल्मों में अपनी सफल अदाकारी दिखानेवाली शोभना ने सामाजिक फिल्में भी कीं। 1942 में बनी बॉम्बे सिनेटोन की फिल्म 'सवेरा' में शोभना की प्रमुख नारी भूमिका थी। The Dawn नाम से अंग्रेजी जाननेवाले दर्शकों से रू-ब-रू होनेवाली इस फिल्म में शोभना ने याकूब तथा अरुण आहूजा जैसे समर्थ कलाकारों के साथ काम किया था। इंडियन आर्ट पिक्चर्स ने 1943 में 'विजय लक्ष्मी' नाम की एक अन्य सामाजिक फिल्म बनाई, जिसमें गुलाम मुस्तफा दुर्रानी ने संगीत दिया था। शोभना तथा मोतीलाल की जोड़ी ने एक बार फिर इस फिल्म में अपनी क्षमता का परिचय दिया था। 1945 में बनी फिल्म 'नल दमयंती' महाभारत में आए नलोपाख्यान का आधार लेकर बनाई गई थी। यह जनक पिक्चर्स की फिल्म थी, जिसका संगीत रामचंद्र पाल ने दिया था। इसका निर्देशन शोभना के पति कुमार सेन समर्थ ने किया था और राजा नल की भूमिका पृथ्वीराज ने की थी। शोभना ने इसमें दमयंती का पार्ट किया था। 1945 में एक अन्य पौराणिक फिल्म 'श्रीकृष्णार्जुन युद्ध' बनी। मुरानी पिक्चर्स की इस फिल्म में शोभना के साथ नायक के रूप में पुन: पृथ्वीराज ही थे। सम्राट् अशोक के पुत्र कुणाल की कथा को लेकर जब किशोर साहू ने एक फिल्म बनाई तो महारानी तिष्यरक्षिता का किरदार शोभना को दिया गया था।

शोभना समर्थ ने बीते युग के अनेक सफल तथा यशस्वी अभिनेताओं के साथ काम किया था। इनमें पृथ्वीराज, मोतीलाल, चंद्रमोहन, प्रेम अदीब, याकूब, वास्ती, शाहू मोडक आदि के नाम चर्चित हैं। पाँचवें दशक के समाप्त होते-होते शोभना ने फिल्मी दुनिया को अलविदा कह दिया। आज बंबई के निकट पर्वतीय स्थल लोनावला में वह अपना शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही हैं। उन्हें इस बात का संतोष है कि उनकी दोनों पुत्रियों नूतन तथा तनूजा ने फिल्म संसार में अपना स्थान बनाया तथा तीसरी पीढ़ी के मोहनीश बहल तथा उभरती अभिनेत्री काजोल ने इस क्षेत्र में अपार सफलताएँ हासिल की हैं।

❑

34

एक राजकुमार जो फिल्म लाइन में आए—प्रमथेशचंद्र बरुआ

न्यू थियेटर्स द्वारा बनाई गई फिल्मों में जो संस्कृति-बोध, भद्र समाज का आदर्श चित्रण तथा अन्य अनेक विशेषताएँ दिखाई दीं, उसका कारण था एक सफल निर्देशक द्वारा इनका निर्माण। ये निर्देशक थे प्रमथेशचंद्र बरुआ, जो असम की जमींदारी गौरीपुर के राजकुमार थे। उन्हें फिल्म निर्माण की नवीनतम तकनीक का असाधारण ज्ञान था और इसका उन्होंने अपनी फिल्मों में प्रयोग किया था। बरुआ का जन्म 24 अक्तूबर, 1903 को हुआ। संपन्न जमींदार के पुत्र होने के कारण आरंभ से ही उनकी शिकार, संगीत तथा खेलकूद में रुचि रही। कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज से उन्होंने बी.एस-सी. तक अध्ययन किया। 1928 में उन्हें असम विधानसभा का सदस्य मनोनीत किया गया और उन्होंने स्वराज्य पार्टी की सदस्यता ग्रहण की। बरुआ को कलकत्ता विश्वविद्यालय की फैलोशिप मिली और वे सिनेमेट्रोग्राफी का अध्ययन करने पैरिस गए। फिल्म निर्माण की नवीनतम विधाओं में पारंगत होकर जब वे स्वदेश लौटे तो न्यू थियेटर्स के संस्थापक वीरेंद्रनाथ सरकार ने उन्हें अपनी कंपनी में फिल्मों के निर्देशन के लिए रख लिया। यहीं से प्रमथेशचंद्र बरुआ का फिल्मी जीवन आरंभ होता है।

अपने विस्तृत और अधुनातन फिल्मी ज्ञान के कारण बरुआ ने अनेक नए प्रयोग किए, जिनमें फ्लैश बैक (पूर्व दीप्ति) की पद्धति को क्रियान्वित करना मुख्य था। न्यू थियेटर्स की फिल्म 'रूपलेखा' में फ्लैश बैक का प्रथम बार प्रयोग किया गया था। 1935 में बरुआ ने हिंदी तथा बँगला दोनों भाषाओं में शरतचंद्र की प्रसिद्ध कलाकृति 'देवदास' पर फिल्म बनाई। यह फिल्म असाधारण रूप से सफल रही और निर्देशक के रूप में बरुआ को अशेष कीर्ति मिली। हिंदी फिल्म 'देवदास' में देवदास की भूमिका में के.एल. सैगल थे, जबकि बँगला 'देवदास' में खुद बरुआ ने नायक की भूमिका की थी। जब इस फिल्म के रश प्रिंट न्यू थियेटर्स के मालिक सरकार महाशय तथा कुछ अन्य अधिकारियों ने देखे तो यह महसूस किया गया कि इनमें से कुछ बहुत अच्छे नहीं हैं। इस पर खुद बरुआ ने कहा कि कुछ शॉट दोबारा फिल्माए जा सकते हैं। किंतु निर्माता सरकार महाशय के दरबार में कुछ चापलूस और बरुआ के निंदक लोग भी मौजूद थे। उन्होंने बरुआ का उपहास करते हुए कहा कि एक दृश्य ही क्या, सारी फिल्म को ही दुबारा क्यों न बनाया जाए? ये दरबारी श्रेणी के लोग बरुआ के विरोधी थे और उन्हें सरकार महाशय की नजरों में गिराना चाहते थे। किंतु बी.एन. सरकार अधिक समझदार थे। वे खुशामदियों द्वारा की गई आलोचना के अभिप्राय को समझ गए। उन्होंने कहा, ''कोई रद्दोबदल करने की जरूरत नहीं है। फिल्म जैसी बनी है उसे वैसी ही रहने दिया जाए।'' और उन्होंने उसे प्रदर्शित करने का आदेश दे दिया।

जब 'देवदास' का पहला शो होने लगा तो बरुआ से द्वेष रखनेवाले लोग सिनेमाघर के पास के एक रेस्तराँ में आकर बैठ गए। उन्हें आशा थी कि जब शो खत्म होगा तो निराश दर्शकों की प्रथम प्रतिक्रिया उन्हें सिनेमाघर के दरवाजे पर ही मिल जाएगी। उधर बरुआ का मानसिक संतुलन भी गड़बड़ा गया था। उन्हें आशंका थी कि कहीं

सचमुच फिल्म असफल रही तो वे सरकार महाशय को क्या मुँह दिखाएँगे? दर्शकों की भली-बुरी प्रतिक्रिया जानने के लिए वे खुद वेश बदलकर सिनेमाघर में जा बैठे। उन्होंने कुरते की जेब में एक पिस्तौल भी छिपा रखी थी। वास्तव में उन्होंने एक भयंकर विचार को क्रियान्वित करने का निश्चय कर लिया था। उन्होंने सोच रखा था कि यदि फिल्म दर्शकों को पसंद नहीं आती है तो वे इसी पिस्तौल से तुरंत आत्महत्या कर लेंगे। उस समय उनके मानसिक क्षोभ का आकलन करना असंभव नहीं लगता है। किंतु होनी को कुछ और ही मंजूर था। फिल्म की श्रेष्ठता को देखकर दर्शक प्रफुल्लित हो उठे और उन्होंने अपनी प्रसन्नता प्रकट करने में देर नहीं की। ज्यों ही फिल्म समाप्त हुई और परदे पर 'दि एंड, का बोर्ड लगा, 'देवदास' ने लोकप्रियता के सभी मानदंडों को तोड़ दिया था। अब उस रेस्तराँ में बैठे बरुआ के विरोधियों के चेहरों पर मुर्दनी छा गई। जैसे-तैसे उन्होंने अपने हृदय की निराशा को छिपाया और वे बरुआ को बधाई देने लगे।

इस प्रकार हिंदी तथा बँगला दोनों भाषा में बनी 'देवदास' की अभूतपूर्व सफलता ने बरुआ को फिल्म-निर्देशकों में शीर्षस्थ बना दिया। इसके बाद बरुआ ने न्यू थियेटर्स के लिए 'मंजिल' (1936), 'माया' (1936), 'मुक्ति' (1937), 'अधिकार' (1939), 'जिंदगी' (1940) आदि कई फिल्में बनाईं। कुछ समय बाद बरुआ न्यू थियेटर्स से अलग हो गए और एम.पी. प्रोडक्शन के नाम से स्वतंत्र रूप से फिल्म निर्माण में जुट गए। यहाँ भी उन्होंने 'शेष उत्तर' तथा 'चांदेर कलंक' (दोनों बँगला) तथा 'जवाब' और 'सुबह-शाम' (हिंदी) नामक फिल्में बनाईं। मात्र 48 वर्ष की आयु में 29 नवंबर, 1951 को इस प्रतिभाशाली निर्देशक का निधन हो गया।

❑

35

फिल्म संगीत के पितामह—अनिल बिस्वास

सन् 2003 में नवासी वर्षीय अनिल बिस्वास का निधन एक युग का अंत कहा जाएगा। मुकेश तथा तलत महमूद जैसे प्रतिभाशाली गायकों को फिल्म संगीत में लाने का श्रेय उनको ही जाता है। उनका जन्म 1 जुलाई, 1914 को पूर्वी बंगाल (वर्तमान बँगलादेश) के बारिसाल कस्बे में हुआ। गायन तथा काव्य रचना में उनकी रुचि बचपन से ही थी। शीघ्र ही वे स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े और क्रांतिकारियों के संपर्क में आए। पुलिस से बचने के लिए कलकत्ता आए और प्रसिद्ध बाँसुरी वादक पन्नालाल घोष के यहाँ ठहरे।

संगीत के प्रति उनकी रुचि उन्हें बंबई ले आई। यहाँ उन्होंने कुमार मूवीटोन तथा ईस्टर्न आर्ट कंपनी की कुछ फिल्मों में संगीत दिया। उन्हें इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सफलता तब मिली जब वे हिमांशु राय द्वारा स्थापित बॉम्बे टॉकीज में आए और 'किस्मत' फिल्म में संगीत दिया। इस फिल्म में उन्होंने अमीरबाई कर्नाटकी तथा साथियों से देशभक्ति के भावों से भरा वह गीत गवाया, जिसमें भारत से जर्मनी तथा जापान जैसे राष्ट्रों को दूर रहने के लिए कहा गया, इसलिए अंग्रेजी सरकार ने गीत पर कोई आपत्ति नहीं की, यद्यपि गीत का मुख्य भाव तो उन्हें ही भारत से दूर रहने से जुड़ा था। इस बीच उनकी गायिका बहन पारुल घोष का विवाह बांसुरीवादक पन्नालाल घोष से हो गया और पारुल ने भी फिल्मों में गाना आरंभ किया। 1943 में बनी 'हमारी बात' में अनिल दा ने पारुल से एक लोकप्रिय गीत 'मैं उनकी बन जाऊँ' गवाया। 'किस्मत' में उनका गाया गीत 'पपीहरा रे मेरे पिया से कहियो जाए' तो प्रसिद्धि की ऊँचाइयों तक पहुँचा था।

तलत महमूद जैसे रेशमी आवाज के धनी तथा मुकेश जैसे प्रचंड ऊर्जावान गायक को फिल्म संगीत में लाने का श्रेय अनिल दा को ही है। 1945 में फिल्म 'पहली नजर' में मुकेश ने अभिनेता मोतीलाल के आग्रह पर अनिल बिस्वास के निर्देशन में 'दिल जलता है तो जलने दे' गीत गया तो गायकी की दुनिया में तहलका मच गया। लोगों को शंका हुई कि कहीं यह सैगल का स्वर तो नहीं है? अनिल और मुकेश की यह जोड़ी आगे 'अनोखा प्यार', 'वीणा', 'लाजवाब', 'बड़ी बहू' आदि फिल्मों में भी अपनी प्रतिभा के जौहर दिखाती रही। 'अनोखा प्यार' में 'जीवन सपना टूट गया' जैसा निराशा भरा स्वर मुकेश के दर्द भरे गले से निकलवाना अनिल दा का ही काम था। लखनऊ से आए तलत महमूद तो अभिनय के क्षेत्र में अपनी तकदीर आजमाने बंबई आए थे। परंतु अनिल दा ने उनकी गायन प्रतिभा को 1950 में उनके गाए गीत 'ए दिल मुझे ऐसी जगह ले चल जहाँ कोई न हो' से पहचान लिया था। उसके बाद तो 'शुक्रिया ऐ प्यार तेरा शुक्रिया' ('आराम'), 'सीने में सुलगते हैं अरमां', 'एक मैं हूँ एक मेरी तनहाई है' (तराना) जैसे एक-से-एक मधुर तथा दर्द भरे गीत गवाकर अनिल मोशाय ने तलत को श्रेष्ठ गायकों की श्रेणी में ला बिठाया। मन्ना डे के गायन को भी अनिल दा ने मार्गदर्शन दिया था। 1953 में 'हमदर्द' तथा 'मेहमान' और अगले वर्ष 'महात्मा कबीर' में मन्ना डे की गायकी के जलवे नजर आए। 'आस ने कितने दीप

जलाए' जैसे कितने ही मार्मिक गीतों को स्वर देने में उनकी प्रतिभा प्रकट हुई थी।

इन प्रसिद्ध गायकों के अलावा कई ऐसे गायकों को भी अनिल बाबू का मार्गदर्शन मिला, जो मध्यम श्रेणी में रखे जाते थे। एक गायक शिवदयाल बातिश से उन्होंने 'आँखें कह गई दिल की बात' जैसा मोहक गीत गवाया। महिला गायिकाओं को भी अनिल दा के संगीत-निर्देशन का लाभ मिला। 'हमारी बात' में बहन पारुल का गाया 'मैं उनकी बन जाऊँ' तथा मीना कपूर (अनिल दा की धर्मपत्नी) का गाया 'कुछ और जमाना कहता है' उनकी लाजवाब देन हैं। शमशाद बेगम तथा सुरैया जैसी विगत युग की गायिकाओं के अतिरिक्त कोकिल कंठी लता मंगेशकर से उन्होंने 1951 से 1959 तक 'आराम', 'तराना', 'दोराहा', 'आकाश', 'नाज' तथा 'चार दिल चार राहें' जैसी फिल्मों में गीत गवाए।

अनिल बिस्वास ने युगल गीत भी गवाए हैं। 1942 में बनी फिल्म 'जवानी' में सुरेंद्र और हुस्नबानो के युगल स्वरों में गाया गया गीत 'आई बसंत ऋतु मदमाती' आज सत्तर बरस पुराना होकर भी ताजगी से भरा है। 'किस्मत' में अरुण कुमार का गाया गीत 'धीरे-धीरे आ रे बादल' तो कालजयी गीतों की श्रेणी में आता ही है, उसमें अमीरबाई की एक पंक्ति 'कौन गाता है रुबाई' एक नया रोमांच पैदा कर देती है तो 'ज्वार भाटा' का गीत 'साँझ की बेला पंछी अकेला' रहस्यमय विरक्ति तथा अकेलेपन का भाव उपस्थित करता है।

फिल्म 'तराना' में दो नारी स्वरों (लता तथा संध्या मुखर्जी) में अनिल दा का तैयार किया गीत 'सीने में सुलगते हैं अरमां' आधी सदी पुराना होने पर भी भावों की गंभीरता का अहसास कराता है तो लता और किशोर के सम्मिलित स्वरों में गाया गया गीत 'आ मोहब्बत की बस्ती बसाएँगे हम' श्रोता समाज पर अद्‌भुत प्रभाव छोड़ जाता है। शास्त्रीय शैली के द्वंद्व गीतों की बात करें तो फिल्म 'हमदर्द' का 'ऋतु आए ऋतु जाए' राग मल्हार का श्रेष्ठ उदाहरण है। इसके गायक थे लता मंगेशकर और मन्ना डे।

विगत कई वर्षों से अनिल दा फिल्मी दुनिया से दूर, एक अनासक्त की भाँति दिल्ली में बस गए थे। आयु की अधिकता ने उन्हें जीवन की संध्या का आभास करा दिया था। अंतत: 31 मई, 2003 को अपने परिजनों के बीच उन्होंने अंतिम साँस ली। इस वयोवृद्ध संगीतकार के प्रति अपनी भावांजलि अर्पित करते हुए लताजी ने कहा था, ''अनिल दा के संगीत में शास्त्रीय राग, बंगाली लोकगीत तथा उर्दू शायरी का मनोहारी संगम है।''

❑

36

केदार शर्मा—आए थे पेंटर बनने, बन गए निर्माता-निर्देशक

अमृतसर के एक एम.ए. पास नौजवान ने जब अपने पिता से फिल्म लाइन में जाने का इरादा जताया तो जवाब में उसे झिड़की मिली। बहुत जिद करने पर यहाँ तक चेतावनी दे दी गई कि ऐसा करने पर उसे अपनी पैतृक संपत्ति से वंचित होना पड़ेगा। युवक ने इस धमकी की उपेक्षा की और चल पड़ा कलकत्ता। यह साल 1932 की घटना है। न कोई जान-पहचान और न कोई आसरा। एक दिन काम की तलाश में वह मॉडन थियेटर्स के दिनशा ईरानी से मिला। पता लगा कि उनकी कंपनी में पोस्टर बनाने के लिए एक पेंटर की जरूरत है और इस युवक को पेंटिंग में महारत हासिल थी। नौकरी मिल गई और सौ रुपए मासिक वेतन पर यह युवक—केदार शर्मा—इस थियेटर में पेंटर का काम पा गया।

केदार शर्मा तो कुछ और सपने लेकर कलकत्ता आया था। वह फिल्मों के लिए गीत, कहानी, संवाद आदि लिखना चाहता था किंतु काम मिला रंगों और कूची का। उसे पता था कि इसी नगर में दो पंजाबी नौजवान फिल्म लाइन में काम कर रहे हैं। एक जम्मू का कुंदनलाल सैगल है और दूसरा फ्रंटियर का पृथ्वीराज कपूर। ये दोनों एक-दो कमरों के फ्लैट में साथ-साथ रहते थे। हालात ऐसे बने कि न तो सैगल और न पृथ्वीराज इसकी मदद कर सके, जिनकी सिफारिश से यह बंदा फिल्मों में कोई अच्छा काम पाना चाहता था। अंतत: अभिनेत्री दुर्गा खोटे ने निर्देशक देवकीकुमार बोस से कहकर उसे फोटोग्राफर का काम दिलवा दिया। यहाँ भी स्थायी रूप से रहने की परिस्थिति नहीं आई, किंतु प्रसिद्ध फिल्म कंपनी न्यू थियेटर्स में उसे पोस्टर पेंटर की स्थायी नौकरी मिल गई। एक दिन अप्रत्याशित रूप से कंपनी के मालिक और संस्थापक बी.एन. सरकार से मुलाकात हो गई तो बड़ी आजिजी से उनसे कहा, ''साहब, मुझसे ब्रश ले लीजिए और कलम दे दीजिए। मैं तो यहाँ राइटर बनने आया था, भाग्य की विडंबना है कि एम.ए. होने पर भी रंगों से अंगुलियाँ पोत रहा हूँ।'' सरकार को एम.ए. पास नवयुवक को पोस्टर के काम में लगा देखकर हैरानी हुई, किंतु केदार शर्मा के भाग्य परिवर्तन की घड़ी भी आ गई। स्टूडियो में पहुँचते ही केदार शर्मा को बुलाया गया और प्रस्तावित फिल्म 'देवदास' के संवाद लिखने के लिए कहा गया।

ये संवाद लिखकर जब केदार शर्मा पुन: सरकार महाशय के पास पहुँचे तो इन पर उच्च स्तर पर बहस हुई। पाया गया कि इन संवादों में सीधी-सरल और आम बोलचाल की भाषा प्रयोग की गई है, जबकि अब तक हिंदी की फिल्में पारसी थियेटरों में प्रयुक्त भारी भरकम उर्दू-फारसी से लदी-फदी जबान के प्रभाव से ग्रस्त होती थीं। केदार शर्मा के लिखे संवादों को पसंद किया गया और उन्हें 'देवदास' के लेखक शरतचंद्र चटर्जी से मिलने का अवसर मिला। जब शरत की भेंट हिंदी 'देवदास' के संवाद लेखक तथा गीतकार ('बालम आए बसो मोरे मन में' तथा 'दुख के दिन अब बीतत नाहीं') केदार शर्मा से हुई तो उन्हें शरत बाबू का आशीर्वाद इन शब्दों में मिला, ''बेटा, तुम खुद बड़े साहित्यकार बनोगे।'' दुबारा जब 'देवदास' का निर्माण विमल राय ने किया तो संवाद लेखक राजेंद्र

सिंह बेदी थे, किंतु इन संवादों पर केदार शर्मा के लिखे संवादों का स्पष्ट प्रभाव था।

केदार शर्मा देवकी बोस को अपना उस्ताद मानते थे। आगे चलकर उन्होंने जिन महत्त्वपूर्ण फिल्मों का निर्माण-निर्देशन किया, उनमें प्रमुख थीं—'चित्रलेखा', 'अरमान', 'विषकन्या', 'मुमताज महल', 'दुनिया एक सराय', 'जोगन' और 'नीलकमल'। 'चित्रलेखा' (भगवतीचरण शर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास पर आधारित) फिल्म दो बार बनी। प्रथम बार जब केदार शर्मा ने कलकत्ता में बनाई तो इसकी नायिका बनीं मेहताब। केदार शर्मा के द्वारा फिल्म जगत् की अनेक प्रतिभाशाली अभिनेत्रियों को इस क्षेत्र में प्रवेश मिला। फिल्म 'औलाद' में उन्होंने ठिगने कद की रमोला को लिया, जबकि इससे पहले वह अपने छोटे कद के कारण उपेक्षित ही रही थी। मधुबाला और मीना कुमारी की प्रतिभा को उन्होंने ही सर्वप्रथम पहचाना और उन्हें अवसर दिया।

1941 में केदार शर्मा बंबई आ गए। पृथ्वीराज इससे पहले ही यहाँ आ चुके थे। उनकी सिफारिश से केदार शर्मा को रणजीत मूवीटोन में काम मिल गया। इस समय का एक रोचक प्रसंग उल्लेखनीय है। पृथ्वीराज कपूर का बड़ा बेटा राज अपने पिता की सिफारिश से केदार शर्मा का सहायक बन गया। शर्मा ने जब इस युवावस्था की ओर बढ़ते किशोर की आदतों पर गौर किया तो उन्होंने देखा कि राज को काम की अपेक्षा बाल सँवारने में अधिक दिलचस्पी है। बड़ी देर तक आईने के सामने खड़ा होकर बाल सँवारना उसका शौक है, हॉबी है, आदत है। केश-सज्जा के इस चक्कर में जब एक बार उसे अपने कर्तव्य-बोध का ध्यान नहीं रहा और उसने क्लैप देने में देर की तो केदार शर्मा ने उसे पास बुलाकर चट से एक जोरदार थप्पड़ उसके गाल पर जड़ दिया। शालीन पिता के तहजीब वाले बेटे ने शर्माजी से चट माफी माँग ली और बात आई-गई हो गई।

इस बीच केदार शर्मा ने राज के भविष्य को सँवारने का संकल्प ले लिया था। इसे क्रियान्वित किया उन्होंने राज कपूर को अपनी आनेवाली फिल्म 'नीलकमल' का हीरो बनाकर। जब काण्ट्रैक्ट का कागज दस्तखत करने के लिए राज के सामने रखा गया तो वह भावुक हो गया और अश्रु विगलित नेत्रों से अपने भविष्य निर्माता को संभ्रमपूर्वक देखता रहा। 'नीलकमल' बनी और राज कपूर की इस पहली फिल्म की हीरोइन थी मधुबाला, जिसका घर का नाम मुमताज था। मीना कुमारी से उसका परिचय तब से था जब 'महजबीं' नाम से उसकी पहचान होती थी। केदार शर्मा ने उसे चित्रलेखा की विख्यात नर्तकी का रोल दिया और उसके द्वारा एक विख्यात साहित्यिक कृति को रजत पट पर सफलतापूर्वक पेश किया। फिल्म लाइन की बड़ी हस्ती चंदूलाल शाह के अनुरोध पर केदार शर्मा ने दिलीप कुमार और नरगिस को लेकर फिल्म 'जोगन' उनतालीस दिनों के रेकार्ड समय में बनाई। गीता बाली (फिल्म 'बावरे नैन') को फिल्मों में लाने का श्रेय भी केदार शर्मा को है।

पृथ्वीराज कपूर तथा केदार शर्मा में अनन्य सौहार्द भाव था। दोनों ने एक साथ कलकत्ता में कठिनाइयाँ झेली थीं, उस समय जब वे इस क्षेत्र में नए थे और कोई स्थायी काम पाने के इच्छुक थे। उर्दू की प्रसिद्ध पत्रिका 'शमा' के जनवरी 1982 के अंक में अपने फिल्मी सफरनामे की कुछ यादों को ताजा करते हुए खुद केदार शर्मा ने लिखा था कि किस प्रकार कैंसर के रोग से ग्रस्त पृथ्वीराज कपूर बंबई में अस्पताल में उपचाराधीन थे, केदार शर्मा उनकी हालत जानने के लिए अस्पताल के कमरे में पहुँचे। अत्यंत गंभीर हालत होने पर भी पृथ्वीराज ने केदार शर्मा को समीप बुलाया और स्नेहालिंगन करते हुए जो शब्द कहे, वे मानो अंतिम विदाई के ही थे। थोड़े दिन बाद जब पृथ्वीराज इस नश्वर संसार से कूच कर गए तो केदार शर्मा को अपने इस जवानी के साथी तथा कलकत्ता में बिताए गए संघर्ष के दिनों के हमसफर के बिछुड़ जाने का असहनीय दु:ख तो था ही, इस सचाई का अहसास भी था कि इस नश्वर जिंदगी में मिलना और बिछड़ना ही एकमात्र सचाई है।

❑

37

फिल्म संगीत की प्रथम महिला निर्देशक—सरस्वती देवी

संगीत मानव मन का रंजन करनेवाली ऐसी ललित कला है, जिसमें स्त्री-पुरुष का कोई भेद स्वीकार्य नहीं है। संगीत तथा कलाओं की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती भी नारी ही है। हिंदी फिल्म संगीत की प्रथम महिला निर्देशक एक पारसी महिला थीं, जिनका घर का नाम तो खुर्शीद होमजी मिनोचा था, किंतु संगीत-जगत् में उनकी पहचान सरस्वती देवी के नाम से बनी। बंबई के एक सुशिक्षित और सुसंस्कृत पारसी परिवार में उनका जन्म 1914 में हुआ। संगीत से उनका लगाव बचपन से ही था। कालांतर में उन्होंने प्रसिद्ध संगीतज्ञ विष्णु नारायण भातखंडे से विधिवत् संगीत की शिक्षा ली और कुछ समय लखनऊ के मॉरिस कॉलेज में अध्यापन किया। 1934 में वे किसी संगीत सम्मेलन में भाग लेने बंबई आईं तो बॉम्बे टॉकीज के संस्थापक हिमांशु राय ने उन्हें अपनी संस्था में आकर संगीत-निर्देशन का भार स्वीकार करने के लिए कहा। मिस खुर्शीद मिनोचा ने आनाकानी करते हुए पहले तो यह कहा कि उनका अधिकार शास्त्रीय संगीत पर ही है और फिल्मी संगीत पर उनकी कोई पकड़ नहीं है, किंतु हिमांशु राय के अधिक जोर देने पर उन्होंने बॉम्बे टॉकीज में बननेवाली फिल्मों का संगीत तैयार करना स्वीकार कर लिया।

जब एक पारसी युवती ने फिल्म संसार में प्रवेश करने का निर्णय किया तो पारसी समाज में हलचल मच गई। पारसी भद्र वर्ग इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था कि अभद्र और गर्हित समझी जानेवाली रजत पट की दुनिया में उनकी कोई लड़की प्रवेश करे। मिस खुर्शीद ने समाज की आपत्ति की कोई परवाह नहीं की। हाँ, हिमांशु राय ने इतना अवश्य किया कि फिल्म जगत् में उन्हें सरस्वती देवी के नाम से प्रसिद्ध किया और इसी नाम से वे 1950 तक प्रभावपूर्ण संगीत देती रहीं। उनकी एक छोटी बहन मानेकजी भी चंद्रप्रभा के नाम से अभिनय के क्षेत्र में आई थीं। सरस्वती देवी द्वारा तैयार किया गया संगीत बॉम्बे टॉकीज की फिल्म 'जवानी की हवा' (1935) में पहली बार दिया गया। उन दिनों हिमांशु राय ने अपनी फिल्मों के निर्देशन का कार्य फ्रांज आस्टिन नामक एक जर्मन को सौंप रखा था। इस फिल्म की नायिका देविका रानी थीं तथा सरस्वती देवी की बहिन चंद्रप्रभा ने भी इसमें एक भूमिका की थी। इसके बाद प्रसिद्ध सामाजिक फिल्म 'अछूत कन्या' (1936) में उन्होंने संगीत दिया। फिल्म के नायक-नायिका अशोक कुमार-देविका रानी ने इसमें खुद गीत गाए थे। 'कित गए खेवनहार नैया डूबती' शीर्षक एक गीत खुद सरस्वती देवी ने गाया था। इसके बाद बॉम्बे टॉकीज की लगभग सभी फिल्मों में सरस्वती देवी ने संगीत दिया। इनके नाम हैं—'जन्मभूमि', 'ममता', 'जीवन नैया', 'इज्जत', 'जीवन प्रभात', 'प्रेम कहानी', 'सावित्री', 'भाभी', 'निर्मला', 'वचन', 'दुर्गा', 'कंगन', 'नवजीवन', 'आजाद' और 'बंधन'। यहाँ आकर बोलती फिल्मों का प्रथम दशक (1931-1940) समाप्त होता है।

उपर्युक्त फिल्मों में 'कंगन' और 'बंधन' के गीतों को जो लोकप्रियता और ख्याति मिली, वह अद्भुत थी, अपूर्व थी। 'कंगन' के लिए गीत कवि प्रदीप ने लिखे थे जो साहित्य जगत् के जाने-माने हस्ताक्षर थे। लीला चिटनिस और

अशोक कुमार की जोड़ी को इसी फिल्म से शोहरत हासिल हुई। लीला चिटनिस ने इस फिल्म में दो मधुर गीत गाए थे, 'हवा तुम धीरे बहो मेरे आते होंगे चितचोर' तथा 'सूनी पड़ी रे सितार'। 'बंधन' के गीतों ने लोकमानस में घर कर लिया। उन्हें अपार लोकप्रियता मिली और वे जन-जन के कंठ का हार बन गए। यह सब सरस्वती देवी के संगीत का ही कमाल था। इस फिल्म के मुख्य कलाकार लीला चिटनिस तथा दादामणि अशोक कुमार ही थे। 'चल चल रे नौजवान', 'अपने भइया को नाच नचाऊँगी', 'पिऊ पिऊ बोल पिऊ पिऊ बोल, प्राण पपीहे पिऊ पिऊ बोल', 'रुक न सको तो जाओ तुम जाओ, हम तो तुम्हें ना भूल सकेंगे तुम चाहे बिसराओ' जैसे मधुर तथा रससिक्त गीत सरस्वती देवी द्वारा ही सँजोए गए थे।

इसके बाद आया सवाक् फिल्मों का दूसरा दशक, जिसमें बॉम्बे टॉकीज की 1941 में रिलीज हुई फिल्म 'झूला' के संगीत ने प्रसिद्धि तथा लोकप्रियता के सभी मानदंड तोड़ दिए। यहाँ भी नायक-नायिका की भूमिका में लीला और अशोक की जोड़ी थी और निर्देशन ज्ञान मुखर्जी का था। आज कितने लोग हैं जो लीला चिटनिस और अशोक कुमार को एक सफल गायक के रूप में स्वीकार करेंगे, किंतु यह सरस्वती देवी की प्रतिभा का ही कमाल था कि 'झूला' के प्राय: सभी गीत हिट हुए। लीला चिटनिस ने जो गीत इसमें गाए, वे थे—'हिंडोले कैसे झूलूँ मेरा जिया डोले रे', 'मैं झूला कैसे झूलूँ' तथा 'झूले के संग झूलो झूलो मेरे मन'। अशोक ने जब गाया 'ना जाने किधर आज मेरी नाव चली रे' तो अशेष कंठों ने उसके स्वर में स्वर मिलाया। उधर प्रदीप ने गाया—'मेरे बिछुड़े हुए साथी तेरी याद सताए' तो रहमत बानो तथा अरुण कुमार के सम्मिलित स्वरों ने एक हास्य गीत को इस प्रकार मुखरित किया—'मैं तो दिल्ली से दुलहन लाया रे ओ बाबूजी।' 'झूला' तक आते-आते सरस्वती देवी का संगीत सफलता की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था।

किंतु इस मंजिल तक आते ही उनके फिल्मी सफर में एक मोड़ आया। 1940 में हिमांशु राय की मृत्यु के साथ-साथ बॉम्बे टॉकीज का स्वर्णिम काल भी अस्ताचल की ओर जाने लगा। राय महाशय ने सरस्वती देवी को अपने काम में पूरी आजादी दे रखी थी, किंतु उनके निधन के बाद यह संभव नहीं रहा। सरस्वती देवी ने अनुभव किया कि यहाँ उनका दम घुट रहा है। अत: उन्होंने बॉम्बे टॉकीज से इस्तीफा दे दिया और अन्यान्य फिल्म कंपनियों के लिए संगीत देने लगीं। 1941-1950 के दशक में उन्होंने जिन फिल्मों को अपने संगीत से सँवारा, वे थीं—'नया संसार', इसमें उनके सहायक थे रामचंद्र पाल। सोहराब मोदी के मिनर्वा मूवीटोन की कुछ फिल्मों में भी उनका संगीत आया। 'भक्त रैदास' (1943), 'प्रार्थना' (1943), 'पृथ्वी वल्लभ' (1943) में उनके सहायक रफीक गजनवी थे, जो अपने जमाने के जाने-माने संगीत मर्मज्ञ थे। 'तैलप की नगरी में गाना नहीं है' यह प्रसिद्ध युगलगीत मेनका, रफीक तथा साथियों ने गाया था। 'डॉ. कुमार' (1944) भी मिनर्वा की फिल्म थी, जिसमें जानी-मानी गायिका राजकुमारी ने अनेक गीत गाए थे। सरस्वती देवी ने जिन अन्य निर्माताओं की फिल्मों में संगीत दिया, उनमें उल्लेखनीय हैं—सेंट्रल स्टूडियोज की 'परख' (1944), मुरली मूवीटोन की बौद्ध कथानक पर आधारित 'आम्रपाली' (1945), जिसमें अमीर बाई कर्नाटकी तथा जी.एम. दुर्रानी ने अनेक गीत गाए थे। अत्रे पिक्चर्स की 'खानदानी' (1947) का संगीत भी उन्होंने तैयार किया। अब धीरे-धीरे उन्हें कम काम मिलने लगा। 1948 में लक्ष्मी प्रोडक्शन की 'नकली हीरा' फिल्म में उन्होंने संगीत दिया और प्रकाश पिक्चर्स की पौराणिक फिल्म 1949 में बनी 'उषा हरण' में उन्होंने लता से दो गीत गवाए। इसी कंपनी की 'बैचलर हस्बैंड' में संभवत: उन्होंने अंतिम बार संगीत दिया। इस प्रकार सरस्वती देवी का संगीत मात्र पंद्रह वर्षों की संक्षिप्त कालावधि में व्याप्त रहा। वे आजीवन अविवाहित रहीं। धन की उन्हें कभी लालसा नहीं थी, अत: वे संगीत को अपने जीवन की प्रथम और अंतिम साधना समझती रहीं।

1968 में एक बस दुर्घटना में उनका पैर टूट गया। 10 अगस्त, 1980 में 66 वर्ष की आयु में फिल्म संगीत की इस महीयसी महिला का निधन हो गया। फिल्मों में पार्श्वगायन का आरंभ करनेवालों में वे भी एक थीं। 'जवानी की हवा' में उन्होंने अपनी बहिन चंद्रप्रभा के यकायक अस्वस्थ हो जाने पर उनके बदले गाया। 'सूनी पड़ी रे सितार' गीत के मधुर बोल संगीत के प्रति समर्पित उस महिला की साधना का पुनः-पुनः स्मरण कराते हैं।

❑

38

राजस्थान के सुजानगढ़ ने खेमचंद प्रकाश जैसा संगीतकार दिया

यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि राजस्थान के सुजानगढ़ जैसे शहरनुमा कस्बे ने फिल्म जगत् को खेमचंद प्रकाश तथा जमाल सेन जैसे श्रेष्ठ संगीतकार दिए हैं। 'तानसेन', 'भँवरा', 'भरतरी', 'सिंदूर' तथा 'महल' जैसी लोकप्रिय फिल्मों में मधुर, कर्णप्रिय तथा जन-जन को विमुग्ध करनेवाला संगीत देनेवाले संगीतकार खेमचंद प्रकाश का जन्म 1907 में सुजानगढ़ के एक संपन्न ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे मशहूर गायक तथा अभिनेता कुंदनलाल सैगल से आयु में तीन वर्ष छोटे थे। सैगल की भाँति उन्होंने आयु भी मात्र तैंतालीस वर्ष की पाई और 13 अक्तूबर, 1950 को अधिक मदिरापान के कारण मौत को गले लगा बैठे। संगीत और नृत्य की शिक्षा उन्होंने किसी स्कूल या कॉलेज में नहीं पाई थी, किंतु इन कलाओं के प्रति अपनी लगन और साधना ने उन्हें उन ऊँचाइयों पर बैठा दिया, जहाँ तक पहुँचना आसान नहीं होता। पता चला है कि एक शोधार्थी ने खेमचंद प्रकाश की कला-साधना को अपने शोध का विषय बनाकर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। खेमचंद प्रकाश को बचपन से ही संगीत और नृत्य से लगाव था। कुछ बड़े होने पर वे समीप के एक गाँव में रहनेवाले एक गुरुजी से संगीत की विधिवत् शिक्षा लेने लगे।

सैगल की भाँति खेमचंद की फिल्म यात्रा बंबई से आरंभ न होकर कलकत्ता से हुई। न्यू थियेटर्स के बी.एन. सरकार ने उन्हें काम दिया और तिमिर बरन के साथ संगीत निर्देशन का काम सौंपा। कहते हैं कि प्रसिद्ध गायिका खुर्शीद उनके साथ थीं। कुछ समय बाद वे खुर्शीद के साथ बंबई आ गए। यहाँ रणजीत फिल्म कंपनी के स्वामी चंदूलाल शाह ने खेमचंद की सिफारिश पर खुर्शीद को नायिका की भूमिका में लेना स्वीकार कर लिया। 'होली' फिल्म खेमचंद की पहली फिल्म थी, जिसमें उसने खुर्शीद से जो गजल गवाई, वह भारत के कोने-कोने में पहुँच गई—'पहले जो मोहब्बत से इनकार किया होता।' इसे सुनकर आज भी पुराने लोगों के दिल धड़क जाते हैं। अब तक सैगल भी न्यू थियेटर्स छोड़कर बंबई आ गए थे। 'तानसेन' (1943) में खेमचंद प्रकाश, सैगल और खुर्शीद की त्रिमूर्ति ने जो लुभावना संगीत प्रस्तुत किया, वह आज 68 वर्ष बीत जाने पर भी उतना ही ताजा है। 'दीया जलाओ', 'रुमझुम रुमझुम चाल तिहारी', 'बाग लगा दूँ सजनी' जैसे गीत सैगल ने गाए और उसी की स्पर्धा में 'घटा घनघोर घोर', 'अब राजा भए मोरे बालम', 'बरसो रे काले बादल', 'मोरे बालापन के साथी' जैसे खुर्शीद के गीतों ने फिल्म संगीत की ऊँचाइयों को छुआ था।

सन् 1947 से 1950 का कालखंड खेमचंद प्रकाश की साधना का सर्वश्रेष्ठ समय था। किंतु इससे भी पहले 'भँवरा', 'भरतरी', 'शहंशाह बाबर' तथा 'धन्ना भगत' आदि फिल्मों में वे अपना लुभावना संगीत दे चुके थे। सुरेंद्र और अमीर बाई कर्नाटकी के युगल स्वरों में गाया गया 'भरतरी' का गीत 'भिक्षा दे दे मैया पिंगला' संसार की नश्वरता तथा वैराग्य के भावों को गुंफित कर प्रस्तुत करता है। 'चंदा देस पिया के जा' अमीरबाई का एक अन्य श्रेष्ठ गीत था। इसके बाद खेमचंद प्रकाश ने फिल्म 'सिंदूर' में अमीरबाई से जो गीत गवाए, वे आधी सदी से

अधिक पुराने हो जाने पर भी रस-सृष्टि तथा भावोद्रेक की वैसी ही क्षमता लिये हुए हैं—'ओ रूठे हुए भगवान् तुमको कैसे मनाऊँ', 'ओ दुनिया बनाने वाले क्या यही है दुनिया तेरी' तथा 'कोई रोके उसे और यह कह दे...अपनी निशानी लेता जा।' इन्हें संगीत-रसिकों द्वारा भुलाना कठिन है।

इस समय तक लता मंगेशकर फिल्मी संगीत में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुकी थीं। फिल्म 'जिद्दी' में लता से खेमचंद ने जो गीत गवाया, उसके बोल थे, 'चंदा रे जा रे जा रे' और विरह भावों को अभिव्यक्ति देनेवाले इस गीत ने अपार लोकप्रियता पाई। किशोरकुमार ने जब अपना पहला दर्द भरा गीत गाया—'मरने की दुआएँ क्या मागूँ जीने की तमन्ना कौन करे' तो सुननेवालों को लगा मानो सैगल की दर्द भरी आवाज पुन: सुनाई दे रही है। अंतत: संगीत से आद्यंत सजी फिल्म आई 'महल'। इसमें मानो खेमचंद प्रकाश ने लता तथा राजकुमारी को पारस्परिक स्पर्धा में खड़ा कर दिया। राजकुमारी ने गाया, 'घबरा के जो हम सर को टकराएँ' तो लता का स्वर निकला 'मुश्किल है बहुत मुश्किल चाहत को भुला देना'। 'आएगा...आएगा आने वाला' ने तो 'महल' के संगीत को चरम बिंदु पर ला खड़ा किया। शमशाद बेगम से उन्होंने 1949 में 'सावन आया' फिल्म में 'नहीं फरियाद करते हम तुम्हें बस याद करते हम' जैसा श्रृंगार रस में सराबोर गीत गवाया।

खेमचंद प्रकाश ने लगभग 50 फिल्मों में संगीत दिया। इनमें से अधिकांश रणजीत कंपनी की थीं। जीवन के अंतिम दिनों में वे बॉम्बे टॉकीज में आ गए थे। उनके संगीत पर राजस्थान के लोक संगीत का परोक्ष प्रभाव था।

सैगल, खुर्शीद, अमीरबाई तथा सुरेंद्र तो उनके पसंदीदा गायक थे ही, किशोर कुमार ('जगमग करता निकला चाँद पूनम का प्यारा'), खान मस्ताना ('पंछी पिछड़ा हुआ पुराना'), शंकर दास गुप्ता ('दुख से भरा हुआ यह दिल') तथा तलत महमूद से ('अरमान भरे दिल की लगन') जैसे मधुर गीत उन्होंने गवाए। कहते हैं कि खुर्शीद के पाकिस्तान चले जाने पर खेमचंद का दिल टूट गया। अपने गम को उन्होंने शराब की प्याली में डुबो दिया और अंतत: 13 अक्तूबर, 1950 को इस संसार से विदा ली।

❑

39

फिल्म संगीत के अद्‌भुत साधक—नौशाद

लगभग आधी सदी तक हिंदी फिल्मों में श्रुति-मधुर तथा हृदयस्पर्शी संगीत देनेवाले जन्नतनशीं नौशाद अली मूलत: कला और अदब के शहर लखनऊ के निवासी थे। संगीत के प्रति अविचलित निष्ठा तथा कलाजगत् को कुछ उत्कृष्ट देने की लालसा उन्हें फिल्म नगरी बंबई ले आई। जब उन्होंने फिल्मों में संगीत देने का निश्चय किया तो उन्हें शास्त्रीय संगीत का ज्ञान तथा लोक संगीत की असाधारण जानकारी आधारभूत खजाने के रूप में प्राप्त थी। संगीत से सजी उनकी पहली फिल्म 'माला' थी, किंतु उन्हें असाधारण ख्याति तथा लोकप्रियता मिली फिल्म 'रतन' के गानों से। इस फिल्म का निर्माण लाहौर के निवासी अभिनेता करण दीवान के भाई जैमिनी दीवान ने किया था। 'रतन' के गानों का यह आलम था कि इस मोहक संगीत के कारण इस फिल्म ने एक ही थियेटर में लगातार तीन बरस तक चलने का नया रिकॉर्ड बनाया।

दस गीतों से सजी इस फिल्म में पाँच गीत जोहराबाई अंबालावाली ने गाए थे। इनमें एक गीत जोहरा तथा करण दीवान के सम्मिलित स्वरों में था। 'सावन के बादलो उनसे ये जा कहो'—इन बोलों वाले इस गीत में प्रेमजन्य मादकता तथा वियोगजन्य अवसाद के स्वर एक साथ मुखरित हुए हैं। जोहरा के अन्य गीत थे—'रुमझुम बरसे बादरवा मस्त हवाएँ आईं', 'अँखियाँ मिला के जिया भरमा के', 'परदेसी बालम आ बादल आया' तथा 'आई दिवाली आई दिवाली'।

उसी युग की एक अन्य प्रख्यात गायिका अमीरबाई कर्नाटकी ने 'रतन' में जो दो गीत गाए, वे भी जन-जन के प्रिय बने। इनमें एक 'ओ जाने वाले बालमवा लौट के आ' कर्नाटकी तथा श्याम कुमार के सम्मिलित स्वरों में था, जबकि नायिका द्वारा संयोग के पश्चात् के वियोग को व्यक्त करनेवाले करुणासिक्त गीत 'मिल के बिछड़ गई अँखियाँ' को अमीरबाई की जगह नायिका की ननद की भूमिका में आई एक अल्पख्यात गायिका-अभिनेत्री मंजू ने गाया था, यहाँ इस अभिनेत्री-गायिका का उल्लेख आवश्यक है। उसने नायिका के प्रिय के समीप जाने की उत्सुकता को जिस विनोदपूर्ण व्यंजना में व्यक्त किया, उसे गीत में बोल दिए गए थे—'अँगड़ाई तेरी है बहाना, साफ कह दो हमें कि जाना जाना'। मंजू का ही दूसरा गीत था—'झूठे हैं सब सपने सुहाने झूठे हैं।'

'रतन' के बाद नौशाद को सैगल (कुंदनलाल) की फिल्म 'शाहजहाँ' में संगीत देने का एक और अलभ्य अवसर मिला। वर्षों से उनकी अभिलाषा सैगल द्वारा अभिनीत फिल्म में संगीत देने की थी। 'शाहजहाँ' सैगल की अंतिम ('परवाना') से पहली (last but one) फिल्म थी, जो 1946 में आई। नौशाद ने 'गम दिए मुस्तकिल', 'हम जीकर क्या करेंगे जब दिल ही टूट गया', 'चाह बरबाद करेगी हमें मालूम न था' जैसे हृदयस्पर्शी और हृदय-द्रावक गीतों की धुनें तैयार कीं। अपने एक संस्मरण में उन्होंने सैगल के गायन के बारे में एक तथ्य का उद्‌घाटन किया। उनके अनुसार सैगल के मन में यह धारणा बद्‌धमूल हो गई थी कि बिना शराब का एक जाम पिए वे अच्छा गा ही

नहीं सकते। किंतु नौशाद ने बिना पिए सैगल से जो गीत पंक्ति गवाई, वह उससे श्रेष्ठ थी, जिसे मदिरा का जाम पीकर सैगल ने गाया था। अंतत: सैगल का यह भ्रम टूट गया कि बिना पिए वे अच्छा गा नहीं सकते, किंतु तब तक शराब ने उनके तन को जर्जर कर दिया था और अब सँभल जाने पर भी बात बननेवाली नहीं थी। अगले ही बरस 18 जनवरी, 1947 को सैगल का निधन हो गया।

नौशाद ने हास्य अभिनेत्री उमा देवी (अपनी स्थूल काया के कारण हास्य अभिनेत्री बनी तथा टुनटुन के नाम से विख्यात) को फिल्म लाइन में गायिका के रूप में ब्रेक दिया। फिल्म 'दर्द' में उसके गाए प्रसिद्ध गीत 'अफसाना लिख रही हूँ दिले-बेकरार का' को आज भी श्रोता समाज में पसंद किया जाता है। यह दूसरी बात है कि बाद में उमा देवी हास्य अभिनेत्री बन गई। नौशाद को नूरजहाँ द्वारा अभिनीत फिल्म 'अनमोल घड़ी' के लोकप्रिय संगीत के कारण सदा याद किया जाएगा। उनके द्वारा इस फिल्म में दिए गए संगीत में जो लज्जत, मधुरता तथा आकर्षण था, वह काल की सीमा का अतिक्रमण कर आज कई दशकों के बाद भी उतना ही दिलकश तथा मोहक है। सुरेंद्र और नूरजहाँ का गाया युगल गीत 'आवाज दे कहाँ है, दुनिया मेरी जवाँ है' उर्दू के साप्ताहिक रेडियो गीत प्रोग्राम में शीर्षक के रूप में जब बजता है तो पुरानी पीढ़ी के श्रोताओं का मन-मयूर नर्तन करने लगता है। यों तो नौशाद द्वारा संगीतबद्ध किए गए गीतों की विवेचना पर्याप्त स्थान ले सकती है, किंतु समाहार रूप में इतना ही कहना पर्याप्त है कि 'आन', 'अंदाज', 'बैजू बावरा' आदि पचासों फिल्मों के गीत उनकी संगीत साधना की श्रेष्ठता के परिचायक हैं। भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' से अलंकृत किया और यथासमय वे दादा साहब फाल्के सम्मान से सम्मानित हुए।

❑

40

सी. रामचंद्र या रामचंद्र मनहर चितलकर

संगीतकार और गायक रामचंद्र मनहर चितलकर फिल्म जगत् में सी. रामचंद्र के नाम से पहचाने जाते हैं। फिल्मी गीतों को स्वर देनेवाले तथा यथावकाश खुद गानेवाले कलाकार सी. रामचंद्र अद्‌भुत प्रतिभा के धनी थे। उनका जन्म 12 जनवरी, 1918 को महाराष्ट्र के पुणतांबे नामक ग्राम में हुआ था। बचपन में ही वे लोकसंगीत तथा नाट्य संगीत की ओर आकृष्ट हुए, किंतु पढ़ने में उनकी विशेष रुचि नहीं थी। अध्ययन में अरुचि तथा संगीत की ओर विशेष झुकाव को देखकर उनके पिता ने उन्हें पूना के विनायक राव पटवर्धन तथा शंकर राव सप्रे के पास गायन का प्रशिक्षण लेने भेज दिया। वे अभिनेता बनना चाहते थे किंतु 'नागानंद' नामक मराठी फिल्म में काम करके भी जब उन्हें सफलता नहीं मिली तो वे बंबई आए और मिनर्वा मूवीटोन के संस्थापक सोहराब मोदी के पास इस कंपनी के संगीत विभाग से जुड़ गए। प्रारंभ में उन्होंने यहाँ हारमोनियम वादक के रूप में काम किया। यहाँ रहते हुए उन्हें गीतकार प्रदीप तथा अभिनेता मास्टर भगवान का सान्निध्य मिला। 1947 में वे स्वतंत्र संगीत निर्देशक बने। उनके संगीत से सजी पहली हिंदी फिल्म 'सुखी जीवन' थी, जिसे हास्य कलाकार मास्टर भगवान ने बनाया था।

सन् 1943 में निर्देशक जयंत देसाई ने उन्हें अपनी दो फिल्मों 'भक्तराज' तथा 'जवाब' के संगीत का दायित्व सौंपा, साथ ही उनका नाम रामचंद्र चितलकर से बदलकर सी. रामचंद्र कर दिया। फिल्म लाइन में तब से वे इसी नाम से पहचाने जाने लगे। 1946 में वे राय बहादुर चुन्नीलाल तथा शशधर मुखर्जी की कंपनी फिल्मिस्तान में संगीत-निर्देशक बनकर आए। अगले वर्ष 1947 में जब फिल्मिस्तान की 'शहनाई' परदे पर आई तो इसके संगीत ने सर्वत्र धूम मचा दी। इसमें उन्होंने सर्वप्रथम लता मंगेशकर की आवाज को स्थान दिया। 'शहनाई' के जो गाने लोकप्रिय हुए, वे थे—'जवानी की रेल चली जाए रे', शमशाद तथा अमीरबाई कर्नाटकी व साथियों की आवाज में 'बाजे बाजे शहनाई हमारे अँगना', और अमीर बाई का एक स्मरणीय मद भरा गीत 'मार कटारी मर जाना।' 'आना मेरी जान संडे के संडे' सी. रामचंद्र का अभिनव प्रयोग था। इसमें पुरुष स्वर यूरोपीय उच्चारण की परुषता लिये है, जबकि नारी स्वर में भारतीय नारी की कोमलता लक्षित होती है। 1948 में आई फिल्म 'खिड़की' का एक गीत महात्मा गांधी और खादी के उल्लेख के कारण जनसाधारण तक पहुँचा—'हो साँवरिया जो जाओ बजरिया तो लाओ चुनरिया खादी की, जय बोलो महात्मा गांधी की।' यह गीत गली-गली में गूँजा था।

सन् 1949 में आई उनकी फिल्म 'पतंगा' संगीत की दृष्टि से लोकप्रियता में अग्रणी रही। इसमें आए गीत 'मेरे पिया गए रंगून किया है वहाँ से टेलीफून' में पुरुष स्वर खुद चितलकर का था। 1950 से 1952 तक सी. रामचंद्र ने लगभग बीस फिल्मों में संगीत दिया। इनमें गाए गए 'महफिल में जल उठी शमा', 'वो हम से चुप हैं हम उनसे चुप हैं' (लता-चितलकर के युगल स्वर में), 'जब दिल को सताए गम' (लता-कोरस) तथा फिल्म 'समाधि' का नई तर्ज का गीत 'गोरे गोरे ओ बाँके छोरे' (लता और अमीरबाई का सम्मिलित स्वर) गीत विशेष चर्चित रहे। फिल्म

'अलबेला' के जिन गीतों ने धूम मचाई, उनमें 'शाम ढले खिड़की तले तुम सीटी बजाना छोड़ दो, तथा 'शोला जो भड़के' विशेष लोकप्रिय रहे। इनमें जो चुलबुलापन पाया जाता है, वह उस समय की युवा पीढ़ी के आकर्षण का केंद्र रहा। फिल्म 'अलबेला' में उनका एक गीत 'धीरे से आजा री अँखियन में निंदिया' वस्तुत: बच्चों का लोरी गीत था। इसके बारे में कहा जाता है कि इसकी धुन रामचंद्र ने कार ड्राइव करते समय उस समय बनाई थी जब वे गीत रेकार्डिंग के लिए दादर से अँधेरी स्थित स्टूडियो की ओर जा रहे थे। स्टूडियो तक पहुँचते-पहुँचते नियत समय में इस गाने की धुन तैयार हो गई। राग पीलू पर आधारित यह लोरी गीत लता के स्वर में अमर हो गया। इसकी पैरोडी में एक गीत बना 'धीरे से आना खटियन में'।

सन् 1953 में जब फिल्म 'परछाईं' प्रदर्शित हुई तो उसमें सी. रामचंद्र का तैयार किया गीत 'मोहब्बत ही न जो समझे' तलत महमूद के रेशम से महीन सुर में प्रस्तुत किया गया। इसी वर्ष फिल्मिस्तान की फिल्म 'अनारकली' प्रदर्शित हुई, जिसमें एक-से-एक बढ़कर श्रुति मधुर, भावपूर्ण गीत सी.आर. द्वारा दिए गए। उदाहरणार्थ, 'ये जिंदगी उसी की है' (लता-हेमंत कुमार का सम्मिलित स्वर), 'जाग दर्दे इश्क जाग', 'मोहब्बत ऐसी धड़कन है' तथा 'आजा अब तो आजा।' ये चारों गीत राजेंद्र कृष्ण, हसरत जयपुरी तथा शैलेंद्र ने लिखे थे। अगले वर्षों में सी.आर. ने अनेक लोकप्रिय रससिक्त गीतों को धुनें दीं, जो आज वर्षों बीत जाने पर भी जनता की जबान से नहीं उतरे हैं। यहाँ इनका नामोल्लेख (मुखड़ा) ही पर्याप्त है—कवि प्रदीप का लिखा तथा हेमंत कुमार का गाया 'गगन झनझना रहा' (फिल्म 'नास्तिक', 1954), 1955 में प्रदर्शित फिल्म आजाद के गीत 'राधा ना बोले ना बोले', 'जा री जा री ओ कारी बदरिया', एक युगल गीत 'अपलम चपलम' तथा लता और चितलकर की संयुक्त आवाज में 'कितना हसीं है मौसम'। 1955 में फिल्म 'यास्मीन' में तलत महमूद ने जो सदाबहार गीत गाया, वह भी चितलकर की रचना थी 'बेचैन नजर बेताब जिगर'। 1957 में आई फिल्म 'आशा' में किशोर की आवाज में लपक-झपक की शैली में एक गीत 'ईना मीना डीका' प्रस्तुत किया गया।

यहाँ एक बात ध्यान में रहे कि लता युग के पूर्व की जिन अनेक गायिकाओं का मार्गदर्शन सी.आर. ने किया तथा उनसे कालजयी गीत गवाए, उनमें अमीरबाई कर्नाटकी, शमशाद बेगम, ललिता देउस्कर तथा वीणापाणि मुखर्जी के नाम आज की पीढ़ी के स्मृति-पट से विस्मृत हो गए हैं। बाद में तो सी.आर. का संगीत प्राय: लतामय हो गया था। इस वरिष्ठ संगीतकार ने 5 जनवरी, 1982 को बंबई के किंग एडवर्ड मेमोरियल अस्पताल में अंतिम साँस ली। अपने समकालीन अनिल बिस्वास, नौशाद तथा शंकर जयकिशन के वे सदा प्रशंसाभाजन रहे।

❑

41

पं. भरत व्यास : साहित्य गुण-संपन्न गीतों के प्रणेता

फिल्मी गीतों के लेखकों में यह धारणा प्रचलित थी कि यहाँ वे ही गीत सफल होंगे, लोकप्रिय होंगे, जिनमें उर्दू की रवानी होगी तथा जो अपना शब्द-भंडार उर्दू-फारसी से ग्रहण करेंगे। पं. भरत व्यास ने संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग कर जो गीत लिखे, उनकी लोकप्रियता भी निरंतर सत्यापित होती रही। इससे इस धारणा का मिथ्यात्व सिद्‌ध हो गया कि फिल्मी शब्दावली का उर्दू प्रधान होना आवश्यक है।

फिल्म व्यवसाय को राजस्थान की देन कम नहीं है। महिपाल सदृश अभिनेता, खेमचंद प्रकाश तथा गुलाम मोहम्मद जैसे संगीतकार तथा भरत व्यास की भाँति उत्कृष्ट गीत लेखक राजस्थान की रत्नगर्भा धरती ने ही दिए हैं। फिल्मी गीतों में साहित्यिकता लाने तथा विविध रसों से युक्त भावनाप्रवण गीतों को लिखने का श्रेय चूरू (पुरानी बीकानेर रियासत का एक नगर) में जन्म लेनेवाले पं. भरत व्यास को है। नाट्‌य रचना, नाटकों में अभिनय तथा सरस शब्दावली में भावपूर्ण गीतों की रचना करनेवाले भरत व्यास का जन्म 17 सितंबर, 1917 को वैद्य शिवदत्त राय के यहाँ हुआ। पिता का वात्सल्य अधिक नहीं मिला, क्योंकि प्लेग की महामारी में वे काल कवलित हो गए।

बालक भरत का लालन-पालन पितामह घनश्यामदास व्यास ने किया। प्रसिद्‌ध फिल्म अभिनेता बी.एम. व्यास (ब्रजमोहन व्यास) भरत के छोटे भाई थे।

चूरू से मैट्रिक करने के बाद भरत व्यास ने बीकानेर के डूंगर कॉलेज से इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की और बी.कॉम. की पढ़ाई के लिए कलकत्ता चले गए। कलकत्ता निवास काल में उनमें काव्य रचना के प्रति रुचि उत्पन्न हुई और उस महानगर में आयोजित कवि सम्मेलनों में भाग लेने लगे। काव्य लेखन के साथ-साथ नाटक रचना करने लगे। उनके द्‌वारा लिखित नाटक 'रंगीला मारवाड़' कोलकाता की एल्फ्रेड थियेटर कंपनी द्‌वारा मंचित किया गया। इसका निर्देशन स्वयं व्यासजी ने किया था। जब नाटक लिखने की प्रवृत्ति बढ़ी तो भरत व्यास की कलम से 'रामू चनणा', 'ढोला मरवण' जैसे राजस्थानी लोक-कथाओं पर आधारित नाटक लिखे गए, जो मध्यकालीन प्रेम कथाओं पर आधारित थे। कुछ काल बाद भरत व्यास फिल्म नगरी बंबई में आ गए। यहाँ के मारवाड़ी समाज ने उनकी कला प्रतिभा को पहचाना और वे इस व्यवसाय प्रधान नगरी में राजस्थानी काव्य तथा रंगमंच के ध्वज वाहक बन गए।

शीघ्र ही वे फिल्मों में गीत लिखने लगे। प्रसिद्‌ध निर्माता ताराचंद बडजात्या ने उन्हें अपनी फिल्म 'चंद्रलेखा' के गीत लिखने के लिए आमंत्रित किया। इन गीतों ने उनके नाम को गीत संसार में सुस्थापित कर दिया। अब वे विभिन्न निर्माता-निर्देशकों के अनुरोध पर गीत लिखने लगे। इनमें वी. शांताराम, विक्रम भट्‌ट, विमल राय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जिन प्रमुख फिल्मों के गीत भरतजी द्‌वारा लिखे गए, उनमें कुछ नाम हैं—'मन की जीत',

'परिणीता', 'दो आँखें बारह हाथ', 'तूफान और दीया', 'गूँज उठी शहनाई', 'संत ज्ञानेश्वर', 'संपूर्ण रामायण', 'नवरंग', 'रानी रूपमती', 'सारंगा', 'प्यार की प्यास' आदि। 'दो आँखें बारह हाथ' के लिए उन्होंने ईश वंदना का जो गीत 'ए मालिक तेरे बंदे हम' लिखा, उसकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि कितनी ही शिक्षण संस्थाओं में यह छात्रों की दैनिक प्रार्थना के रूप में गाया जाता है।

भरत व्यास न केवल गीतकार ही थे, उन्होंने पटकथा-लेखन, संवाद-लेखन, अभिनय तथा निर्देशन जैसे कार्य भी सफलतापूर्वक किए। 'रंगीला राजस्थान' फिल्म के निर्देशक वे ही थे तथा 'स्कूल गर्ल' फिल्म का निर्देशन भी उन्होंने किया था। राजस्थान के प्रसिद्ध कथानक ढोला मारू पर आधारित फिल्म की पटकथा तथा संवाद उन्होंने ही लिखे। इस प्रकार उनकी रचनात्मक प्रतिभा विविध क्षेत्रों में प्रस्फुटित हुई थी।

भरत व्यास द्वारा लिखे गए गीत प्रचुर संख्या में हैं। इनके भाव पक्ष तथा कला पक्ष का विवेचन पर्याप्त स्थान चाहता है तथापि यह लिखना उपयुक्त होगा कि उनके गीतों में भक्तियुक्त आध्यात्मिकता, राष्ट्रीयता तथा श्रृंगार की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है। धार्मिक भावों को जगानेवाले, नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा देनेवाले उनके कुछ गीत हैं—'ऐ मालिक तेरे बंदे हम' ('दो आँखें बारह हाथ'), 'जोत से जोत जगाते चलो' ('संत ज्ञानेश्वर'), 'निर्बल से लड़ाई बलवान की' ('तूफान और दीया') आदि। राष्ट्रीय भावों से परिपूर्ण उनके गीत 'जय चित्तौड़', 'वीर दुर्गादास' तथा 'बूँद जो बन गई मोती' जैसी फिल्मों में आए। 'ओ पवन वेग से उड़ने वाले घोड़े', 'सुन ले बापू ये पैगाम', 'बढ़े चलो सिंह से दहाड़ते' आदि गीत वीर भावों के द्योतक हैं।

प्राय: फिल्मी गीतों में श्रृंगार भावापन्न, नर-नारी के प्रेम-प्रसंगों से युक्त गीतों की प्रधानता रहती है। यदा-कदा ये गीत मर्यादा का अतिक्रमण करते हैं और उनमें ग्राम्य दोष आ जाता है। भरत व्यास के श्रृंगार प्रधान गीत इसके अपवाद हैं। इनमें व्यक्त रतिभाव विविध लक्षी होने के साथ-साथ मानव में विद्यमान प्रेम की सूक्ष्म अनुभूतियों के परिचायक बनकर आए हैं। इन गीतों के शीर्षक देना ही पर्याप्त है—'तुम गगन के चंद्रमा हो, मैं धरा की धूल हूँ' ('सती सावित्री'), 'तेरे सुर और मेरे गीत' ('गूँज उठी शहनाई'), 'नैन का चैन चुराकर ले गई' (चंद्रमुखी), 'आ लौट के आजा मेरे मीत', 'नैना हैं जादू भरे', 'कुहु-कुहु बोले कोयलिया' आदि। कहना न होगा कि इन गीतों में जिस भाषा और शब्दावली का प्रयोग हुआ है, वह साहित्यिक गुणों से परिपूर्ण विशुद्ध, प्रांजल तथा भावों की अभिव्यक्ति में सर्वथा सक्षम है। इस समर्थ गीत प्रणेता का निधन 4 जुलाई, 1983 को 66 वर्ष की आयु में हो गया।

❑

42

कला, संस्कृति तथा साहित्य को समर्पित—न्यू थियेटर्स

जब तक अच्छी, शिक्षाप्रद तथा कलात्मक सवाक् फिल्में परदे पर नहीं आईं तब तक रजत पट की इस दुनिया के प्रति भद्र समाज का दृष्टिकोण सकारात्मक नहीं था। सिनेमा-संसार के पात्रों तथा फिल्मों के दर्शकों को लोग कुछ अन्य प्रकार की भावना से देखते थे। ऐसे लोगों की सोच को बदलने का काम किया कलकत्ता के न्यू थियेटर्स ने, जिसने अपने स्वल्प जीवनकाल में उच्च कोटि की कलात्मक फिल्में बनाकर यह सिद्ध कर दिया कि साहित्य, समाज और संस्कृति को प्रभावित करने का कार्य इन फिल्मों के द्वारा भी किया जा सकता है। न्यू थियेटर्स के संस्थापक बी.एन. सरकार (बीरेंद्रनाथ सरकार) बंगाल के एडवोकेट जनरल एन.एन. सरकार के पुत्र थे। उनका जन्म 5 जुलाई, 1901 को बिहार के देवघर नगर में हुआ था। वे इंजीनियरिंग की डिग्री लेने इंग्लैंड गए किंतु वहाँ रहकर उन्होंने फिल्म-निर्माण के सभी पहलुओं का अध्ययन किया और स्वदेश लौटकर 10 फरवरी, 1931 को न्यू थियेटर्स कंपनी की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य सार्थक तथा सोद्देश्य फिल्मों का निर्माण करना था, जो दर्शकों का रंजन करने के साथ-साथ उन्हें उच्च आदर्शों की ओर प्रेरित भी करें।

न्यू थियेटर्स की पहली फिल्म शरतचंद्र के उपन्यास 'देना पावना' पर आधारित थी, जिसका निर्देशन प्रेमांकुर अतार्थी ने किया था। यह फिल्म बँगला में बनी थी। 1932 में न्यू थियेटर्स ने पहली हिंदी फिल्म 'मोहब्बत के आँसू' बनाई, जिसमें नायक की भूमिका प्रसिद्ध गायक कुंदनलाल सैगल ने की। सैगल की भी यह पहली फिल्म थी।

इसी वर्ष सैगल को लेकर एक अन्य फिल्म 'सुबह का सितारा' बनाई गई, जो सामान्य स्तर की थी। 1932 में बनी तीसरी फिल्म में पुन: सैगल दिखाई पड़े, जिसका नाम था 'जिंदा लाश'। स्पष्ट है कि न्यू थियेटर्स की ये आरंभिक फिल्में दर्शकों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं छोड़ सकीं। वर्ष 1933 का आरंभ न्यू थियेटर्स ने एक धार्मिक फिल्म 'पूरन भगत' से किया, जिसमें कृष्णचंद्र डे तथा उमा शशि के गीतों ने दर्शकों को प्रभावित किया। इसके बाद 'राजरानी मीरा' बनी, जिसमें पृथ्वीराज कपूर तथा दुर्गा खोटे जैसे सशक्त कलाकार थे। 'यहूदी की लड़की' तथा 'कारवाने-हयात' में सैगल के गीतों ने दर्शकों को मंत्रमुग्ध किया।

1934 में न्यू थियेटर्स ने बंगाल के वैष्णव भक्त चंडीदास को लेकर जो फिल्म बनाई, उसमें सैगल तथा उमा शशि के साथ पहाड़ी सान्याल जैसा समर्थ कलाकार भी था। दर्शकों ने इस फिल्म का अपूर्व स्वागत किया, जिससे न्यू थियेटर्स की ख्याति को चार चाँद लग गए। देखा जाए तो न्यू थियेटर्स की आगे आनेवाली सफलताओं में जहाँ उसके संस्थापक सरकार महाशय की प्रेरणा एवं पुरुषार्थ काम कर रहे थे, वहीं इस संस्था के निर्देशकों, गायकों, अभिनेताओं तथा संगीतज्ञों का सहयोग एवं उनकी टीम के रूप में कार्य करने की भावना भी प्रमुख कारण रहे। ऐसे लोगों में देवकी कुमार बोस तथा प्रमथेश चंद्र बरुआ जैसे निर्देशक, रायचंद बोराल, तिमिर बरन तथा पंकज मलिक

जैसे संगीत निर्देशक और के.एल. सैगल, के.सी. डे, उमा शशि, पहाड़ी सान्याल, कानन बाला, भारती देवी तथा पृथ्वीराज जैसे कुशल कलाकारों का नाम लिया जा सकता है।

1935 का वर्ष न्यू थियेटर्स के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ। इस साल शरतचंद्र की प्रसिद्ध दु:खांतिका (Tragedy) 'देवदास' को हिंदी तथा बँगला दोनों भाषाओं में फिल्माया गया। 'देवदास' की ख्याति सैगल तथा जमुना के प्रशंसनीय अभिनय तथा नायक की विरहानुभूति को व्यक्त करनेवाले हृदयद्रावक संगीत के कारण हुई। 'देवदास' का निर्माण उसकी कथा के विधाता, शरत बाबू के जीवन काल में ही हुआ था। प्रथम तो वे इस बात को लेकर आश्वस्त नहीं थे कि कोई गैर-बंगाली कलाकार महान् भावुक देवदास के किरदार का सम्यक् निर्वाह कर सकता है, किंतु जब वे खुद न्यू थियेटर्स के स्टूडियो में आए और कुंदनलाल सैगल को प्रत्यक्ष देखा (साथ ही उसकी कला को भी पहचाना) तो उनकी आशंका समाप्त हो गई। 1935 में बनी फिल्म 'धूप-छाँव' में भी सैगल के गायन की सराहना हुई। 1936 में शरत के उपन्यास 'गृहदाह' को 'मंजिल' शीर्षक देकर न्यू थियेटर्स ने फिल्माया। इसमें पृथ्वीराज, के.सी. डे तथा प्रमथेश बरुआ के अतिरिक्त जमुना तथा मलिना देवी जैसे सशक्त नारी पात्र थे।

अगले वर्ष न्यू थियेटर्स ने मिथिला के प्रसिद्ध वैष्णवभक्त कवि विद्यापति को लेकर फिल्म बनाई। इसी वर्ष फिल्म 'प्रेसिडेंट' बनी, जिसमें सैगल ने संगील की अद्‌भुत अदाकारी दिखाई। 'मुक्ति' नामक फिल्म में बरुआ, कानन तथा पंकज मलिक की अभिनय कला को सराहा गया। 1938 में न्यू थियेटर्स ने एक संगीत प्रधान फिल्म 'स्ट्रीट सिंगर' का निर्माण किया। इसमें सैगल तथा कानन बाला ने कुछ मधुर गीत गाए थे। यही वह फिल्म थी, जिसमें सैगल का वह दार्शनिक गीत 'बाबुल मोरा नैहर छूटो जाए' सुनाई दिया, जो जीवन और मृत्यु की मीमांसा करने के साथ-साथ जीवन के अवसान के क्षणों की करुणा एवं विषादपूर्ण अभिव्यक्ति है।

सन् 1939 में इस संस्था ने शरत के लघु उपन्यास 'बड़ी दीदी' तथा बंकिम के रोमांचक उपन्यास 'कपाल कुंडला' को लेकर फिल्में बनाईं। 'कपाल कुंडला' में पंकज मलिक ने 'पिया मिलन को जाना' जैसा मर्मस्पर्शी तथा प्रणयोद्रेक करनेवाला गीत गाकर प्रियतमा के साथ अभिसार को तत्पर प्रेमी नायक की अनुभूति को वाणी दी। फिल्म 'जवानी की रीत' कानन के गीतों के कारण लोकप्रिय हुई तो फिल्म 'दुश्मन' में सैगल के गायन का लाजवाब असर रहा। इसी वर्ष यूरोप में दूसरे महायुद्ध ने विकराल स्वरूप दिखाया, किंतु पूर्वी भारत और बंगाल युद्ध की विभीषिका से अभी दूर थे। इसलिए न्यू थियेटर्स की कला साधना भी निर्बाध चलती रही। 1940 में इस संस्था ने 'हारजीत', 'पुजारिन,' 'आँधी', 'नर्तकी' तथा 'जिंदगी' नामवाली फिल्में बनाईं। 'नर्तकी' में पंकज मलिक तथा 'जिंदगी' में सैगल का गायन प्रभावी रहा। 1941 में बनीं 'लगन', 'डॉक्टर' तथा 'माई सिस्टर' तीनों फिल्में सफलता की कसौटी पर खरी उतरीं। 'डॉक्टर' में पंकज मलिक द्‌वारा गाए गए गीत 'चले पवन की चाल जग में' ने एक स्वस्थ तथा गतिशील जीवन-दर्शन को व्यक्त किया तो 'माई सिस्टर' में गाए गए सैगल के गीत 'दो नैना मतवारे तिहारे हम पर जुलम करें' ने नायिका के मादक नेत्रों की कारगुजारी को दर्शाया।

1943 में जब विश्वयुद्ध अपने यौवन पर था और भारत के स्वाधीनता सेनानी 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' के नारे से दिग्दिगंत को गुँजा रहे थे, न्यू थियेटर्स ने फिल्म 'वापस' बनाई और इसमें भारती देवी नामक एक नई अदाकारा को नायिका की भूमिका में उतारा। इसी साल शरत के उपन्यास 'काशीनाथ' पर फिल्म बनी। 1945 के मध्य तक महायुद्ध समाप्त हो गया और विश्व के राजनैतिक क्षितिज पर परिवर्तन के नए दृश्य नजर आने लगे। इन परिवर्तित परिस्थितियों में न्यू थियेटर्स ने 'हमराही' फिल्म बनाई और बिमल राय को इसके निर्देशन का काम सौंपा, जो अब तक यहाँ कैमरामैन का काम सँभाल रहे थे। 'हमराही' ने उन्हें निर्देशक के रूप में अच्छी प्रतिष्ठा दिलाई। बाद में

जब वे बंबई आकर बिमल राय प्रोडक्शन के नाम से फिल्म निर्माता बने तो अपनी प्रतिभा के जौहर दिखाने का उन्हें अच्छा अवसर मिला। कलकत्ते में रहते हुए उन्होंने जिस फिल्म का आखिरी बार निर्देशन किया, वह थी 'पहला आदमी'। इससे पहले वर्ष 1949 में न्यू थियेटर्स शरत की लंबी कहानी 'रामेर सुमति' के आधार पर बाल मनोविज्ञान से जुड़ी, फिल्म 'छोटा भाई' का निर्माण कर चुका था।

अब तक फिल्म निर्माण के लिए बंबई महानगर को सर्वाधिक उपयुक्त माना जा चुका था। लाहौर के पाकिस्तान में चले जाने के कारण कुछ अच्छे कलाकारों ने जहाँ वहीं रहने का निश्चय किया, वहाँ अन्य कलाकार बंबई आ गए और काम तलाशने लगे। न्यू थियेटर्स को प्राणशक्ति देनेवाले सैगल, पृथ्वीराज कपूर, बिमल राय आदि ने भी बंबई का रुख किया। इस स्थिति में न्यू थियेटर्स के दो दशकों की उपलब्धियों के संसार का सिमट जाना स्वाभाविक था। 1952 में 'यात्रिक', 1953 में 'छोटी माँ' (शरत के उपन्यास 'बिंदो का लल्ला') तथा 1954 में 'बकुल' का निर्माण कर सरकार महाशय की साकार कल्पना न्यू थियेटर्स का मनभावन कला संसार इतिहास का अंश बन गया। न्यू थियेटर्स की कुछ गणनीय विशेषताओं को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है। इस संस्थान ने जहाँ उच्च कोटि की सोद्देश्य, कलापूर्ण हिंदी फिल्में बनाईं, वहाँ बँगला में भी उच्च स्तर की सांस्कृतिक तत्त्वों से भरपूर कृतियों का निर्माण किया। एक ही कथा पर हिंदी तथा बँगला दोनों भाषाओं में फिल्में बनीं और दोनों भाषाओं के दर्शकों द्वारा सराही गईं। ऐसी फिल्में थीं 'चंडीदास', 'देवदास', 'विद्यापति', 'मीराबाई', 'मुक्ति', 'डॉक्टर' तथा 'रामेर सुमति' (छोटा भाई)। महाकवि रवि ठाकुर द्वारा स्थापित शांति निकेतन की सहायतार्थ 'नटीर पूजा' नामक उनके एक नाटक का आधार लेकर एक फिल्म बनाई गई। इसकी शूटिंग को देखने के लिए स्वयं गुरुदेव स्टूडियो में पधारे थे। सुभाष चंद्र बोस की उपस्थिति में इस फिल्म को सर्वप्रथम दर्शकों को दिखाया गया। न्यू थियेटर्स की सफलता का एक राज यह भी था कि उसे आरंभ से ही निर्देशन, संगीत, अभिनय तथा निर्माण तकनीक में माहिर ऐसी हस्तियों का सहयोग मिला, जो अपने-अपने क्षेत्रों में विशिष्टता रखती थीं। निर्देशकों में प्रमथेश बरुआ, देवकीकुमार बोस, नितिन बोस तथा बिमल राय; संगीत निर्देशकों में रायचंद बोराल, पंकज मलिक, तिमिर बरन तथा कमल दास गुप्ता; गायकों में सैगल, के.सी. डे, पहाड़ी सान्याल तथा कानन; अभिनेताओं में पृथ्वीराज कपूर, असित बरन, जमुना, लीला देसाई, मलिना देवी, भारती देवी, दुर्गा खोटे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस विख्यात फिल्म निर्मात्री संस्था के यशस्वी संस्थापक बी.एन. सरकार का 28 नवंबर, 1981 को अस्सी वर्ष की आयु में निधन हुआ। भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण अलंकरण से सम्मानित किया तथा 1971 में दादा साहब फाल्के पुरस्कार प्रदान किया। न्यू थियेटर्स के संस्थापक के लिए यह सम्मान सर्वथा उचित ही था।

❑

43

बॉम्बे टॉकीज : मनोरंजन के साथ सोद्देश्यता

स्वस्थ मनोरंजन के साथ सामाजिक सरोकारों को लक्ष्य में रखकर स्वस्थ, रोचक तथा शिक्षाप्रद फिल्मों का निर्माण करना बॉम्बे टॉकीज का लक्ष्य था। हिमांशु राय एक समृद्ध बंगाली परिवार के बेटे थे। लंदन में उनकी भेंट निरंजन पाल (विपिनचंद्र पाल के पुत्र) नामक एक सज्जन से हुई। इसके बाद दोनों ने मिलकर एक जर्मन फिल्म कंपनी के सहयोग से 'लाइट ऑफ एशिया' फिल्म बनाई, जो महात्मा बुद्ध के जीवन पर आधारित थी। लंदन में राय की मुलाकात एक बंगाली भद्र महिला देविका रानी से भी हुई, जो फैशन डिजाइनिंग के व्यावसायिक लक्ष्य को रखकर उन दिनों लंदन आई हुई थीं। दोनों की रुचियाँ समान थीं, क्योंकि हिमांशु राय तथा देविका रानी फिल्मों में दिलचस्पी रखते थे। दोनों ने मिलकर एक द्विभाषी फिल्म 'कर्म' बनाई, जिसका प्रथम प्रदर्शन 27 जनवरी, 1934 को बंबई में हुआ। इससे पहले देविका रानी तथा हिमांशु राय दांपत्य बंधन में बँध गए थे। अब दोनों ने मिलकर एक फिल्म निर्माण संस्था स्थापित करने का निश्चय किया। इसके लिए शेयरों के द्वारा 25 लाख रुपए की पूँजी एकत्र की गई और बॉम्बे टॉकीज की विधिवत् स्थापना हो गई। इसके संचालक मंडल में अनेक उच्च प्रतिष्ठित वर्ग के लोग थे। इनमें एक पारसी सज्जन एफ.ई. दिनशा थे, जिन्होंने स्टूडियो बनाने के लिए अपनी भूमि उपलब्ध कराई थी। मलाड़ में आधुनिकतम सुविधाओं वाले स्टूडियो का निर्माण हुआ, जिसमें साउंड तथा ईको प्रूफ मंच, साज-सज्जा कक्ष (Make up Room), उच्च कोटि के कैमरे तथा ध्वनि रिकार्डिंग के नवीनतम उपकरणों को फिट किया गया था। 1935 में जब टॉकीज ने विधिवत् कार्य आरंभ किया तब वहाँ 400 कर्मचारी कार्यरत थे।

बॉम्बे टॉकीज द्वारा बनाई गई पहली फिल्म 'जवानी की हवा' 1935 में रिलीज हुई। अगले वर्ष 'जीवन-नैया', 'अछूत कन्या' तथा 'जन्मभूमि' फिल्में बनीं। अस्पृश्यता की घिनौनी सामाजिक कुरीति को विषय बनाकर जिस फिल्म 'अछूत कन्या' का निर्माण हुआ, उसमें नायक की भूमिका में एक बंगाली युवक को जबरन उतारना पड़ा, जो इस स्टूडियो की प्रयोगशाला में एक सहायक था। आगे चलकर अशोक कुमार के नाम से फिल्म संसार में अद्वितीय ख्याति अर्जित करनेवाले उस युवक की हैरानी और परेशानी का कोई पार नहीं रहा, जब उसे बताया गया कि बॉम्बे टॉकीज की स्वामिनी देविका रानी से उसे प्रेम का अभिनय करना है, उसे फूलों का हार पहनाना है तथा उसके साथ मिलकर प्रेमगीत भी गाना है। अंतत: खुद हिमांशु राय महाशय द्वारा हिम्मत दिलाने पर उसने वह भूमिका कर भी ली। देविका रानी और अशोक कुमार की जो जोड़ी 'अछूत कन्या' में बनी, वह आगे भी अनेक फिल्मों में यथावत् रही। बॉम्बे टॉकीज में संगीत-निर्देशन का कार्य एक पारसी महिला को सौंपा गया, जिसे सरस्वती देवी का नाम भी हिमांशु राय ने ही दिया था।

19 मई, 1940 को अड़तालीस वर्ष की आयु में हिमांशु राय की मृत्यु हो गई। इसके साथ ही बॉम्बे टॉकीज के

इतिहास का पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ।

अब संचालक मंडल ने संस्था के सर्वाधिकार देविका रानी को दे दिए और राय बहादुर चुन्नीलाल को प्रबंधक बनाया। शशधर मुखर्जी को निर्माण कार्य सौंपा गया तथा ज्ञान मुखर्जी कहानी लेखन का काम देखने लगे। बॉम्बे टॉकीज ने 1940 में 'पुनर्मिलन' फिल्म बनाई और अगले वर्ष बनी फिल्म 'झूला' ने अपार प्रशंसा पाई। 1943 तक आते-आते देविका रानी ने अभिनय से अवकाश ले लिया। प्रबंधक पद पर कार्यरत सेठ चुन्नीलाल से भी अनेक बातों को लेकर उनके मतभेद हो गए। परिणामस्वरूप बॉम्बे टॉकीज में जो अफरातफरी मची, उसके कारण अशोककुमार, ज्ञान मुखर्जी, शशधर मुखर्जी, गीतकार प्रदीप तथा सावक वाचा ने इस संस्था से अपना संबंध तोड़ लिया और फिल्मिस्तान नाम से एक अलग कंपनी खड़ी कर ली। इन जाने-माने सहयोगी कलाकारों के अलग हो जाने पर देविका रानी की कठिनाइयाँ बढ़ीं। 1945 में देविका रानी ने रूसी चित्रकार निकोलस रोरिक से विवाह कर लिया और स्टूडियो का काम अमिय चक्रवर्ती को सौंप दिया। अमिय चक्रवर्ती का काम का तरीका स्वेच्छाचारिता का निकृष्ट नमूना था। अत: देविका रानी से उनका निभना कठिन हो गया। चक्रवर्ती ने इस कंपनी में रहे अपने शेयर फेमस स्टूडियो के हकीम शिराज अली को बेच दिए। जब 1947 में हकीम साहब पाकिस्तान चले गए तो बॉम्बे टॉकीज पर रुई के एक व्यापारी सेकसरिया का अधिकार हो गया। उन्होंने इस संस्था का प्रबंध हितेन चौधरी के सुपुर्द कर दिया। चौधरी महाशय परिश्रमी तथा क्षमतावान् थे। उनके प्रयत्नों से सावक वाचा तथा अशोककुमार पुन: बॉम्बे टॉकीज में आ गए। इनके सहयोग से बॉम्बे टॉकीज ने 'मिलन', 'मजबूर' और 'जिद्दी' जैसी सफल फिल्में बनाईं। 1949 में बनी फिल्म 'महल' में अशोक कुमार तथा मधुबाला का काम खूब सराहा गया। इस फिल्म की सफलता का राज था मधुर संगीत तथा कमाल अमरोही लिखित रहस्य-रोमांच से भरी कहानी। 1950 में बनी फिल्म 'संग्राम' में अशोक कुमार तथा नलिनी जयवंत के कुशल अभिनय ने जहाँ इस फिल्म को शोहरत दिलाई, वहाँ बॉम्बे टॉकीज की शान को भी बरकरार रखा।

पचास के दशक के आते-आते बॉम्बे टॉकीज की व्यवस्था फिर डाँवाँडोल हो गई। 1953 में सेठ तोलाराम जालान ने बॉम्बे टॉकीज तथा फिल्मिस्तान दोनों को खरीद लिया और इस प्रकार फिल्मी इतिहास के एक ज्वलंत अध्याय की इतिश्री हो गई। देविका रानी अब तक पूरी तरह फिल्मों से हट चुकी थीं, किंतु 1969 में भारत सरकार ने भारत में फिल्मों के निर्माण के अग्रणी दादा साहब फाल्के की स्मृति में जब पुरस्कार देना आरंभ किया तो रजत पट की सम्राज्ञी, अपूर्व सौंदयशालिनी देविका रानी को सर्वप्रथम इस पुरस्कार से पुरस्कृत किया। यह मानो बॉम्बे टॉकीज का ही सम्मान था, क्योंकि वर्षों तक देविका रानी तथा बॉम्बे टॉकीज एक मन, एक प्राण रहे थे।

❑

44

रजत पट पर उतारा गया संस्कृत साहित्य

फिल्म निर्माण एक ऐसी कलात्मक प्रस्तुति है, जिसमें काव्य, साहित्य, संगीत, नृत्य तथा अभिनय आदि विभिन्न ललित कलाएँ समन्वित रूप में उपस्थित रहती हैं। एक सफल फिल्म में इन सभी कलाओं की सफल प्रस्तुति रहती है। नाट्य या अभिनय तो फिल्मों का प्राण ही है। मनुष्य की किसी अवस्था विशेष के अनुकरण को ही नाट्य कहा गया है (धनंजय कृत 'दशरूपक') तथा इस नाट्य में वस्तु (कथा), नेता (पात्र) तथा रस (शृंगारादि) मौलिक तत्त्वों के रूप में उपस्थित रहते हैं। फिल्मों का आधार भी उसकी कहानी के पात्र तथा उसकी रसात्मक अभिव्यक्ति ही है। मानव जीवन बहुरंगी है और उसमें घटित घटनाएँ तथा चित्र-विचित्र प्रसंग ही फिल्मों की कहानी बनते हैं। इस कहानी में जितनी रोचकता, सोद्देश्यता तथा दर्शक को रसमुग्ध करने की क्षमता होगी, उसके आधार पर बनी फिल्म भी उतनी ही सफल मानी जाएगी।

फिल्म निर्माताओं को ऐसी ही कथा की तलाश रहती है, जो दर्शकों का भरपूर मनोरंजन तो करे ही, उसमें व्यक्ति तथा समाज के लिए कोई प्ेरणा तथा संदेश भी हो। इस प्रकार की श्रेष्ठ कहानी की तलाश में फिल्मकार का किसी भी भाषा के कथा साहित्य की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक है। हिंदी फिल्मों के एक शताब्दी तक फैले इतिहास की ओर जब हम दृष्टि डालते हैं तो पता चलता है कि कहानी के चयन में निर्माताओं ने व्यापक रुचि का परिचय दिया है तथा भारत एवं अन्य देशों की प्रमुख भाषाओं की प्रमुख कथाकृतियों को रजत पट पर उतारने में उन्हें कोई संकोच नहीं किया है। प्राचीनतम संस्कृत से लेकर आधुनिक भाषाओं में लिखी गई कथा-कहानियों को उन्होंने रुपहले परदे पर उतारा है।

प्रथम हम संस्कृत को ही लें। ऐसी अनेक फिल्में हैं, जो कालिदास, भास, भवभूति, शूद्रक, श्रीहर्ष जैसे संस्कृत के प्रख्यात, विश्व-विश्रुत रचनाकारों के कथानकों पर आधारित हैं। हिंदी फिल्मों में संस्कृत की जिस प्रेमकथा को सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया, वह थी शकुन्तला तथा दुष्यंत की प्रणय कहानी। कलिदास का प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' यद्यपि महाभारत के 'शकुंतलोपाख्यान' पर आधारित है किंतु इसमें अँगूठी के कथानक को जोड़कर इस महाकवि ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। संस्कृत में 'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला' की उक्ति प्रसिद्ध है। उधर जर्मन कवि गेटे ने इस कथा की कमनीयता तथा रसात्मकता से मुग्ध होकर उसकी प्रशंसा करने में कोई कसर उठा नहीं रखी थी। शकुंतला के प्रेमाख्यान ने हिंदी फिल्मकारों को 1931 में ही आकृष्ट कर लिया था। इस वर्ष मादन थियेटर ने 'शकुंतला' नामक फिल्म बनाई, जिसका निर्देशन और निर्माण जे.जे. मादन नाम के एक पारसी सज्जन ने किया था। इसके गीत प्रसिद्ध नाटककार तथा कथावाचक पं. राधेश्याम ने लिखे थे और मास्टर निसार तथा जहाँआरा कज्जन ने दुष्यंत तथा शकुंतला की भूमिका अदा की थी। 1931 में ही 'शकुंतला' नाम से एक अन्य फिल्म सरोज मूवीटोन ने बनाई, जिसका निर्देशन एम. भावनानी ने किया था। 1943

में प्रसिद्ध निर्माता और निर्देशक शांताराम ने राजकमल कला मंदिर के बैनर तले शकुंतला को और अधिक कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। इसमें वसंत देसाई ने संगीत दिया और जयश्री तथा चंद्रमोहन ने नायक एवं नायिका की भूमिका निभाई थी। शांताराम को एक बार पुन: कालिदास की इस नाट्यकृति को रजत पट पर उतारने की आवश्यकता महसूस हुई और उन्होंने 1961 में इसे 'स्त्री' शीर्षक से प्रस्तुत किया। एक बार पत्नी रूप में अपनाई गई प्रणयिनी शकुंतला को हस्तिनापुर नरेश द्वारा भुलाया जाना मानो 'स्त्री' की नियति है, यही दिखाना शांताराम का उद्देश्य था। सी. रामचंद्र का संगीत और भरत व्यास के गीतों ने इस फिल्म को भव्यता प्रदान की। संध्या और शांताराम प्रमुख भूमिकाओं में थे।

कालिदास का 'मेघदूत' वियोग श्रृंगार की कमनीय कृति है। 1945 में निर्माता देवकी कुमार बोस ने कीर्ति पिक्चर्स के बैनर तले शापग्रस्त यक्ष की विरह वेदना को साकार करनेवाले इस अमर काव्य को फिल्मी परदे पर उतारा। निर्देशक तो खुद देवकी बोस ही थे, जबकि संगीत दिया था कमलदास गुप्ता ने। जगमोहन के सुरीले स्वर ने आषाढ के पहले दिन आकाश में दिखाई पड़नेवाले बादल को पुकारा तो 'ओ वर्षा के पहले बादल! मेरा संदेशा लेता जा' ने कवि की 'आषाढस्य प्रथम दिवसे मेघमाश्लिष्ट सानुं' उक्ति ने गीत का रूप ले लिया। शाहू मोडक यक्ष की भूमिका में थे और लीला देसाई ने वियोगदग्धा यक्ष पत्नी की भूमिका निभाई थी।

संस्कृत के नाटक लेखकों में भवभूति का योगदान भी महत्त्वपूर्ण रहा है। करुण रस को प्रधानता देनेवाले भवभूति ने तो इसी रस को एकमात्र रस कहा—'एको रस करुणमेव'। भवभूति के द्वारा रचित 'मालती माधव' के कथानक को 1933 में बनी इसी नाम की फिल्म में चित्रित किया गया। सरोज मूवीटोन ने ए.पी. कपूर के निर्देशन में मालती तथा माधव के प्रणयाख्यान को रजत पट पर पेश किया। 1951 में प्रसन्न पिक्चर्स ने 'मालती माधव' को लेकर एक अन्य फिल्म बनाई, जिसका निर्देशन भालेराव जोशी ने किया और सुधीर फड़के ने जिसे संगीत से सजाया। भवभूति की ख्याति का कारण है, उनका एक अन्य नाटक 'उत्तर रामचरित', जिसके कथानक के आधार पर विजय भट्ट ने 1943 में अपनी अत्यंत लोकप्रिय फिल्म 'रामराज्य' का निर्माण किया। अपने जमाने की इस चर्चित फिल्म में प्रेम अदीब तथा शोभना समर्थ ने राम और सीता का जैसा यथार्थ और जीवंत अभिनय किया, उसके कारण आगे आनेवाली रामायण पर आधारित फिल्मों में वे ही इन भूमिकाओं के लिए सर्वथा उपयुक्त समझे गए। शंकर राव व्यास के मधुर संगीत ने भारत की इस सन्नारी की व्यथा को जन-जन तक पहुँचाया था। महात्मा गांधी ने भी बंबई के एक थियेटर में 'रामराज्य' को देखा और उसकी प्रशंसा की।

काल की दृष्टि से तो भास कालिदास के भी पूर्ववर्ती थे। 'स्वप्नवासवदत्तम्' लिखकर उन्होंने राजा उदयन और वासवदत्ता की प्रणयकथा को अमर बनाया है। 1934 में प्रसिद्ध फिल्म कंपनी अजंता मूवीटोन ने 'वासवदत्ता उर्फ शाही गवैया' नाम से भास की इस कथा का फिल्मीकरण किया। निर्देशक थे पी.वाई. अल्टेकर। उस जमाने की प्रसिद्ध सुंदर अभिनेत्री बिब्बो वासवदत्ता बनी और बी. सोहानी ने उदयन की भूमिका निभाई। अपने युग का प्रसिद्ध हास्य कलाकार भूदो एडवानी विदूषक वसंतक की भूमिका में उतरा था। शकुंतला की ही भाँति संस्कृत की जिस कथा ने एकाधिक बार फिल्म निर्माताओं को आकर्षित किया, वह है महाकवि शूद्रक की नाट्यकृति —'मृच्छकटिकम्'। सामाजिक यथार्थ का जैसा वास्तविक और वस्तुपरक चित्रण शूद्रक ने इस नाटक में किया है, वह अद्भुत है, अकल्पनीय है और अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ यदि वारवधू (वेश्या) है, चोर हैं, जुआरी हैं और शकार जैसे परस्त्री लंपट पुरुष हैं तो आचारनिष्ठ ब्राह्मण चारुदत्त भी है, जो वारवनिता वसंतसेना के प्रति अनन्य प्रेम रखता है। सामाजिक सरोकारों को यथार्थता से चित्रित करनेवाले इस नाटक की प्रथम अभिव्यक्ति 1934 में 'वसंत सेना' नामक फिल्म में हुई। इसे वसंत सिनेटोन ने जे.पी. अडवानी के निर्देशन में बनाया था। प्रसिद्ध तारिका जोहरा वसंत

सेना बनी और शंकर राव ने प्रेमी चारुदत्त का पार्ट किया। खलनायक शकार थे काशीनाथ। 1942 में अत्रे पिक्चर्स के बैनर तले एक बार और 'वसंत सेना' का निर्माण किया गया जिसका निर्देशन गजानंद ने किया था। इस बार अभिनेत्री वनमाला वसंत सेना बनी और शाहू मोडक ने नायक चारुदत्त का पार्ट किया। 'मृच्छकटिकम्' पर तीसरी फिल्म 1976 में बॉम्बे टॉकीज ने बनाई। इस बार पद्मिनी और नागेश्वर राव ने प्रमुख भूमिकाएँ कीं। शूद्रक की यही कृति चौथी बार शशि कपूर द्वारा 'उत्सव' के नाम से पेश की गई। प्रसिद्ध दूरदर्शन कलाकार शेखर सुमन का फिल्मी सफर इसी चित्र से आरंभ हुआ, जो यहाँ नायक चारुदत्त बने। रेखा ने 'वसंत सेना' के किरदार को निभाया, किंतु निर्देशक ने मूल कथानक में परिवर्तन कर शकार के चरित्र को जिस प्रकार उदात्तता प्रदान की, उसकी कोई जरूरत नहीं थी।

संस्कृत नाटकों में एक युग वह भी आया था जब यह कला जन सामान्य के जीवन से हटकर विलासी राजाओं के अंत:पुरों की विलास क्रीड़ाओं, रानियों के सपत्नी द्वेष से उत्पन्न षड्यंत्रों तथा चेरी (दासी), विट तथा विदूषकों के निम्न स्तरीय क्रीड़ा-कलाप से अतिरंजित हो गई थी। श्रीहर्ष की दो नाटिकाएँ 'नागानंद' तथा 'रत्नावली' उसी सामंतयुगीन संस्कृति की पतनोन्मुख झाँकी प्रस्तुत करती हैं। नागानंद का आख्यान तो पौराणिक है, जिस पर आधारित इसी नाम की फिल्म का निर्माण 1935 में सम्राट् सिनेटोन ने किया। प्रख्यात संगीत निर्देशक सी. रामचंद्र (गायक रामचंद्र मनहर चितलकर) ने इस फिल्म के नायक जीमूत वाहन की भूमिका की थी। 'रत्नावली' का निर्माण 1945 में हुआ। अमर पिक्चर्स की इस फिल्म के नायक व नायिका सुरेंद्र तथा रत्नमाला थे।

संस्कृत में गद्य को कवियों की कसौटी कहा गया है—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।' काव्यात्मक गद्य लेखन में बाणभट्ट का कोई सानी नहीं है। उनकी विख्यात कथाकृति 'कादंबरी' सघन सामासिक शब्दावली तथा जटिल वाक्य रचना के साथ-साथ स्वच्छ एवं निर्मल प्रेम के चित्रण के लिए अपनी अपूर्वता रखती है। 1944 में लक्ष्मी प्रोडक्शन ने शांता आप्टे, वनमाला तथा पहाड़ी सान्याल जैसे कलाकारों को लेकर कादंबरी की प्रसिद्ध कथा को रजतपट पर उतारा था।

नाटक से भिन्न महाकवि जयदेव की श्रृंगार तथा भक्ति रस से परिपूरित काव्यकृति 'गीत गोविंद' को भी फिल्माया गया। 1947 में बनी इस संगीत प्रधान फिल्म में प्रेम अदीब, लीला देसाई, सुलोचना चटर्जी आदि अपने जमाने के विख्यात कलाकार तो थे ही, ज्ञानदत्त के संगीत के लिए पं. इंद्र ने गीतों की रचना की थी। गीता राय, राजकुमारी तथा मन्ना डे ने अपने मधुर स्वरों से 'गीत गोविंद' की रसात्मकता को अधिक सरस बना दिया था। इधर दूरदर्शन के लिए भी कर्पूरचंद कुलिश ने कई कड़ियों में 'गीत गोविंद' को पुन: प्रस्तुत किया है। संस्कृत साहित्य से कथानक तो फिल्म निर्माताओं ने लिये, किंतु संस्कृत भाषा में एकाध फिल्में ही बन सकीं। केरल के प्रसिद्ध फिल्मकार जी.वी. अय्यर ने आदि शंकराचार्य के जीवन को अवश्य रजत पट पर उतारा है। जब तक संस्कृत का लोक-जीवन में प्रवेश नहीं होता, तब तक इस भाषा में फिल्मों का निर्माण होना भविष्य का स्वप्न ही रहेगा।

❑

45

हिंदी का कथा साहित्य और हिंदी फिल्में

प्रारंभिक हिंदी फिल्मों में रहस्य, रोमांच तथा चमत्कार मूलक अलौकिक तत्त्वों की प्रधानता रहती थी। हिंदी का प्रारंभिक कथा साहित्य भी ऐयारी, तिलिस्मी तथा जादूगरी के किस्सों से प्रभावित रहा है। हिंदी के लेखकों ने इन किस्से-कहानियों को फारसी तथा अरबी के फसानों से ग्रहण किया, जो वहाँ परंपरा से प्रचलित थे। 'अलिफ लैला' ('सहस्र रजनी चरित्र'), 'गुल बकावली', 'गुल सनोवर', 'तिलिस्म होशरूबा' और 'चहार दरवेश' के किस्सों को आधार बनाकर गत शती के चालीस के दशक में अनेक फिल्में बनीं। बाद के दशकों तक ऐसी फिल्में बनती रहीं, जिनसे जनसाधारण का मनोरंजन होता रहा। जयंत देसाई प्रोडक्शन ने 1956 में 'अरेबियन नाइट्स' के आधार पर 'हजार रातें' बनाई, तो उसी वर्ष 'गुल सनोवर' की कहानी रुपहले परदे पर पेश की गई। 1956 में 'गुल बकावली' का निर्माण हुआ तो हजारों पृष्ठों में समाप्त 'तिलिस्म होशरूबा' की कहानी को अब दूरदर्शन प्रस्तुत कर रहा है। इन किस्सों में अब भी जनसाधारण की रुचि यथापूर्व है।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम तीन दशकों में पारसी नाटक कंपनियाँ धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक तथा अनेक सामाजिक विषयों पर लिखे गए नाटकों को मंचित कर लोगों का भरपूर मनोरंजन कर रही थीं। सवाक् फिल्मों के प्रचलन के बाद इन नाटकों की लोकप्रियता में कमी आई और जो नाटक-लेखक उपर्युक्त थियेट्रिकल कंपनियों के अधीन रहकर पेशेवर रूप में नाटक लिखते थे, उनका रुझान फिल्मों के लिए कहानी लिखने की ओर हुआ। सच तो यह है कि बोलती फिल्मों ने पारसी थियेटर का रंग फीका कर दिया था, अत: राधेश्याम कथावाचक, आगा हश्र काश्मीरी तथा नारायण प्रसाद बेताब जैसे सिद्धहस्त नाटककार भी फिल्मों से जुड़ गए। इनके द्वारा लिखी गई कहानियों का स्तर चाहे अधिक ऊँचा न हो, इनमें रहस्य, रोमांच, प्रेम, श्रृंगार, हास्य तथा अद्भुत रस के तत्त्व प्रचुर मात्रा में रहते थे। सन् 1933 में कलकत्ता के न्यू थियेटर्स ने जब आगा हश्र की कहानी 'यहूदी की लड़की' को फिल्माया तो कुंदनलाल सैगल तथा पहाड़ी सान्याल जैसे कलाकारों ने अपने अभिनय के द्वारा उसे सफलता की ऊँचाई तक पहुँचा दिया। बेताब का लिखा नाटक 'ज़हरी साँप' रंगमंच पर तो कामयाब हुआ ही, जब मादन थियेटर्स ने उसे फिल्म का रूप दिया तो दर्शक उसे देखने के लिए टूट पड़े। 'ज़हरी साँप' फिल्म में उन्हीं कलाकारों —जहाँआरा कज्जन, पेशंस कूपर तथा सोराब जी केरावाला आदि ने भाग लिया था, जो इससे पहले इस नाटक को रंगमंच पर उतार चुके थे।

सन् 1940 से कुछ पहले तक फिल्मों में परिपक्वता आई थी और निर्माताओं का ध्यान कथा साहित्य को फिल्मी कहानी का स्रोत बनाने की ओर गया। हिंदी के समर्थ कला शिल्पी मुंशी प्रेमचंद 1934 में फिल्म लाइन में आए। शायद उनकी आर्थिक मजबूरियों ने उन्हें बंबई की इस चाकचिक्य भरी माया नगरी की ओर आने के लिए प्रेरित किया था। अपने द्वारा संचालित एवं संपादित मासिक 'हंस' तथा पाक्षिक 'जागरण' में लगातार होने वाले घाटे तथा

आर्थिक विपन्नता ने इस आदर्शवादी लेखक को फिल्मों के सिनेरियो लिखने के लिए आठ सौ रुपए मासिक वेतन पर बंबई आने के लिए मजबूर किया। अजंता सिनेटोन ने उन्हें यह नियुक्ति दी थी। उनके द्वारा इस कंपनी के लिए 'मिल मजदूर' शीर्षक कहानी लिखी गई, जिसे 1934 में एम. भावनानी ने निर्देशित किया। कथा और संवाद प्रेमचंद के ही थे। मिस बिब्बो, जयराज नायमपल्ली तथा भूदो अडवानी ने इसमें प्रमुख भूमिकाएँ निभाई थीं। नई जानकारी के अनुसार खुद प्रेमचंद ने इस फिल्म में सरपंच की एक लघु भूमिका की थी। शायद उनका यही फिल्मी अभिनय का एक मात्र तजुर्बा था। 'मिल मजदूर' के राजनैतिक तेवरों को देखते हुए ब्रिटिश शासन ने उस पर प्रतिबंध लगा दिया किंतु दो वर्ष बाद 1936 में इसी कहानी को 'गरीब परवर' उर्फ 'दया की देवी' के नाम से पुन: फिल्माया गया। 1935 में प्रेमचंद ने अजंता सिनेटोन के लिए 'नवजीवन' शीर्षक एक कहानी लिखी। इसी वर्ष यह रजत पट पर आई।

सन् 1934 में वेश्या समस्या पर लिखे गए प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यास 'सेवा सदन' को 'बाजारे हुस्न' नाम से रजत पट पर उतारा गया। महालक्ष्मी सिनेटोन के बैनर में बने इस चित्र को नानू भाई वकील ने निर्देशित किया था तथा जुबेदा, जद्दन बाई और शाहू मोडक इसकी प्रमुख भूमिकाओं में थे। 1946 में प्रेमचंद के महाकाव्य धर्मी उपन्यास रंगभूमि ('चौगाने हस्ती') पर भावनानी प्रोडक्शन ने एक फिल्म बनाई। इसके निर्देशक एम. भावनानी स्वयं थे, जिनकी प्रेरणा से बारह वर्ष पहले प्रेमचंद अपने प्रिय नगर बनारस को छोड़कर बंबई चले आए थे। पर प्रेमचंद का अधिक समय तक फिल्म संसार में रहना कठिन ही था। अपने मित्र जैनेंद्रकुमार को लिखे एक पत्र में उन्होंने स्वीकार किया था कि जिन सपनों को लेकर वे यहाँ आए थे, वे सब बिखर गए हैं। यहाँ निर्देशक लोग ही सर्वेसर्वा हैं और वे कहानी के साथ जैसा सलूक करते हैं, उसे कोई स्वाभिमानी लेखक कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। साफ-सुथरी कहानी में बेवजह अश्लील गाने ठूँसना तथा शालीनता रहित नाच और मुजरों का समावेश उन्हें असह्य और वीभत्स लगता था। अत: स्वल्प समय पश्चात् बनारस के बेनिया बाग के नजदीक के मकान में आकर प्रेमचंद पूर्ववत् अपने लेखन कर्म में लग गए। फिल्मों में प्रेमचंद की यही संक्षिप्त भूमिका रही।

प्रेमचंद चाहे फिल्मी वातावरण में अधिक देर तक नहीं जम सके किंतु उनकी कथाकृतियों ने प्रबुद्ध दर्शकों को लुभाए रखा। 1963 में भारतीय किसान की अभाव भरी जिंदगी को यथार्थवादी तेवर में प्रस्तुत करने वाले उनके अंतिम उपन्यास 'गोदान' को लेकर त्रिलोक जेटली ने इसी नाम से फिल्म बनाई। इसमें गोबर (गोवर्धन) की भूमिका में राजकुमार थे, जबकि झुनिया बनी थीं कामिनी कौशल। लोकधुनों और लोकगीतों की शैली तथा शब्दावली पर आधारित 'गोदान' के दो-तीन गीत लोकप्रिय भी हुए। तीन वर्ष पश्चात् 1966 में हृषीकेश मुकर्जी ने नारी की आभूषणप्रियता से उत्पन्न ट्रेजेडी को लेकर लिखे गए प्रेमचंद के उपन्यास 'गबन' के आधार पर एक फिल्म बनाई। सुनील दत्त और साधना रमानाथ (नायक) और जालपा (नायिका) की भूमिका में थे। 'निर्मला' तथा 'कायाकल्प' को दूरदर्शन के छोटे परदे पर प्रस्तुत किया गया है। कथा समीक्षकों के अनुसार उपन्यासों की तुलना में प्रेमचंद की कहानियाँ अधिक सशक्त तथा प्रभावशाली बन पड़ी हैं। 'दो बैलों की जोड़ी' को बिमल राय ने 'हीरा-मोती' शीर्षक देकर फिल्माया।

वर्ष 1977 में सत्यजित राय जैसे प्रख्यात फिल्म निर्माता ने प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' को फिल्म के लिए चुना। लखनऊ की नवाबी के पतन तथा ब्रिटिश शासन सत्ता के भारत में मजबूती से जम जाने की पृष्ठभूमि में लिखी इस कहानी में मीर साहब और मिर्जा साहब जैसे पात्र उस मध्यकालीन सामंती व्यवस्था के अवशेष हैं, जो स्वयं गोमती पार किसी टूटी मसजिद के खँडहर में बैठे घंटों शतरंज खेलकर अपना दिल बहलाव ही नहीं करते, राजनैतिक घटनाक्रम के प्रति अपनी पलायनवादी मनोवृत्ति को भी प्रदर्शित करते हैं। 'शतरंज के खिलाड़ी' में संजीव

कुमार तथा सईद जाफरी जैसे कलाकार तो हैं ही, साम्राज्यवादी धौंस पट्टी के प्रतीक अफसरों की भूमिका के लिए रिचार्ड एटनबरो तथा टाम आल्टर को चुना गया था। देश, काल और वातावरण के निर्माण में निर्देशक ने पर्याप्त श्रम किया था।

सन् 1955 में चित्रमहल कंपनी, बंबई ने 'अंधेर नगरी चौपट राजा' शीर्षक फिल्म बनाई। इसमें भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा लिखित उस हास्य प्रहसन 'अंधेर नगरी' का आधार लिया गया था, जो स्वच्छंद और निरंकुश राजा की अधीनता में रहने वाली प्रजा की व्यथा-कथा का प्रतीकात्मक चित्रण करता है। इस चित्र का निर्देशन शमीम भगत ने किया था। शमशाद बेगम, तलत महमूद तथा सुधा मल्होत्रा के गीतों ने फिल्म के संगीत को कर्णप्रिय बनाया था। 1960 में बिमल राय ने हिंदी के प्रख्यात कथा लेखक चंद्रधर शर्मा गुलेरी की विख्यात कहानी 'उसने कहा था' को लेकर एक फिल्म बनाई। सलिल चौधरी के संगीत तथा सुनील दत्त एवं नंदा तथा दुर्गा खोटे के सशक्त अभिनय के बावजूद फिल्म न तो लोकप्रियता अर्जित कर पाई और न समीक्षकों की सराहना ही पा सकी। इसके दो कारण बताए गए—प्रथम जर्मन लपटन साहब के हास्य प्रसंग को फिल्म में स्थान न देना तथा मूल कहानी के सिख पात्रों को हटाकर सहजधारी हिंदू पात्रों को लहनासिंह, सूबेदार तथा वजीरासिंह की भूमिका में रखना। यदि 'उसने कहा था' के सिख परिवेश को ही हटा दिया जाता है तो फिर कहानी में बचता ही क्या है?

प्रेमचंद के समकालीन कथाकारों में सुदर्शन तथा चतुर सेन शास्त्री के नाम जाने-माने हैं। सुदर्शन (मूल नाम बद्रीनाथ शर्मा) तो वर्षों तक बंबई रहकर फिल्मों के लिए कहानी, संवाद तथा गीत लिखते रहे। 1941 में मिनर्वा मूवीटोन के बैनर में तैयार हुई सोहराब मोदी की ऐतिहासिक फिल्म 'सिकंदर' के सशक्त संवाद सुदर्शन ने ही लिखे थे। चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास 'धर्मपुत्र' को 1961 में बी.आर. फिल्म्स द्वारा फिल्माया गया। सांप्रदायिक सौहार्द के उदात्त भावों का चित्रण करने वाले इस चित्र में माला सिन्हा, रहमान, शशि कपूर आदि का सशक्त अभिनय देखने में आया। भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास 'चित्रलेखा' यों तो 1941 में ही रजतपट पर आ चुका था, जब केदार शर्मा के निर्देशन में इस पर फिल्म बनी। इसके गीत खुद केदार शर्मा ने लिखे थे तथा गायिका थी रामदुलारी। चित्रलेखा की मुख्य भूमिका में पुरानी अभिनेत्री मेहताब को उतारा गया था। प्रेमचंद के बाद की पीढ़ी के उपन्यासकारों में भगवती बाबू का विशिष्ट स्थान रहा है और 'चित्रलेख' तो उनकी लीक से हटकर लिखी गई कृति है, जो पाप और पुण्य के दार्शनिक प्रश्न का समाधान तलाशती है। 'चित्रलेखा' में पात्र तो तीन ही हैं—कुमारगिरि, बीजगुप्त तथा नर्तकी चित्रलेखा, किंतु इनके विदग्धतापूर्ण संवादों तथा परिस्थितिजन्य बदलते घटनाचक्र ने इस उपन्यास को विशिष्टता प्रदान की है। केदार शर्मा संभवत: 1941 में बनाई अपनी कृति से संतुष्ट नहीं थे, इसलिए 1964 में उन्होंने पुन: इस कालजयी कृति को फिल्म के लिए चुना।

इस बार मीना कुमारी, अशोक कुमार तथा प्रदीप कुमार जैसे मँजे हुए कलाकार क्रमश: नर्तकी, योगी तथा सामंत की भूमिका में आए। रोशन के संगीत में जब लता ने 'संसार से भागे फिरते हो भगवान् को तुम क्या पाओगे' गीत गाया तो उपन्यास में विवेचित दर्शन का श्रोताओं के अंतर्तम तक पहुँचना सहज हो गया। वर्माजी के दो अन्य उपन्यास 'तीन वर्ष' (1964) तथा 'वह फिर नहीं आई' (1980) भी फिल्म रूप में आए हैं।

हिंदी में मनोविश्लेषण प्रधान उपन्यास लिखने के लिए ख्याति प्राप्त जैनेंद्र कुमार की प्रसिद्ध रचना 'त्यागपत्र' 1978 में रजत पट पर आई। इसके निर्देशक थे रमेश गुप्ता। बिहार के पुराने कथाकार अनूपलाल मंडल के उपन्यास 'मीमांसा' को 1940 में 'बहूरानी' शीर्षक से फिल्माया गया। इसमें किशोर साहू, नाना पलसीकर तथा प्रतिमा देवी जैसे उस जमाने के सिद्धहस्त कलाकार थे। हिंदी कथा साहित्य का परिदृश्य निरंतर परिवर्तनशील रहा है। आधुनिक कथा लेखकों में मोहन राकेश, रमेश बक्षी, राजेंद्र यादव, फणीश्वरनाथ रेणु, मन्नू भंडारी आदि सशक्त हस्ताक्षर हैं।

अल्प वयस में परलोकवासी हुए मोहन राकेश के लेखन में अपार संभावनाएँ निहित थीं। कहानी उपन्यास तथा नाटक—इन तीनों विधाओं में उन्होंने साधिकार लिखा है। उनकी चर्चित कहानी 'उसकी रोटी' को 1970 में मणि कौल ने फिल्माया, जबकि 1971 में उनकी प्रसिद्ध नाट्यकृति 'आषाढ का एक दिन' को लेकर मणि कौल ने जो फिल्म बनाई, उसमें ओम शिवपुरी की सशक्त भूमिका थी। इसका संगीत जयदेव ने दिया था। 1969 में शिवपुरी ने ही राकेश के एक अन्य नाटक 'आधे अधूरे' पर एक फिल्म बनाई, जो प्रदर्शित नहीं हो सकी। 'आषाढ का एक दिन' संस्कृत के महाकवि कालिदास के जीवन पर आधारित गीत-विहीन फिल्म थी, जिसमें रेखा सबनीस ने नायिका की भूमिका की थी।

सन् 1969 में बासु चटर्जी ने राजेंद्र यादव के उपन्यास 'सारा आकाश' को फिल्म का रूप दिया। यह भी एक गीत-विहीन फिल्म थी, जिसमें मध्यमवर्गीय परिवार की परिस्थितियों एवं परिवेश का सशक्त चित्रण था। रमेश बख्शी के उपन्यास 'अठारह सूरज के पौधे' को 1973 में 'सत्ताईस डाउन' नाम से अवतार कृष्ण कौल ने फिल्माया। आंचलिक कथा साहित्य के सफल प्रणेता फणीश्वरनाथ रेणु की लोक जीवन पर आधारित 'तीसरी कसम या मारे गए गुलफाम' को बासू भट्टाचार्य ने 1966 में फिल्म ('तीसरी कसम') का रूप दिया और इस प्रकार लोककथा तथा लोकसंगीत का एक सुखद सम्मिश्रण दर्शकों के समक्ष आया। राजकपूर तथा वहीदा रहमान के सशक्त अभिनय के साथ शैलेंद्र की गीत रचना तथा शंकर जयकिशन के संगीत ने फिल्म में मणिकांचन संयोग उत्पन्न कर दिया था। मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' को रजत पट पर लाने का श्रेय भी बासु चटर्जी को है। उन्होंने 1974 में इस कहानी को 'रजनीगंधा' शीर्षक देकर रुपहले परदे पर उतारा। मुख्य भूमिकाओं में विद्या सिन्हा तथा अमोल पालेकर थे। महावीर अधिकारी के उपन्यास 'तलाश' को निर्देशक उमेश माथुर ने 1975 में 'जिंदगी और तूफान' शीर्षक से फिल्म का रूप दिया। 1975 में भारत के सार्वजनिक जीवन को जब आपात्काल के ग्रहण ने ग्रस लिया और उसके बाद 1977 में पुन: अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मिली तो पूर्व सांसद अमृत नाहटा ने परिवार विशेष के एकाधिकार पर व्यंग्य करते हुए 'किस्सा कुरसी का' शीर्षक एक नाटक लिखा तथा उसे लेकर एक फिल्म भी बनाई। इस फिल्म का मात्र प्रचारात्मक महत्त्व ही था। दूरदर्शन ने रेणु के उपन्यास 'मैला आंचल' को 'डागदर बाबू' शीर्षक से प्रस्तुत किया है। माखनलाल चतुर्वेदी के पौराणिक नाटक 'कृष्णार्जुन युद्ध' पर इसी नाम से एक फिल्म 1971 में बनी। गजानन माधव मुक्तिबोध हिंदी के लेखकों में अपने गंभीर चिंतन तथा विशिष्ट शैली के कारण जाने गए। उनकी कहानी पर आधारित गीत-विहीन फिल्म 'सतह से उठता आदमी' 1980 में बनी। निर्देशक मणि कौल ने इसे परंपरा से हटकर बनाया था। धर्मवीर भारती का उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' भी फिल्म का रूप ले चुका है। इसे श्याम बेनेगल ने अपने कुशल निर्देशन में तैयार किया था।

नर-नारी के रतिभाव तथा उनके पारस्परिक आदिम आकर्षण को कथाकारों ने जहाँ अत्यंत सूक्ष्मता, मनोज्ञता तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है, वहाँ हिंदी में कतिपय लेखक ऐसे भी हुए हैं, जिनकी रचनाओं में प्रेम-प्रसंगों को अत्यंत हलके तथा कहीं-कहीं अतियथार्थवादी शैली में चित्रित किया गया है। समीक्षकों ने ऋषभचरण जैन तथा बेचन शर्मा 'उग्र' के उपन्यासों वाली मांसलता को विकृत यथार्थवाद का नाम दिया है। हिंदी की चालू फिल्में अत्यंत सामान्य कोटि के प्रेम प्रसंगों पर आधारित होती हैं। आज हिंदी पाठकों का एक बड़ा वर्ग ऐसा है, जो स्तरीय उपन्यासों को पढ़ने की क्षमता से भी वंचित है। इसके विपरीत रेलवे बुक स्टालों तथा बस अड्डों में बिकने वाली अति साधारण स्तर के वासनाजन्य मांसल प्रेम की कहानी को परोसने वाले लेखक बहुसंख्यक हैं। प्रबुद्ध पाठक तो इन रचनाओं को हिकारत की नजर से देखता है, किंतु व्यवसाय की दृष्टि से ये उपन्यास लेखक और प्रकाशक के लिए दुधारू गाय सिद्ध होते हैं। इनका एक संस्करण ही कई लाख का होता है, जो लेखक को मालामाल कर देता

है। गुलशन नंदा हिंदी के एक ऐसे ही लेखक थे, जिनके उपन्यास संख्या की दृष्टि से काफी हैं, उनमें से प्रत्येक लाखों की संख्या में छपा भी है। परिणाम में इतना विशाल होने पर भी गुलशन नंदा को सारस्वत समुदाय में प्रतिष्ठा नहीं मिली और उनका लेखन फुटपाथी साहित्य की सीमा में ही रहा। यों उन्होंने अपने लेखन से पर्याप्त द्रव्य उपार्जित किया था।

समीक्षकों ने चाहे गुलशन नंदा को महत्त्व नहीं दिया, किंतु उनकी औपन्यासिक कृतियों ने फिल्मों का रूप लेकर अपार प्रसिद्धि तथा लोकप्रियता अर्जित की। उनके लेखन की एक विशेषता यह थी कि जब आप उनके किसी उपन्यास को पढ़ें तो आपको पता चलेगा मानो किसी फिल्म को ही आप अपने मानस पटल पर यथावत् देख रहे हैं। उनके उपन्यासों का सारा ताना-बाना, कथावस्तु, पात्र विधान तथा वातावरण निर्माण भविष्य में बनने वाली किसी फिल्म को दृष्टि में रखकर ही बुना जाता था। अत: फिल्म निर्माता को भी उसे रजत पट पर उतारने में अधिक श्रम नहीं करना पड़ता था। उनके इन उपन्यासों पर बनी फिल्मों ने जहाँ दर्शकों की अपार वाह-वाही लूटी, वहाँ इनसे लेखक को प्रचुर धन मिला तथा बॉक्स ऑफिस पर भी उन्होंने नए कीर्तिमान बनाए। नंदा के उपन्यास 'अँधेरे चिराग' पर 1964 में एक फिल्म 'फूलों की सेज' बनी। इसके निर्देशक थे इंदरराज आनंद तथा अशोक कुमार, मनोजकुमार तथा वैजयंती माला ने फिल्म की मुख्य भूमिकाएँ निभाई थीं। 1970 में शक्ति सामंत ने नंदा के उपन्यास 'कटी पतंग' पर जो फिल्म बनाई, उसने टिकट खिड़की पर अपार सफलता अर्जित की। 1973 में बनी फिल्म 'झील के उस पार' की कहानी तो नंदा की थी, इसका संगीत राहुल देव वर्मा ने दिया था। गुलशन नंदा की ही भाँति साहित्य समाज में सम्मान न प्राप्त करने वाले बल्कि उपेक्षा तथा आलोचना के पात्र बने कुशवाहा कांत के उपन्यास भी किसी समय अल्प पठित पाठक समूह में रुचि से पढ़े जाते थे। उनके 'परदेसी' नामक उपन्यास पर 1970 में कुंदन कुमार ने एक फिल्म बनाई थी। ऋषभ चरण जैन के उपन्यास 'तीन इक्के' पर 1979 में बनी इसी नाम की फिल्म को भी इसी वर्ग में रखना उचित है।

उर्दू को भाषा-शास्त्रियों ने हिंदी की ही एक शैली माना है। कृश्नचंदर, ख्वाजा अहमद अब्बास, अजीम बेग चुगताई आदि ऐसे लेखक हैं, जिनकी कृतियों को हिंदी तथा उर्दू के पाठक समान रूप से पढ़ते हैं। ख्वाजा अहमद अब्बास की 'काला पर्वत' कहानी को 1971 में फिल्म का रूप दिया गया। उधर मिर्जा हादी रुसवा लिखित 'उमराव जान अदा' शीर्षक उपन्यास पर एक सुंदर संगीत प्रधान फिल्म बन चुकी है, जिसमें रेखा ने नर्तकी-गायिका उमराव जान का सफल अभिनय किया है। कला की दृष्टि से इस फिल्म को पर्याप्त सराहा गया था।

हिंदी में कुछ फिल्में ऐसी भी बनी हैं, जिनके नाम तो किसी प्रसिद्ध उपन्यास या कहानी को लेकर हैं, किंतु जिनकी कहानी सर्वथा भिन्न ही है। ऐसा लगता है, इन नामों के आकर्षण ने ही निर्माताओं को इन शीर्षकों वाली फिल्में बनाने के लिए प्रेरित किया। 1955 में फणि मजूमदार द्वारा निर्मित 'आकाशदीप' जयशंकर प्रसाद की इसी नाम की कहानी से सर्वथा भिन्न है। धर्मवीर भारती के प्रख्यात उपन्यास 'गुनाहों का देवता' का नाम भी एक निर्माता (देवी शर्मा) ने प्रयुक्त किया और इसी नाम की एक फिल्म बना डाली। यह भिन्न बात है कि इसी उपन्यास के कथानक को लेकर एक फिल्म 'एक थी सुधा एक था चंदर' शीर्षक से बनने लगी थी, किंतु वह शायद अधूरी ही रही। उर्दू के प्रसिद्ध कवि जोश मलीहाबादी ने अपनी आत्मकथा 'यादों की बारात' शीर्षक से लिखी। फिल्मकार नासिर हुसैन को यह शीर्षक इतना पसंद आया कि उन्होंने इसी नाम से अपनी फिल्म बना डाली। नाम का प्रयोग भी हो, मगर कथावस्तु में मनमाने परिवर्तन कर उसका रूप विकृत कर दिया जाए, इसका ज्वलंत उदाहरण नीरजा गुलेरी द्वारा देवकी नंदन खत्री के कालजयी उपन्यास 'चंद्रकांता' का दूरदर्शन पर पेश किया गया विकृत रूप है, जिसे देखकर शायद लेखक की स्वर्गीय आत्मा भी आठ-आठ आँसू बहाती होगी।

❑

46

भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के कथा साहित्य पर आधारित फिल्में

हिंदी फिल्म निर्माताओं ने अपनी कलाकृतियों के लिए उपयुक्त कहानी को चुनने के लिए व्यापक दृष्टि का परिचय दिया है। इसके लिए उन्होंने हिंदी से भिन्न भारत की प्रांतीय भाषाओं में लिखे गए उत्कृष्ट कथा साहित्य का भी आधार लिया। इससे उनकी व्यापक संवेदना तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण का पता चलता है। बँगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी, उड़िया के अतिरिक्त दक्षिण भारतीय भाषाओं के कथा साहित्य को अपनी फिल्मों का कथानक बनाने के अब तक अनेक प्रयास हुए हैं जिनकी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। सर्वप्रथम हम बँगला की चर्चा करें। बँगला भाषा का कथा साहित्य भाव, विचार और अभिव्यक्ति की दृष्टि से उत्कृष्ट है। बंकिमचंद्र, रवींद्रनाथ तथा शरतचंद्र जैसे कथाकारों ने अपने विशाल कथा संसार द्वारा बँगला साहित्य को समृद्ध बनाया है। फिल्म निर्माताओं ने उपर्युक्त बृहत् त्रयी की अनेक कृतियों को लेकर फिल्में बनाईं।

सर्वप्रथम शरत को लें। शरतचंद्र की कथाकृतियों पर सर्वाधिक फिल्में बनीं, इसलिए हम उनका विवेचन पृथकश: कर रहे हैं। बँगला में उपन्यास लेखन के आद्य प्रवर्तक बंकिम चटर्जी हैं उन्होंने न केवल अनेक सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास लिखे, बँगला गद्य के परिष्कार का कार्य भी उन्होंने ही किया। उनका सामाजिक-मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'कृष्णकांतेर विल' (कृष्णकांत का वसीयतनामा) 1932 में रजत पट पर आया था। सवाक् फिल्मों का निर्माण आरंभ हुए अभी एक वर्ष ही बीता था, इसलिए इस फिल्म की विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। सात वर्ष पश्चात् 1939 में बंकिम की एक अन्य औपन्यासिक कृति 'कपाल-कुंडला' न्यू थियेटर्स के द्वारा फिल्माई गई। शाक्त साधना के रहस्यपूर्ण रोमाचंक तत्त्वों से युक्त इस फिल्म का निर्देशन फणि मजूमदार ने किया था तथा संगीत निर्देशन का कार्य पंकज मलिक ने किया। उनके द्वारा गाया गया 'कपाल कुंडला' का गीत 'पिया मिलन को जाना' आज भी पुरानी पीढ़ी की जबान पर चढ़ा हुआ है। अभिसार के लिए (प्रिय मिलन के लिए) आतुर नारी हृदय की व्याकुलता का मर्मस्पर्शी चित्रण करने वाला यह गीत अस्सी वर्ष की दीर्घावधि के बाद भी सुनने वालों पर अपना मोहक प्रभाव छोड़ता है। बंकिम की एक अन्य कृति 'चंद्रशेखर' 1948 में पायनियर पिक्चर्स कलकत्ता द्वारा फिल्माई गई। देवकी बोस इसके निर्देशक थे तथा कमल दास गुप्ता ने इसमें संगीत दिया था। इसकी प्रमुख भूमिकाओं में अशोक कुमार, कानन बाला तथा भारती थे। अशोक कुमार तथा कानन ने इसमें दो गीत साथ-साथ गाए थे। गीत रचना पं. मधुर की थी।

बंकिम के उपन्यासों में 'आनंदमठ' का विशिष्ट स्थान है। उसे भारत का प्रथम राजनैतिक उपन्यास कहा जाता है। अत्याचारी परकीय शासन का विरोध करने के लिए स्वयं को भारत माता की संतान कहने वाले संन्यासियों का शासन-सत्ता से विद्रोह उपन्यास में मुख्य रूप से वर्णित हुआ है। इसी उपन्यास में बंकिम ने 'वंदे मातरम्' के रूप में देश वंदना का एक श्रेष्ठ गीत लिखा, जो कालांतर में भारत को स्वाधीन कराने के लिए प्राणों की बलि देने वाले

देशभक्तों का कंठहार बना था। 1952 में फिल्मिस्तान ने इस उपन्यास पर फिल्म बनाई। हेमेंद्र गुप्ता के भव्य निर्देशन में बनी इस फिल्म का संगीत हेमंतकुमार (1920-1989) ने दिया था। संगीत निर्देशक के रूप में यह उनकी पहली फिल्म थी, यद्यपि वे अनेक बँगला फिल्मों में पहले भी गा चुके थे। पी.आर. कपूर, प्रदीप कुमार तथा गीता बाली आदि कलाकारों को लेकर बनी इस फिल्म में महाकवि जयदेव के 'गीत गोविंद' के कुछ अंश प्रस्तुत किए गए थे। इसमें आई दशावतार स्तुति को गीता राय ने अपनी मधुर आवाज में पेश किया था। 'जय जगदीश हरे', धीर समीरे यमुना तीरे वने वसति वनमाली' तथा 'हरे मुरारे मधु कैटभारे' जैसी संस्कृत की कोमलकांत पदावली को प्रथम बार श्रोताओं के कर्ण कुहरों में प्रविष्ट कराया गया था। 'वंदे मातरम्' का सम्मिलित स्वरों में गान इस फिल्म का प्रभावोत्पादक अंश था। राजपूत इतिहास को लेकर लिखे गए प्रणयाख्यान 'दुर्गेशनंदिनी' को भी फिल्मिस्तान ने रजतपट पर उतारा। बीना राय तथा प्रदीप कुमार इसके मुख्य कलाकार थे। इसका संगीत भी हेमंतकुमार ने दिया था।

बंकिम की ही भाँति महाकवि रवींद्रनाथ की अनेक कथाकृतियाँ (उपन्यास तथा कहानियाँ) फिल्मों का रूप ले चुकी हैं। 1946 में बॉम्बे टॉकीज ने रवींद्रनाथ के उपन्यास 'नौका डूबी' को 'मिलन' नाम से फिल्माया। नितिन बोस के निर्देशन में बनी इस फिल्म में संगीत दिया था अनिल बिस्वास ने। मधुर गायिका पारुल घोष ने इसमें चार गीत गाए थे। 1954 में रवींद्र की दो नाटिकाओं को फिल्माया गया। ये थीं 'चित्रांगदा' तथा 'तिलोत्तमा'। दोनों का आधार पौराणिक था। चित्रांगदा को अशोक फिल्म्स ने बनाया और इसका संगीत पंकज मलिक ने दिया। तिलोत्तमा नाम की अप्सरा की कथा का फिल्मीकरण बसंत पिक्चर्स ने किया। बाल मनोविज्ञान तथा जीविका के लिए अपनी सुदूर मातृभूमि (सीमांत प्रांत) को छोड़कर कलकत्ता की गलियों में मेवे बेचने वाले पठान की वेदना को व्यक्त करने वाली फिल्म 'काबुली वाला' रवींद्र की इसी नाम की कहानी पर आधारित है, जो 1961 में विमल राय जैसे सिद्धहस्त निर्देशक द्वारा तैयार की गई थी। सलिल चौधरी के निर्देशन में हेमंत कुमार के गीतों ने फिल्म में अतिरिक्त सौंदर्य भर दिया था। बलराज साहनी ने इसमें पठान का रोल किया है। इसके एक गीत 'गंगा आए कहाँ से' को लोग आज भी नहीं भूले हैं।

शरत के उत्तरवर्ती बँगला लेखकों की अनेक चर्चित कृतियों पर भी अच्छी फिल्में बनी हैं। लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचे बँगला उपन्यासकार स्व. विमल मित्र के महाकाव्यधर्मी उपन्यास 'साहब, बीबी, गुलाम' को स्व. गुरुदत्त ने जिस असाधारण कलात्मकता के साथ 1962 में फिल्माया, वह अपने आप में एक नया प्रतिमान था। भूतनाथ ओवरसियर की भूमिका में खुद गुरुदत्त ने अत्यंत स्वाभाविक अभिनय किया था। जर्जर सामंती व्यवस्था किस प्रकार नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों के पतन का कारण बनती है, इसे लेखक ने अत्यंत शिद्दत के साथ पेश किया और उसी तीव्र अनुभूति के साथ मीना कुमारी तथा वहीदा रहमान ने इसमें अपनी-अपनी नारी भूमिकाएँ निभाई हैं। गीता दत्त तथा आशा भोंसले द्वारा गाए गए गीतों ने 'साहब बीबी और गुलाम' को अतिरिक्त आकर्षण प्रदान किया था। दूरदर्शन ने विमल मित्र के एक अन्य उपन्यास 'मुजरिम हाजिर है' को छोटे परदे पर पेश कर पुरानी अभिनेत्री नूतन की अभिनय क्षमता से दर्शकों को एक बार पुन: रू-ब-रू कराया। ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता ताराशंकर बंद्योपाध्याय का वृहद् उपन्यास 'गणदेवता' भी दूरदर्शन के परदे पर आ चुका है, जिसमें अभिनेत्री रूपा गांगुली की सहज अभिनय कला प्रकट हुई थी।

बँगला कथाकारों में विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। उनकी अमर कथाकृति 'पथेर पांचाली' को सत्यजित राय ने बँगला में फिल्माया था। आर्थिक कठिनाइयों से जूझते एक दरिद्र अध्यापक के टूटते परिवार की करुण कथा भारत की दारुण दरिद्रता का निदर्शन कराती है। बँगला के इन विश्रुत लेखकों के अलावा कुछ अन्य जाने-माने लेखकों की रचनाएँ भी फिल्मी परदे पर आईं। नीहार-रंजन गुप्त के उपन्यास 'उत्तरा फाल्गुनी'

को 1966 में 'ममता' नाम से असित सेन ने फिल्म का रूप दिया। 1969 में प्रसिद्ध लेखक बनफूल (प्रेमेंद्र मित्र) के उपन्यास 'भुवन शोम' को निर्देशक मृणाल सेन ने फिल्म के रूप में पेश किया। यह एक गीत-विहीन फिल्म थी, जिसे वियना के अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में स्वर्णकमल से पुरस्कृत किया गया था। सुबोध घोष के उपन्यास 'गोत्रांतर' को 1971 में मृणाल सेन ने 'एक अधूरी कहानी' शीर्षक से फिल्माया। यह भी गीत विहीन फिल्म थी। अचिंत्य कुमार सेन गुप्त के उपन्यास 'प्रथम प्रेम' की कथा को लेकर 1969 में एक फिल्म 'संबंध' बनी। गजेंद्र कुमार मित्र आधुनिक बँगला कथाकारों में एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनके एक उपन्यास 'पामो नाई परिचय' को बी.आर. चोपड़ा ने 1977 में 'कर्म' नामक फिल्म में उतारा। ये सभी बँगला कथाएँ हिंदी फिल्मों के रूप तथा चरित्र को गरिमा प्रदान करने वाली सिद्ध हुईं। बनफूल के उपन्यास 'भुवनशोम' के नायक की भूमिका उत्पलदत्त ने अत्यंत स्वाभाविक रूप में की थी, जब वे एक विधुर रिटायर्ड स्टेशन मास्टर बनकर आए। आशापूर्ण देवी के महाकाव्यधर्मी उपन्यास 'प्रथम प्रतिश्रुति' को दूरदर्शन ने फिल्माया। नारी महिमा का मंडन करने वाली इस कथाकृति में रामेश्वरी ने स्वाभाविक अभिनय किया था।

मराठी कथाएँ और फिल्म निर्माण—

अब हम मराठी कथाओं पर आधारित फिल्मों का विचार करें। हरिनारायण आप्टे मराठी के जाने-माने ऐतिहासिक उपन्यासकार थे। इनके एक उपन्यास 'ह्दया ची श्रीमती' पर 1937 में 'प्रतिमा' नामक फिल्म बनी। बाबूराव पेंटर के निर्देशन में बनी इस फिल्म में शास्त्रीय संगीत की प्रसिद्ध गायिका हीराबाई बड़ोदकर ने कुछ गीत प्रस्तुत किए थे। मराठी भाषा में इस उपन्यास पर इसी नाम ('ह्दया ची श्रीमती') से एक फिल्म बनी थी। चंद्रकांत काकोड़कर के उपन्यास 'नीलांबरी' का आधार लेकर राज खोसला ने 1969 में 'दो रास्ते' फिल्म बनाई। इसका संगीत अत्यंत मधुर तथा कर्णप्रिय था। मराठी अभिनेत्री तथा लेखिका हंसा वाडकर की आत्मकथा पर आधारित फिल्म 'भूमिका' 1977 में बनी। श्याम बेनगेल के कुशल निर्देशन में तैयार की गई इस फिल्म में स्मिता पाटिल का अद्वितीय अभिनय तथा प्रीतिसागर का मधुर गायन था। आचार्य अत्रे के एक नाटक 'तो मी नव्हेच' के आधार पर 1970 में एक फिल्म बनी, जिसका शीर्षक था 'वो मैं नहीं'।

गुजराती कथाएँ और हिंदी फिल्में

गुजराती के कथाकारों में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का नाम शीर्षस्थ है। उन्होंने गुजरात के विगत गौरव को अपनी कथा-सृष्टि के द्वारा पुनरुज्जीवित किया था। ऐतिहासिक उपन्यासों की भाँति उनके सामाजिक उपन्यास भी वैचारिक दृष्टि से प्रभावोत्पादक हैं। जब उन्होंने अपना प्रथम उपन्यास 'वैर नी वसूलात' लिखा और वह किसी पत्रिका में धारावाही छपता रहा तो सामान्य पाठकों की तो बात ही क्या, बंबई हाईकोर्ट के बार रूम में बैठे रहने वाले बूढ़े खूसट वकील लोग जगतकिशोर और तनमन के इस दिव्य प्रेम की रससिक्त गाथा को पढ़ने के लिए लालायित रहते थे। उन्हें तब तक यह पता ही नहीं था कि इस प्रणय कथा का लेखक उनका हमपेशा एक युवा वकील के.एम. मुंशी ही है। सागर फिल्म्स ने मुंशी के इसी उपन्यास को 1935 में 'बैर का बदला' (Vengeance is mine) शीर्षक से फिल्माया था। जगत की भूमिका में कुमार मेहँदी हसन तथा तनमन की भूमिका में उस काल की प्रख्यात अभिनेत्री तथा अपूर्व सौंदर्य की मालकिन सविता देवी थीं। पद्मा शालिग्राम नाम की एक अल्प ख्यात अभिनेत्री रमा की भूमिका में थी। मुंशी ने सोलंकी कालीन गुजरात के इतिहास को लेकर तीन उपन्यास लिखे। इनमें से प्रथम 'पाटण नी प्रभुता' को 1946 में 'महारानी मीनल देवी' के नाम से लक्ष्मी प्रोडक्शंस ने फिल्माया। प्रथम महिला संगीत निर्देशक सरस्वती देवी ने इस फिल्म में अपना संगीत दिया था। प्रेम अदीब, लीला देसाई, दुर्गा खोटे तथा जगदीश सेठी आदि विख्यात कलाकारों ने गुजरात के उस अतीत गौरव को फिल्म के परदे पर उजागर किया

था।

एक अन्य उपन्यास 'पृथ्वी वल्लभ' लिखकर कन्हैयालाल मुंशी ने प्रेम, जीवन के आनंद तथा मस्ती को जीवन-दर्शन के रूप में पेश किया। धारा नगरी के कला-प्रेमी राजा मुंज तथा उसके चिर शत्रु राजा तैलप की प्रौढ़ आयु की बहिन मृणालवती के प्रेम की यह अद्‌भुत कथा 1943 में मिनर्वा मूवीटोन द्‌वारा सोहराब मोदी के निर्देशन में फिल्माई गई। सोहराब मोदी खुद मुंज की भूमिका में थे तथा मृणालवती का किरदार निभाया था दुर्गा खोटे ने। प्रौढ़ प्रेमियों का यह अधेड़ आयु का रोमांस दिखाकर मुंशी ने प्रेम और नर-नारी के शाश्वत आकर्षण को उदात्त भूमिका दी थी। 'तैलप की नगरी में गाना नहीं है' फिल्म के इस गीत ने अति पवित्रतावादी तथा ललित कलाओं से विरक्ति दिखाने वाले लोगों पर कठोर व्यंग्य किया था।

गोवर्धनराम त्रिपाठी का उपन्यास 'सरस्वतीचंद्र' गुजराती की एक प्रख्यात कथाकृति है, जिसमें मानव जीवन के रहस्यमय रूप को झीने दार्शनिक आवरण में प्रस्तुत किया गया है। 1968 में गोविंद सरैया ने इस उपन्यास पर इसी नाम की फिल्म बनाई। इसमें नूतन के अभिनय की ताजगी के साथ-साथ गुजरात की संस्कृति का भव्य रूप दर्शकों को देखने को मिला।

पंजाबी कथाएँ और फिल्में

पंजाबी का कथा साहित्य काल की दृष्टि से चाहे अधिक पुराना नहीं है किंतु इसकी कतिपय रचनाएँ अत्यंत मार्मिक तथा हृदयग्राही हैं। इन पंजाबी उपन्यासों ने फिल्मकारों को सदा आकृष्ट किया है। नानक सिंह के उपन्यास 'पवित्र पापी' पर इसी नाम की फिल्म 1970 में राजेंद्र भाटिया ने बनाई, जिसमें बलराज साहनी का लाजवाब अभिनय था। सामाजिक विसंगतियों तथा आर्थिक कठिनाइयों का चित्रण करने वाला राजेंद्र सिंह बेदी का प्रसिद्‌ध उपन्यास 'एक चादर मैली सी' भी रजत पट पर आ चुका है। ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित लेखिका अमृता प्रीतम की औपन्यासिक कृति 'धरती, सागर और सीपियाँ' को 1975 में फिल्माया गया। कालांतर में उनकी कथाकृति 'पिंजरा' भी परदे पर आई।

उड़िया भाषा की कथाकृतियों पर उड़िया में तो फिल्मों का निर्माण हुआ ही, हिंदी में भी उन पर आधारित कुछ अच्छी फिल्में बनी हैं। भगवती चरण पाणिग्रही की कहानी 'मृगया' को 1976 में मृणाल सेन ने फिल्म का रूप दिया। यह व्यावसायिक फिल्म नहीं थी। इस प्रयोगधर्मी फिल्म में बिहार के संथाल परगना के आदिवासी संथालों के जीवन की वास्तविकता का चित्रण किया गया था।

❑

47

हिंदी फिल्मों में यूरोप की कहानियाँ

साहित्य की विशेषता उसके द्वारा मानव-संवेदनाओं को जगाने से आँकी जाती है। साहित्य का प्रभाव देश और काल की सीमाओं को पार कर जाता है। यही कारण है कि मानव मन के अद्भुत चितेरे कालिदास जैसे कवियों की सराहना अन्य देशों में हुई, जबकि मनुष्य की प्रकृति और उसके स्वभाव के विचक्षण मर्मज्ञ शेक्सपियर की कृतियों की पाठक मंडली केवल इंग्लैंड तक ही सीमित नहीं रही। जहाँ तक कथा साहित्य का सवाल है, भारत में रची गई पंचतंत्र, हितोपदेश आदि की कहानियाँ पश्चिमी देशों तक पहुँचीं और यूरोप की ईसप तथा हैंस एंडरसन की कथाओं का प्रचार भारत में हुआ। 'अलिफ लैला', 'गुल बकावली', 'नाविक सिंदबाद' तथा 'चहार दरवेश' जैसी अलौकिक तत्त्वों से भरपूर अरबी-फारसी की कथा-कहानियाँ भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। यही कारण है कि हिंदी फिल्मों के निर्माताओं ने कहानी का चुनाव करते समय देश और काल की सीमाओं से अपने को नहीं बाँधा। उन्होंने यूरोप के कथा-साहित्य से लोकप्रिय कृतियों को चुना तथा उनके आधार पर अपनी फिल्में बनाईं।

यूरोप के कथा साहित्य में अंग्रेज़ी, फ्रैंच तथा रूसी भाषाओं का कथा साहित्य मात्रा तथा गुणवत्ता दोनों दृष्टियों से श्रेष्ठ माना जाता है। हिंदी फिल्मों ने प्रधानतया अंग्रेजी की कथाओं को लेकर फिल्में बनाईं, यद्यपि अन्य भाषाओं की कृतियों को भी उन्होंने रजत पट पर उतारा है। अंग्रेजी कथा-कहानियों के प्रति फिल्मकारों की अधिक रुचि का एक कारण तो यही था कि अंग्रेजी शासन काल में इस भाषा की कहानियों एवं उपन्यासों को हम पढ़ते रहे तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं की अपेक्षा अंग्रेजी से हमारा परिचय अधिक गहरा रहा। महान् नाटककार विलियम शेक्सपियर के कुछ प्रख्यात नाटक समय-समय पर रजत पट पर उतारे गए। सवाक् चित्रपट का आरंभ हुआ 1931 में और इसके दो वर्ष बाद शेक्सपियर की प्रसिद्ध कॉमेडी 'कॉमेडी ऑफ एरर्स' की कहानी को रणजीत मूवीटोन ने 'भूल-भुलैया' शीर्षक देकर फिल्माया। एक सी सूरत-शक्ल के दो मालिकों और दो नौकरों की इस हास्य प्रधान कहानी को हिंदी फिल्मों में एकाधिक बार पेश किया गया है। 'भूल-भुलैया' का निर्देशन उस जमाने के प्रख्यात निर्देशक जयंत देसाई ने किया था और इसमें घोरी और दीक्षित जैसे जाने-माने हास्य कलाकारों की भूमिका थी। शांता और कमला इनसे जुड़ी नारी कलाकार थीं। आगे चल कर 'कॉमेडी ऑफ एरर्स' पर 'हँसते रहना', 'दो दूनी चार' तथा 'अंगूर' नाम वाली तीन अन्य फिल्में बनीं। दर्शकों का मनोरंजन करने में ये फिल्में लाजवाब सिद्ध हुईं। 1932 में पारसी कंपनी मादन थियेटर्स ने शेक्सपियर की एक अन्य कृति 'टेमिंग ऑफ दि श्रू' को पेश किया। इसके निर्देशक थे जे.जे. मादन और फिल्म का हिंदी नाम था 'हठीली दुलहिन'। अपने जमाने की सुंदर अभिनेत्री पेशेंस कूपर ने इसमें नायिका का रोल किया था। शेक्सपियर की महान् शोकांतिका (Tragedy) डेनमार्क का राजकुमार 'हैमलेट' को 1935 में फिल्म का रूप दिया गया। पिता की मौत का बदला लेने का संकल्प लेकर 'करूँ या न

करूँ' की दुविधा में पड़े इस दुर्बल चरित्र वाले राजकुमार की कहानी को 'खून का खून' नाम दिया गया था। सोहराब मोदी के सफल निर्देशन में बनी इस फिल्म में उस युग की अनिंद्य सुंदरी नसीम बानो राजकुमार हैमलेट की प्रेयसी आफेलिया की भूमिका में थी। रामप्यारी जूनियर ने हैमलेट की माता का किरदार निभाया था। To be or not to be का प्रसिद्ध संवाद यहीं बोला गया था।

1940 में शेक्सपियर की एक अन्य रोमांचक नाट्य रचना 'टेम्पेस्ट' को 'आँधी' के नाम से फिल्माया गया। न्यू थियेटर्स द्वारा निर्मित तथा अलौकिक, अप्राकृतिक तत्त्वों से भरपूर इस फिल्म में प्रमुख भूमिका पंकज मलिक की थी और अंध गायक कृष्णचंद्र डे इसके संगीत निर्देशक थे। उन्होंने इसमें खुद गीत गाए थे। एक वर्ष बाद इसी नाटककार की महान् कृति 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' को फिल्माया गया। शेक्सपियर ने इस नाटक का नामकरण एक उदार ईसाई व्यापारी एंटोनियो को ध्यान में रखकर किया था, किंतु मादन थियेटर्स के संचालकों ने कंजूस तथा कठोर यहूदी खलनायक शाइलॉक को ध्यान में रखकर फिल्म का नाम 'जालिम सौदागर' रखा। अपने विरोधी व्यापारी एंटोनियो को नीचा दिखाने के लिए तत्पर शाइलॉक जब ईसाई व्यापारी के शरीर का आधा पौंड मांस लेने के लिए हठ करने लगा तो बेसेनियो की पत्नी पोर्शिया की हाजिरजवाबी और बुद्धिमत्ता से वह कर्ज में दी अपनी मूल पूँजी भी गँवा बैठता है। अपने जमाने की मशहूर अभिनेत्री कज्जन ने इसमें पोर्शिया की भूमिका की थी।

शेक्सपियर के प्रसिद्ध प्रेमाख्यान 'रोमियो और जूलियट' को 1947 में फिल्म का रूप दिया गया। निर्माता-निर्देशक अख्तर हुसैन ने संगीत निर्देशक का दायित्व हुस्न लाल भगतराम को सौंपा। जोहराबाई अंबालावाली ने अपने मधुर स्वर में इस फिल्म में तीन गीत गाए। दिवंगता नरगिस इसमें जूलियट बनी थीं। इस फिल्म के गीतकारों में जिगर मुरादाबादी, मजरूह सुल्तानपुरी तथा फैज अहमद फैज जैसे विख्यात शायरों के नाम थे। शेक्सपियर जैसे विश्व प्रसिद्ध नाटककार की कृतियों के प्रति फिल्मकारों का आकर्षण स्वाभाविक था। अंग्रेजी की कुछ अन्य प्रसिद्ध कथाकृतियाँ भी हिंदी फिल्मों में चित्रित हुई हैं। सर वाल्टर स्कॉट अंग्रेजी के उपन्यासकारों में आंचलिक रुचियों तथा अपनी मातृभूमि स्कॉटलैंड के प्राकृतिक सौंदर्य के चित्रण के कारण प्रसिद्ध हुए। मध्यकालीन स्काटलैंड के सामंती वातावरण ने उन्हें उपन्यास लिखने की प्रेरणा दी थी। 1942 में मोहन पिक्चर्स ने उनके उपन्यास 'लेडी ऑफ दि लेक' को 'सरोवर की सुंदरी' नाम देकर पेश किया। फिल्म के निर्देशक ए.एम. खान थे। डाफ्ने द मारियर के उपन्यास 'रैबेका' को 'कोहरा' नाम देकर बीरेन नाग ने 1964 में फिल्माया। इस फिल्म के गीत प्रगतिशील शायर कैफी आजमी ने लिखे और उन्हें स्वर दिया स्व. हेमंत दा ने।

अंग्रेजी उपन्यासों की चर्चा में भारतीय लेखक आर.के. नारायणन की प्रसिद्ध कृति 'गाइड' का उल्लेख आवश्यक है। अनेक भारतीय लेखकों ने अंग्रेजी कथा साहित्य को समृद्ध किया है। मुल्कराज आनंद, खुशवंतसिंह, शोभा डे, अनीता देसाई, अरुंधती राय आदि के नाम आज सुपरिचित हैं। विजय आनंद ने 'गाइड' को रजत परदे पर उतारा तथा देवानंद और वहीदा रहमान जैसे मँजे हुए कलाकारों की प्रतिभा ने इसे निखारा। भारतीय कथालेखकों की किसी अंग्रेजी कृति को 'गाइड' जैसी सफलता तथा लोकप्रियता शायद ही मिली होगी। टॉमस हार्डी के उपन्यास 'टेस' को 1966 में 'दुलहिन एक रात की' शीर्षक से फिल्माया गया। अभागी तथा परित्यक्ता टेस उपन्यासकार की एक करुणा भरी कृति है, जिसे हिंदी फिल्म में भारतीय वातावरण देकर प्रस्तुत किया गया है। विक्टोरियन काल के कथा लेखक चार्ल्स डिकेंस के उपन्यास 'ऑलाइवर ट्विस्ट' को 1969 में 'चंदा और बिजली' शीर्षक से फिल्माया गया। 1980 में आर.एल. स्टीवेंसन की कृति 'डॉ. जैकल और मि. हाइड' को 'चेहरे पर चेहरा' शीर्षक से फिल्म का रूप दिया गया।

अंग्रेजी के अलावा अन्य यूरोपीय भाषाओं में लिखी गई प्रसिद्ध कथा-कृतियाँ भी हिंदी के फिल्मकारों द्वारा

अपनाई गई हैं। फ्रांसीसी लेखक विक्टर ह्यूगो की कृति 'ला मिजरेबल्स' केवल फ्रैंच भाषा की ही नहीं, विश्व की जानी-मानी कथा सृष्टि है। भयानक से भयानक अपराधी और पापी भी किसी साधुमना संत पुरुष के संपर्क में आकर स्वयं को सच्चरित्र तथा साधु बना ले, यह दिखाना ही 'ला मिजरेबल्स' का मूल उद्‌देश्य था। 1947 में निर्माता-निर्देशक गजाननद जागीरदार ने ह्यूगो की इस अमर कथा को लेकर 'जेल यात्रा' नामक फिल्म बनाई। इसमें मुख्य भूमिकाएँ राजकपूर तथा कामिनी कौशल की थीं। इसी उपन्यास पर एक अन्य सफल फिल्म 'कुंदन' बनी, जो अपने जमाने की लोकप्रिय कृति थी। इसे सोहराब मोदी ने मिनर्वा मूवीटोन के अंतर्गत बनाया था।

पश्चिमी कथा साहित्य को रूसी लेखकों का योगदान उल्लेखनीय है। इनमें टॉलस्टाय, मैक्सिम गोर्की, तुर्गनेव, चेखव तथा दॉस्तावस्की जाने-माने नाम हैं। हिंदी फिल्मों में रूसी उपन्यासों का योगदान भी कम नहीं रहा। लियो टॉलस्टाय के उपन्यास 'रिजरेक्शन' की कथा को लेकर 'पुनर्मिलन' फिल्म बनी। डायमंड पिक्चर्स द्‌वारा बनाई इस फिल्म को 'दुनिया क्या है?' का नाम दिया गया था। अनजाने में किए गए एक खून के अपराधी को मिलने वाली सजा की कथा को मनोविज्ञान के ताने-बाने में पिरोकर जब दॉस्तावस्की ने 'क्राइम एंड पनिशमेंट' उपन्यास में पेश किया तो वह विश्व कथा साहित्य की एक अनुपम कृति बन गई। 1958 में पारिजात पिक्चर्स के रमेश सैगल ने दॉस्तावस्की की इस अमर कृति को 'फिर सुबह होगी' का नाम देकर फिल्म का रूप दिया। अपराधी का जीवन सर्वथा, सर्वदा तथा अनिवार्यत: निराशामय नहीं होता, इसे दिखाना इस उपन्यास का लक्ष्य था। 'आशा के प्रभात के उदय की सदा ही संभावना रहती है' इसी तथ्य को 'फिर सुबह होगी' में कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 1974 में इसी कथानक को बुंदेलखंड पिक्चर्स ने 'जुर्म और सजा' शीर्षक देकर फिल्म का रूप दिया, जो मूल उपन्यास के शीर्षक का अनुवाद था। विनोद मेहरा, नंदा, जॉनी वाकर तथा हेलन जैसे मँजे हुए कलाकारों ने इसमें अपनी सफल भूमिकाएँ की थीं। आज भी हिंदी फिल्म निर्माता पश्चिम की कथा, कहानियों को लेने में संकोच नहीं करते। कई तो गुपचुप विदेशी कहानी को लेकर उसे भारतीय रूप देते हैं, फिर भी मौलिकता का दावा करना नहीं भूलते। यहाँ यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि अतीत में पश्चिम की कथा-कहानियों को जब हिंदी फिल्मों का रूप दिया गया तो उनके पात्र और परिवेश को सर्वथा भारतीय ही रखा गया था। यह आवश्यक था, अन्यथा इस देश के दर्शक को इनसे पूरी रसोपलब्धि नहीं होती।

❑

48

अरब कथाओं पर आधारित हिंदी फिल्में

फिल्मों का एक प्रमुख उद्‌देश्य मनुष्य को मनोरंजन उपलब्ध कराना है। इस प्रयोजन की सिद्‌धि के लिए फिल्मकार ऐसी कथाओं का चयन करते हैं, जो कौतूहल, अद्‌भुत तत्त्व तथा रोमांचक प्रसंगों से युक्त हों। प्रत्येक देश में ऐसी कथा-कहानियों का बाहुल्य रहा है, जो व्यक्ति के लिए आवश्यक अद्‌भुत रस की तृप्ति कराने वाली होती हैं। भारत में कथा सरितसागर, बृहत् कथा, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रंथ ऐसी कथाओं के अपरिमित स्रोत हैं, जिनसे शताब्दियों तक जनमानस का रंजन होता रहा है। यूरोप में ईसप की कहानियों और हैंस एंडरसन की कथाओं ने वहाँ के लोगों का भरपूर मनोरंजन किया है। वर्तमान ईरान और अरब में ऐसे कथा साहित्य की प्रचुरता रही, जो उन देशों की सीमाओं का अतिक्रमण कर विभिन्न देशों की भाषाओं में अनूदित हुआ तथा लोकानुरंजन का कारण बना।

विश्व प्रसिद्‌ध कथा संग्रह 'अलिफ लैला' विगत कई शताब्दियों से हर वर्ण और समुदाय की जनता का कंठहार बना हुआ है। अंग्रेजी में इसे 'अरेबियन नाइट्स' के नाम से प्रसिद्‌धि मिली तो भारत में 'सहस्र रजनी चरित्र' के नाम से। यह ग्रंथ अपनी मूल कथा तथा उससे निकलने वाली हजारों उपकथाओं के द्‌वारा जनता को एक निराले विस्मय लोक में ले जाने की सामर्थ्य रखता है। 'अली बाबा चालीस चोर', अल्लादीन तथा उसका आश्चर्यजनक चिराग, 'नाविक सिंदबाद' आदि की कथाएँ संसार भर के पठित समाज में लोकप्रिय रही हैं। विविध भाषाओं में इनके अनुवाद तथा संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित हुए तथा फिल्मकारों ने इनके रहस्य, रोमांच एवं कौतूहल से भरे कथानकों से आकर्षित होकर इन पर अनेक फिल्में बनाईं।

'अलिफ लैला' के रचनाकार की उर्वर कल्पना बेमिसाल है। कहानी में से कहानी निकालकर वह एक जादुई सृष्टि का निर्माण करता है, जिसमें भिन्न-भिन्न द्‌वीपों, देशों, मानव-समूहों के भौगोलिक, सामाजिक तथा नैतिक परिवेशों की एक अद्‌भुत माला सी दिखाई देती है। 'अलफ्' अरबी भाषा का शब्द है, जो एक हजार का बोधक है। इस पुस्तक का नायक फारस देश का सम्राट् शहरयार है, जो आरंभ से अंत तक की कहानियों का मुख्य श्रोता है। समग्र कथा में रोचकता, भयानकता तथा अतियथार्थ का विचित्र समन्वय है। भारत में जब से मूक फिल्मों का प्रचलन आरंभ हुआ, तभी से हमारे फिल्मकार 'अलिफ लैला' की कहानियों पर आधारित फिल्में बनाने लगे। बोलती फिल्मों के प्रचलन के साथ इस ग्रंथ की ओर निर्माताओं का आकर्षण अधिक बढ़ा। यद्यपि 'अलिफ लैला' में पाई जाने वाली अवांतर कथाओं पर भी सैकड़ों फिल्में बनी हैं, किंतु मुख्य ग्रंथ का आधार लेकर 1933 में रॉयल सिनेटोन ने जो फिल्म बनाई, उसके निर्देशक थे शांति जे. देव। कवि अनुज ने इसके लिए गीत लिखे तथा विजय भट्ट ने कहानी तथा संवाद लिखे थे।

बीस वर्ष बाद के. अमरनाथ ने 1953 में इसी नाम से एक अन्य फिल्म बनाई। पी.आर. प्रोडक्शन ने 'अरेबियन

नाइट्स' के कथानक को फिल्माया तो उसे कमल दास गुप्ता जैसे विख्यात संगीत-निर्देशक तथा कानन जैसी सुरुचिपूर्ण गायिका का सहयोग मिला। देखा जाए तो अरब कथाओं पर फिल्मों का निर्माण करने वालों में सर्वोपरि नाम नानू भाई वकील तथा नाना भाई भट्ट के आते हैं। इन दोनों ने इन कथाओं को जन-जन तक पहुँचाने में रुचि ली तथा अपनी कला को सार्थक बनाया।

'अल्लादीन और उसका चिराग' अलिफ-लैला महाकथा का एक रोचक प्रसंग है, जिसका आधार लेकर बनी फिल्मों ने बच्चों से लेकर बूढ़ों तक का मनोरंजन किया। कलकत्ता के मादन थियेटर ने 1933 में इसे फिल्माया। 1938 में पैरामाउंट पिक्चर्स के तले नानूभाई वकील ने इस कथा का पुन: फिल्मी प्रस्तुतीकरण किया। बसंत पिक्चर्स ने 1952 में होमी वाडिया के सफल निर्देशन में अल्लादीन की कहानी को जब फिल्म के रूप में पेश किया तो नायक की भूमिका में प्रसिद्ध राजस्थानी अभिनेता महिपाल थे। दरअसल, महिपाल ने आगे चलकर अरब कथाओं पर आधारित फंतासी फिल्मों के नायक के रूप में अपने आपको ऐसा ढाल लिया कि दर्शकों के लिए वे अरब कहानियों के महानायक ही बनकर रह गए। नानू भाई वकील ने भी अल्लादीन और उसके जादुई चिराग की कथा से सम्मोहित होकर 1946 में मोहन पिक्चर्स के बैनर में एक सुंदर फिल्म बनाई थी। हिंदी फिल्मों के निर्माण में मद्रास (आज का चेन्नई) भी पीछे नहीं रहा। जय शक्ति पिक्चर्स ने 1958 में 'अल्लादीन का चिराग' फिल्म बनाई जो सफल रही।

'सहस्र रजनी चरित्र' के अंतर्गत नाविक सिंदबाद की रोमांचक यात्राओं के वृत्तांत पाठक समाज के लिए अपूर्व आकर्षण रखते हैं। इन समुद्री यात्राओं में उस साहसी नाविक को कैसे-कैसे अनुभव हुए, किन-किन मुश्किलों का सामना करना पड़ा, यह सब पढ़कर पाठक एक विचित्र कल्पना-लोक में पहुँचा जाता है। मोहन पिक्चर्स ने 1946 में जब 'सिंदबाद सेलर' नामक फिल्म बनाई तो इसका निर्देशन नाना भाई भट्ट को सौंपा गया। छह वर्ष बाद दीपक पिक्चर्स ने इसी कथानक को पुन: फिल्माया। इस बार भी उन्हें निर्देशन के लिए नाना भाई से अधिक उपयुक्त अन्य निर्देशक नहीं मिला। 1958 में 'सिंदबाद की बेटी' तथा 'सन ऑफ सिंदबाद' शीर्षक दो फिल्में बनीं। पहली फिल्म का निर्माण स्टैंडर्ड प्रोडक्शन ने किया था। इसमें नायक और नायिका की भूमिका में पी. जयराज तथा नादिरा थे। नाना भाई भट्ट ने 'सन ऑफ सिंदबाद' का निर्देशन किया था।

यह मानना होगा कि 'अलीबाबा और चालीस चोर' की कथा 'अरेबियन नाइट्स' के कथानकों में सर्वाधिक लोकप्रिय, शिक्षाप्रद तथा आदर्श सिद्ध हुई है। 1932 में कलकत्ता के मादन थियेटर्स ने इस कहानी को लेकर जो फिल्म बनाई, उसमें जहाँआरा कज्जन तथा पेशेस कूपर जैसी नयनाभिराम अभिनेत्रियों तथा सोराबजी केरावाला जैसे सिद्धहस्त कलाकार का योगदान था। 1946 में मोहन पिक्चर्स ने अलीबाबा के कथानक को लेकर नानू भाई वकील के निर्देशन में एक अन्य फिल्म बनाई। 1954 में वसंत पिक्चर्स ने अलीबाबा को फिल्माने का जिम्मा होमी वाडिया को सौंपा। इसकी मुख्य भूमिकाओं में शकीला तथा महिपाल थे। वस्तुत: अरेबियन नाइट्स की कथाएँ किसी एक देश या समाज की धरोहर न होकर विश्व समुदाय की थाती हैं। भारत सोवियत कोऑपरेटिव प्रोडक्शन ने उज्बेक फिल्म स्टूडियो ताशकंद को अलीबाबा पर फिल्म बनकर तैयार करने का दायित्व सौंपा। फलत: 1980 में यह फिल्म बनकर तैयार हुई। अलीबाबा बने धर्मेंद्र और मरजीना का किरदार निभाया हेमा मालिनी ने। फिल्म-जगत् की यह विख्यात जोड़ी थी।

अल्लादीन के मुख्य कथानक के साथ-साथ इसके पात्रों को लेकर अवांतर कथा-कहानियाँ बनीं, जिनके आधार पर अनेक फिल्मों का निर्माण हुआ। 'अल्लादीन का बेटा' (1939, 1955), 'अल्लादीन की बेटी' (नानू भाई वकील के निर्देशन में) 'अल्लादीन लैला' (महिपाल और शकीला) आदि फिल्मों को दर्शकों ने पसंद किया। इसी

प्रकार अलीबाबा के कथानक से जुड़ी जो फिल्में बनीं, उनमें 'चालीस बाबा और एक चोर' (पी.एल. संतोषी कृत 1954), 'सन ऑफ अली बाबा' (एम.पी. फिल्म्स द्वारा 1955 में चित्रा और महिपाल को लेकर बनी), नानू भाई वकील के निर्देशन में 'खुल जा सिमसिम' (महिपाल और शकीला को लेकर 1956 में बनी) 'सिमसिम मरजीना' (1958 में शकीला और महिपाल को लेकर) तथा सरगम पिक्चर्स की 1977 में बनी 'अली बाबा मरजीना' आदि उल्लेखनीय हैं।

अरब कथाएँ मात्र मनोरंजन के लिए नहीं लिखी गईं। मनुष्य के चरित्र को विकसित करने तथा उसमें दैवी प्रवृत्तियों का समावेश करना भी इनका लक्ष्य था। हातिम के रूप में एक ऐसा परोपकार परायण, दूसरों के दुख-दर्द को समझने वाला तथा पराए हित के लिए स्वयं का बलिदान करने वाले पात्र को इनमें चित्रित किया गया है। भारत मूवीटोन ने 1933 में हातिम के चरित्र पर आधारित 'हातिमताई' फिल्म बनाई, जिसमें मधुलाल मास्टर ने संगीत दिया था। इसी कथा को 1947 में जी.आर. सेठी के निर्देशन में पुन: फिल्माया गया। 'सखी (उदार तथा परोपकारी) हातिम' 1956 में बनी तो वसंत पिक्चर्स ने होमी वाडिया के निर्देशन में 'हातिमताई' का निर्माण इसी वर्ष किया। 'हातिमताई की बेटी' शीर्षक से दो फिल्में क्रमश: 1940 तथा 1955 में बनीं। नानू भाई वकील ने 1955 में जब यह फिल्म बनाई तो उसमें नायक की भूमिका इस लाइन के चर्चित अभिनेता महिपाल को दी। तीन वर्ष बाद देसाई पिक्चर्स ने नानू भाई से एक अन्य फिल्म 'शान-ए-हातिम' बनवाई।

'अलिफ लैला' की ही भाँति प्रेम तत्त्व को प्रधानता देने वाली परी कथाएँ भी अरब कथा संसार की मुग्ध कर देने वाली कृतियाँ हैं। प्रेमचंद जैसे वरिष्ठ कथाकार अपनी किशोरावस्था में इन तिलिस्मी और जादुई कहानियों के आकर्षण का अनुभव कर चुके थे। सवाक् फिल्मों के प्रारंभिक वर्षों में 'गुल बकावली' की कथा को दो बार फिल्माया गया। सरोज मूवीटोन तथा मद्रास सिने कॉर्पोरेशन ने इस कथा पर दो लोकप्रिय फिल्में बनाईं। 'गुल सनोवर' को लेकर इंपीरियल फिल्म कंपनी ने 1934 में जो फिल्म बनाई, उसमें उस जमाने की सिद्धहस्त अभिनेत्री सुलोचना (रूबी मायर्स) तथा पुरुष पात्र बिलिमोरिया थे। 'गुल सनोवर' को 1953 में पुन: रजत पट पर लाया गया। इस बार निर्देशन का कार्य अस्पी ईरानी ने किया था। वस्तुत: 'गुल सनोवर' और 'गुले बकावली' में नायक-नायिका के मिलन में किसी दिव्य पुष्प को प्राप्त करने का पुरुषार्थ नायक की कसौटी बनता है। 'चहार दरवेश' की कथा पर राधा फिल्म्स, कलकत्ता ने 1933 में जो फिल्म बनाई, उसका निर्देशन प्रफुल्ल घोष ने किया था तथा नायक एवं नायिका थे त्रिलोक कपूर और कानन देवी।

अरब कथाओं ने बगदाद, बसरा, इस्फहान आदि मध्य एशिया के नगरों के मध्यकालीन जनजीवन को साकार किया था। भारतीय दर्शक के लिए यह सब रोमांचक, दिव्य तथा कल्पना के निराले संसार में पहुँचा देने वाली सृष्टि थी। बगदाद की खूबसूरत हूरों, वहाँ के चोरों-उच्चकों के कारनामों, शाहजादों और शाहजादियों के क्रीड़ा-विलास को साकार करने में इन फिल्मों तथा इनके बनाने वालों की कारगुजारियों को दर्शकों ने दाद देकर देखा था। अत: अनेक स्वतंत्र कथानकों वाली ऐसी फिल्में बनीं, जिनमें बगदाद शहर तथा अरब देशों के अहवाल को अत्यंत रोचक ढंग से यथार्थ का पुट देकर प्रस्तुत किया गया था। इन फिल्मों के नाम ही दर्शक समुदाय में पुलक का भाव भर देते थे। 'बगदाद की रातें' (1962 में महिपाल और शकीला को लेकर बनाई फिल्म) में नाना भाई भट्ट का निर्देशन यदि इराक की राजधानी के यौवन और विलास से भरे वातावरण का चित्रण करती है तो 'बुलबुले बगदाद' (1932) तथा 'हूरे-बगदाद' (1934) में ईरानी-इराकी रमणियों के उद्दाम सौंदर्य और यौवन को दिखाया गया था। 'थीफ ऑफ बगदाद' (1934), 'बगदाद का चोर' (1946 तथा 1955), 'शेरे-बगदाद' (होमी वाडिया द्वारा 1946 में निर्मित), 'बगदाद का जादू' (1956) जैसी फिल्मों के नाम उनकी कथा तथा चरित्र को उजागर करने वाले हैं।

केवल 'बगदाद' शीर्षक से भी दो फिल्में बनीं—एक 1952 में और दूसरी 1961 में मद्रास में बनाई गई। इसकी प्रमुख भूमिकाओं में स्व. एम.जी. रामचंद्रन (तमिलनाड के विगत मुख्यमंत्री तथा 'भारत रत्न' से सम्मानित) तथा प्रख्यात नर्तकी-अभिनेत्री वैजयंती माला थे।

'थीफ ऑफ तातार' (40), 'बसरे की हूर' (1956), 'नूरे-यमन' (1935 तथा 1956) के अलावा 'अरब का चाँद' (1946), 'अरब का सितारा' (1946) तथा 'अरब का लाल' (1969) शीर्षक फिल्मों ने भी अरब संसार की अच्छी-बुरी छवि को दर्शकों के आगे रखा। आज के दर्शक के लिए इन अरब कथाओं तथा इन पर आधारित फिल्मों का आकर्षण खत्म हो गया है। युग-परिवर्तन के साथ जीवन का फलसफा बदला और मूल्य भी बदले। परीकथाएँ तथा अरब राजकुमारों के किस्से आज के दर्शक को नहीं लुभाते। नतीजतन इन कथाओं का आधार लेकर बनी फिल्मों का आकर्षण कम हुआ है, विगत अनेक वर्षों से इनका निर्माण रुक गया है। यह दूसरी बात है कि पश्चिम की जासूसी तथा वैज्ञानिक वैचित्र्य को लेकर लिखी जाने वाली कहानियों के प्लॉट अभी भी हिंदी फिल्मों के लिए आधार बनते हैं।

❑

49

पंजाब की प्रेम कथाएँ और हिंदी फिल्में

स्त्री-पुरुष के बीच का रतिभाव तथा एक-दूसरे के प्रति प्रेमासक्ति अनादि काल से कवियों और कलाकारों के लिए प्रेरणास्रोत रही हैं। संसार के सभी देशों में जो प्रेम कथाएँ प्रचलित रहीं हैं, उन्हें यदि कवियों और लेखकों ने अपने शब्दों में बाँधा है तो नाटककारों तथा फिल्म निर्माताओं ने उन्हें अभिनय के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। पंजाब भारत का शीर्षस्थ प्रदेश है, जहाँ के लोक जीवन में प्रचलित प्रेमाख्यानों ने शताब्दियों से मनुष्य के भावुक मन को आह्लादित किया है तथा उसके हृदयस्थ प्रेम, करुणा, सहृदयता तथा संवेदना जैसी मानवीय भावनाओं का परिष्कार किया है। हिंदी के फिल्म-निर्माताओं ने आरंभ से ही इन कथानकों को लेकर फिल्में बनाई हैं। दृश्य और श्रव्य का अपूर्व संगम फिल्मों में देखने को मिलता है, यही कारण है कि जिन लोगों ने पंजाब की इन प्रेम कहानियों तथा उनसे संबद्ध लोक काव्यों को नहीं पढ़ा, वे भी इन कथाओं के आधार पर बनी फिल्मों से पर्याप्त मनोरंजन करते हैं तथा सांसारिक व्यथा-कथाओं को क्षण भर के लिए भूल जाते हैं।

पंजाब की इन प्रेम कहानियों में 'हीर-राँझा', 'सोहनी-महिवाल', 'मिर्जा-साहेबा' तथा 'सस्सी-पुन्नू' सर्वाधिक चर्चित रही हैं। 1947 में देश के विभाजन के बाद यद्यपि अविभाजित पंजाब दो पृथक् राज्यों में बँट गया, वहाँ के नागरिकों की राष्ट्रीयता बदल गई, जीवन और संस्कृति के समीकरण बदल गए, किंतु उपर्युक्त प्रेम कथाएँ दोनों देशों के लोगों की साँझी विरासत के रूप में आज भी उनकी अनमोल थाती बनी हुई हैं। लोककाव्य की हीर हिंदू थी जब कि उसका प्रेमी राँझा मुसलमान था। पंजाब के मुसलिम सूफी संत वारिस शाह ने 'हीरा-राँझा' को काव्य का विषय बनाकर तथा उसे लौकिक प्रेम से हटाकर उच्च आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित कर दिया। राँझा साधु के से गेरुए वस्त्र पहनता है, कृष्ण की भाँति बाँसुरी बजाता है तथा मंदिर में रहता है। अपनी भाभियों के अत्याचारों से त्रस्त राँझा ने अपने घर को तो पहले ही अलविदा कह दिया था। हीर से उसकी मुलाकात एक नाव पर हुई और उसके मधुर वंशी वादन ने हीर और राँझा को प्रेम सूत्र में बाँध दिया। राँझा हीर के घर में नौकर बनकर रहने लगा किंतु जब घर वालों को दोनों के प्रेम-संबंध का पता चला तो उन्होंने हीर का विवाह एक धनी जमींदार से कर दिया। प्रिय वियोग में राँझा जोगी बन जाता है। मिलन का अवसर तो आता है किंतु हीर के विद्वेषी चाचा ने उसे विष देकर मार डाला। राँझा भी प्रेयसी के वियोग को झेलने में असमर्थ होकर छुरे से अपना प्राणांत कर लेता है।

'हीर राँझा' की यह मार्मिक प्रेम कहानी बोलती फिल्मों के आरंभ काल से ही निर्माताओं के आकर्षण में आ गई। 1931 में बंबई की कृष्णटोन कंपनी ने इस कथा को लेकर फिल्म बनाई, जिसका निर्देशन जे.पी. एडवानी ने किया था और जिसे संगीत से सजाया था बी.आर. देवधर ने। इस फिल्म में शांता कुमारी ने हीर का रोल किया, जबकि

मास्टर फकीर राँझा की भूमिका में उतरे। स्मरणीय है कि प्रसिद्ध अभिनेत्री मीनाकुमारी के पिता मास्टर अलीबख्श भी इस फिल्म के गीतों के गायक थे।

अगले वर्ष 1932 में लाहौर की संस्था ले आर्ट फोटोटोन कॉरपोरेशन ने प्रसिद्ध निर्देशक ए.आर. कारदार के निर्देशन में 'हीर-राँझा' का एक अन्य संस्करण तैयार किया। इसका संगीत रफीक गजनवी ने तैयार किया था तथा रफीक और अनवरी मुख्य भूमिकाओं में थे। देश-विभाजन के तुरंत बाद 1948 में पंजाब फिल्म कारपोरेशन ने 'हीर-राँझा' पर फिल्म बनाई, जिसके निर्देशक तथा गीतकार वली साहब थे। वर्माजी-शर्माजी तथा अज़ीज खाँ ने मिलकर इसमें संगीत दिया। प्रख्यात अदाकारा मुमताज शांति हीर बनी तथा राँझा की भूमिका में आए थे गुलाम मोहम्मद। 1956 में केवल 'हीर' नाम की फिल्म ब्राइट लाइट प्रोडक्शन बंबई ने बनाई। मनमोहन साबिर इसके निर्देशक थे तथा सुरेश तलवार एवं शंकर दास गुप्ता ने मिलकर इसमें संगीत दिया था। एस.डी. बातिश तथा आशा के गाए गीतों ने इस प्रेमाख्यान को दर्शकों में अपार लोकप्रियता दिलाई। गीता बाली, जयराज, जानकीदास और प्राण जैसे समर्थ कलाकारों ने इसमें विभिन्न रोल किए थे। हिमालय फिल्म्स के बैनर तले प्रसिद्ध निर्माता चेतन आनंद ने 1970 में एक बार पुन: 'हीर-राँझा' को रजत पट पर पेश किया। इसका संगीत दिया था मदन मोहन ने और गीत रचना थी उर्दू के प्रसिद्ध शायद कैफी आजमी की। इस फिल्म में कलाकारों की एक भीड़ सी दिखाई पड़ी। राजकुमार, प्राण, अजीत, जयंत, नाना पलसीकर, सोनिया साहनी, कामिनी कौशल, अचला सचदेव, उल्हास, सप्रू, टुनटुन और तबस्सुम के अतिरिक्त कैफी आज़मी की पत्नी शौकत आजमी ने भी इसमें एक भूमिका की थी, और हीर का पार्ट अदा किया था प्रिया राजवंश ने।

प्रेम की मार्मिकता तथा बलिदान को 'सोहनी-महिवाल' की लोककथा ने सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति दी है। कुम्हार की बेटी सोहनी भरे तूफान में नदी पार करती है। बुखारे का जौहरी इज्जतबेग पहली मुलाकात में ही उसे दिल दे बैठता है। वह कुम्हार के घर में भैंसों की देख-रेख का काम करने लगता है और सुदूरवर्ती मध्य एशिया वासी होने पर भी पंजाबी संस्कृति में स्वयं को रंग लेता है। दोनों के प्यार की चर्चा होने लगती है तो सोहनी का पिता गाँव के एक अन्य युवक तुल्हा से उसका विवाह कर देता है। इज्ज़तबेग (महिवाल) नदी के दूसरे किनारे पर चला जाता है और प्रेम के बंधन में बँधी सोहनी मिट्टी के घड़े की सहायता से चिनाब नदी को पार कर उससे मिलने आती है। एक रात ननद को भावज सोहनी के इस अभिसार (प्रिय मिलन) का ज्ञान होता है तो वह पक्के घड़े की जगह कच्चा घड़ा रख देती है। नतीजतन सोहनी का सहारा वह घड़ा फूट जाता है। सोहनी सहायता के लिए प्रिय को पुकारती है। महिवाल लहरों को चीरता प्रेयसी के निकट आता है किंतु दोनों ही जल समाधि ले लेते हैं। पंजाब के प्रसिद्ध त्योहार बैसाखी पर 'सोहनी-महिवाल' की दर्द भरी कहानी को सुनाया जाता है। इसका कथानक लोकमंचों पर अभिनीत होता है तथा युवा-युवती अपने प्रेम को सोहनी-महिवाल में चरितार्थ हुआ देखते हैं।

सन् 1933 में बंबई के शारदा मूवीटोन ने 'सोहनी महिवाल' को प्रथम बार रजत पट पर उतारा। इस फिल्म का निर्देशन एच.एस. मेहता ने किया था और पटकथा लेखन उर्दू लेखक मुंशी आसिफ ने किया। गौहर कर्नाटकी (प्रसिद्ध गायिका अमीरबाई कर्नाटकी की बड़ी बहिन) तथा बापूराव आप्टे क्रमश: नायिका और नायक की भूमिकाओं में थे। 1946 में जयंत देसाई प्रोडक्शन ने ईश्वरलाल तथा रवींद्र जयकर के संयुक्त निर्देशन में 'सोहनी-महिवाल' को एक बार पुन: फिल्म के रूप में पेश किया। इस फिल्म में संगीत दिया लाल मोहम्मद ने तथा स्वामी रामानंद इसके गीतकार थे। जोहराबाई अंबालावाली तथा दुर्रानी के गाए इस फिल्म के गीतों ने लोकप्रियता पाई। बेगम पारा तथा ईश्वरलाल के अलावा दीक्षित और मुबारक ने भी इसमें काम किया था। चौधरी ब्रदर्स ने राजा नवाथे के निर्देशन में 'सोहनी-महिवाल' का पुन: निर्माण किया और नौशाद ने इसे संगीत से सजाया। लता और

मोहम्मद रफी के गाए गीतों ने 'सोहनी-महिवाल' के प्रेम को जन-जन तक पहुँचाया। इस फिल्म में निम्मी और भारतभूषण ने मुख्य भूमिकाएँ निभाईं, जबकि अचला सचदेव तथा हास्य कलाकार मुकरी के अभिनय को सराहा गया। फिल्मों की तकनीक में उत्तरोत्तर विकास होता गया। 1980 के दशक में सन्नी देओल तथा पूनम ढिल्लों को लेकर जब 'सोहनी महिवाल' का निर्माण किया गया तो इस फिल्म ने सफलता की ऊँची मंजिल को छुआ।

मिर्जा और साहेबा की प्रेम कहानी का घटनाचक्र पाकिस्तान के कस्बे झंग से जुड़ा है। मिर्जा और साहेबा का परस्पर प्रेम स्कूल के दिनों से ही परवान चढ़ने लगा था। मिर्जा का पिता अपने लड़के को स्कूल से हटा लेता है। तब दोनों प्रेमी रिश्ते की एक चाची के यहाँ मिलते हैं। एक दिन मिजा घोड़े पर बैठकर साहेबा को लेने बाग में आता है। उधर साहेबा के सातों भाई उसका पीछा करते हैं। मिर्जा एक झाड़ी में छिप जाता है। अंत में मिर्जा और साहेबा के भाइयों में लड़ाई छिड़ जाती है। अपनी प्रेयसी को दिए हुए वचन का पालन करते हुए मिर्जा आक्रमण का प्रतिकार नहीं करता, खुद घायल होकर गिर पड़ता है। साहेबा भी खुद को छुरा मार लेती है और इस प्रकार प्रेमी युगल अपना अंत स्वयं कर लेता है। सागर मूवीटोन ने 1933 में मिर्जा-साहेबा की प्रेम कहानी को सर्वप्रथम परदे पर पेश किया। इस फिल्म के निर्देशक नागेंद्र मजूमदार, संगीतकार, एस.पी. राने तथा कथा लेखक रामदास आजाद थे। नूरजहाँ, दिनकर, महबूब आदि कलाकारों ने इसमें प्रमुख भूमिकाएँ निभाई थीं। मधुकर पिक्चर्स ने 1940 में नूरजहाँ और त्रिलोक कपूर को साहेबा और मिर्जा की भूमिकाओं में उतारकर इसी नाम की फिल्म बनाई। इसके निर्देशक के. अमरनाथ थे, जबकि पं. अमरनाथ तथा हुस्नलाल भगतराम ने इसमें संगीत दिया। इस फिल्म का संगीत अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त कर सका, क्योंकि इसमें जोहराबाई अंबालावाली, शमशाद बेगम तथा खुद नूरजहाँ जैसी विख्यात गायिकाएँ थीं। नूरजहाँ के गाए जिन गीतों ने विशेष लोकप्रियता अर्जित की, वे थे—'आ जा तुझे अफसाना जुदाई का सुनाएँ' तथा 'क्या यही तेरा प्यार था।'

1957 में बंबई की जे.के. फिल्म्स ने झंग (पाकिस्तान) के इन प्रेमियों को एक बार पुन: फिल्म के माध्यम से पेश किया। रवि कपूर के निर्देशन में तैयार हुई इस फिल्म का संगीत सईद क्वात्रा ने दिया था। मोहम्मद रफी तथा शमशाद बेगम ने गीतों को आवाज दी तथा श्यामा और शम्मी कपूर मुख्य भूमिकाओं में आए।

सस्सी-पुन्नू की प्रेम कहानी भी पंजाब की धरती में गहराई से रची-बसी है। सस्सी एक हिंदू लड़की है, जिसे एक मुसलमान धोबी पालता है। उसका प्यार एक भोले युवक पुन्नू से होता है, जबकि गाँव के कई युवक उसे अपनाना चाहते हैं। सस्सी पुन्नू की लोककथा संगीत के राग मुल्तानी काफी में जब गाई जाती है तो वह श्रोताओं को अश्रुसिक्त कर देती है। पुन्नू ने मिट्टी के टीले पर अपनी जान दे दी, जहाँ दुलहन के वस्त्र पहने सस्सी ने अपने प्राण त्यागे थे।

'सस्सी-पुन्नू' को 1932 में शारदा मूवीटोन ने रजत पट पर पर पेश किया। नागेंद्र मजूमदार के निर्देशन तथा बी.आर. देवधर के संगीत ने इस फिल्म को सफल बनाया था। गीतकार थे मुंशी आसिफ। मिस मोती, शिवरानी तथा बी.आर. आप्टे जैसे कलाकारों को आज की पीढ़ी सर्वथा भूल चुकी है। 1933 में इस कथा को महालक्ष्मी सिनेटोन ने 'बुलबुले पंजाब' उर्फ 'फेयरी ऑफ पंजाब' के नाम से फिल्माया। कथालेखक तथा निर्देशक थे नानू भाई वकील तथा संगीतकार थे एस.पी. राने। गीत लेखन प्रसिद्ध कवि अनुज ने किया था। जुबेदा, शाहू मोडक, याकूब तथा शाहजादी ने इसमें प्रमुख भूमिकाएँ की थीं। 1935 में इस कथा को 'सस्सी' नाम से एवरेडी प्रोडक्शन ने फिल्माया। दाउद चाँद के निर्देशन तथा जी.ए. चिश्ती के संगीत ने फिल्म को पहचान दी। 1946 में वासवानी आर्ट प्रोडक्शन ने 'सस्सी-पुन्नू' को एक बार और फिल्म का रूप दिया। निर्देशक जे.पी. एडवानी, संगीतकार पं. गोविंदराम कपूर तथा गीत लेखक ईश्वरचंद्र कपूर की तिकड़ी ने इस फिल्म को सफल प्रेमकथा का रूप दिया। इसके कलाकारों में

जयराज, गोप और यशोधरा काटजू थे, जबकि पार्श्वगायन जोहराबाई तथा जी.एम. दुर्रानी का था।

लोक जीवन पर आधारित इन प्रणय कथाओं के प्रति आज भी सामान्य जन आकर्षण अनुभव करते हैं।

❑

50

कथा शिल्पी शरत और सिने जगत्

देश-विदेश की श्रेष्ठ कथाकृतियों को लेकर फिल्में बनाना कोई नई बात नहीं है। भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में अन्यतम बँगला भाषा का कथा साहित्य प्रत्येक दृष्टि से श्रेष्ठ है और इसमें शरतचंद्र की औपन्यासिक रचनाएँ बँगला साहित्य का शिरोभूषण हैं। शरत के लिखे उपन्यासों तथा लंबी कहानियों पर बनाई गई फिल्मों की संख्या अधिकतम है। एक अन्य बात यह है कि शरत के उपन्यासों पर जहाँ बँगला में अधिसंख्य फिल्में बनीं, वहाँ हिंदी में भी ऐसी फिल्मों की संख्या काफी है तथा वे लोकप्रियता की कसौटी पर खरी उतरी हैं।

शरत की रचनाओं पर फिल्मों का निर्माण मूक चलचित्रों के युग में ही हो चला था। उनकी एक कहानी 'आंधारे आलो' (अंधकार और प्रकाश) पर सर्वप्रथम 1923 में एक मूक फिल्म बनी। इसके निर्माण में खुद शरत बाबू ने रुचि ली। वे चाहते थे कि फिल्म बनाते समय कथा के मूल भाव को कोई क्षति न पहुँचे। जब यह चित्र तैयार हो गया तो कलकत्ता के मनमोहन थियेटर में उसका प्रदर्शन हुआ। बँगला में शरत की कथाओं पर जो चित्र बने, उनमें से अधिकांश में नायिका की भूमिका कानन बाला ने की थी। ऐसी फिल्में थीं—'मेज दीदी', 'दर्पचूर्ण' तथा 'नव विधान'। जब न्यू थियेटर्स ने बँगला के साथ-साथ हिंदी में भी 'देवदास' बनाने का निश्चय किया तो पहले पारो की भूमिका में कानन को लेने का विचार था। किंतु उस समय वे राधा फिल्म कंपनी में अनुबंध के आधार पर कार्य कर रही थीं। अत: एक अन्य अभिनेत्री जमुना को पारो की भूमिका में लाया गया। शरत के विख्यात आत्मकथात्मक शैली के उपन्यास 'श्रीकांत' पर तो बँगला में अनेक फिल्में बनीं। उपन्यास के नायक श्रीकांत के बचपन के साथी इंद्रनाथ को लेकर इसी नाम की फिल्म बनी। बाद की घटनाओं पर आधारित 'उन्नदा दीदी' तथा 'अभया' (उपन्यास के दो नारी पात्र) शीर्षक दो फिल्में इसी शृंखला की कड़ियाँ थीं।

इसी तरह न्यू थियेटर्स के संस्थापक बी.एन. सरकार के मन में हिंदी में जब 'देवदास' पर फिल्म बनाने का विचार आया तो वे निर्देशक प्रमथेशचंद्र बरुआ को लेकर शरत बाबू के पास गए। सरकार महाशय का शरत से सौहार्द भाव था। न्यू थियेटर्स ने उनकी एक अन्य कृति 'देना पावना' का निर्माण कर अपनी फिल्म यात्रा आरंभ की थी। जब बरुआ ने उनसे 'देवदास' के निर्माण की अनुमति चाही तो शरत ने साफ इनकार करते हुए कहा, ''मेरा देवदास भीषण भावुक है। रजत पट पर उसका चरित्रांकन सहज नहीं है। मैं किसी को भी इसकी इजाजत नहीं दे सकता। मेरे और भी उपन्यास हैं, उनमें से कोई सा चुन लो।'' कहते हैं कि उस समय शरत ने यह जानकारी भी चाही थी कि वे देवदास की भूमिका किसे देना चाहते हैं। न्यू थियेटर्स में कार्यरत के.एल. सैगल को जब उनसे मिलवाया गया तो वे तुरंत सहमत हो गए। फलत: 1935 में बनी 'देवदास' फिल्म में दर्शकों को सैगल की अभिनय तथा गायन प्रतिभा दोनों का परिचय मिला। इसमें सैगल के गाए दो गीत तो चिरंतन से बन गए—'बालम आय बसो

मोरे मन में' तथा 'दुख के दिन अब बीतत नहीं।' इन गीतों ने असफल प्रेमी देवदास की पीड़ा को साकार किया।

बँगला 'देवदास' के निर्माण में तो शरत बाबू ने व्यक्तिगत रुचि ली। शूटिंग के समय वे खुद स्टूडियो में उपस्थित रहते। किंतु उन्हें शीघ्र ही विश्वास हो गया कि गौरीपुर के जमींदार का बेटा प्रमथेश बरुआ पूरी ईमानदारी के साथ फिल्म निर्माण में लगा है। 'देवदास' के मार्मिक और भावुकतापूर्ण स्थल पूरी सावधानी तथा सतर्कता से बनाए गए। अंतत: 'देवदास' फिल्म दर्शक समाज के सामने आई। बरुआ आग्रहपूर्वक शरत बाबू को फिल्म दिखाने के लिए लाए। पूरी फिल्म देखकर देवदास के विधाता को पूर्ण संतुष्टि हुई। न्यू थियेटर्स को उन्होंने अपने अन्य उपन्यासों पर फिल्म बनाने के अधिकार सौंप दिए। यों तो शरत की अनेक कथाकृतियों पर फिल्में बनी हैं, किंतु 'भीषण भावुक देवदास' ने जो यश उपार्जित किया, वह अकल्पनीय था। ब्रह्मसमाज की छद्म पवित्रावादी विचारधारा पर तीखे व्यंग्यों का प्रहार करते हुए शरत ने अपना उपन्यास 'दत्ता' लिखा, जिसमें नरेंद्र और विजया की प्रेम कथा धरती के भीतर बहती हुई स्रोतस्विनी की भाँति अप्रकट सी रहती है। न्यू थियेटर्स ने इस उपन्यास को लेकर बँगला में फिल्म बनाई। इसका प्रदर्शन 1936 में हुआ। 'दत्ता' को हिंदी में 'विजया' नाम से फिल्माया गया है। 1943 में न्यू थियेटर्स ने 'गृहदाह' उपन्यास की कथा को लेकर फिल्स 'मंजिल' बनाई। 'गृहदाह' का कथानक मानव मन की दुरूह स्थितियों तथा अंतर्द्वंद्वों से आक्रांत है। तथापि इसमें फिल्मकार को सफलता मिली। प्रमुख पात्रों की भूमिका में जमुना, मलिना देवी, पृथ्वीराज कपूर आदि कलाकार थे। बाल मनोविज्ञान का सूक्ष्म, भावनापूर्ण तथा संवेदनशील चित्रण करने वाली दीर्घ कथा 'रामेर सुमति' को 1949 में फिल्म का रूप दिया गया। न्यू थियेटर्स की 'छोटा भाई' शीर्षक इस फिल्म का निर्देशन कार्तिक चटर्जी ने किया था। मलिना देवी ने इसमें भाभी की भूमिका की थी। सौतेले देवर को माँ जैसा वात्सल्य देने वाली भाभी तथा उसके पति का सौतेला भाई राम इस कथा के प्रधान पात्र हैं। 'रामेर सुमति' की कथा को एकाधिक बार फिल्म का रूप दिया गया है।

'बड़ी दीदी' शरत की एक मार्मिक कथाकृति है। न्यू थियेटर्स ने 1939 में इसको फिल्माया। मुख्य भूमिका में मलिना देवी तथा पहाड़ी सान्याल थे। इसके गीत केदार शर्मा ने लिखे थे तथा पंकज मलिक संगीतकार थे। 'मँझली दीदी' पर भी पहले एक फिल्म बन चुकी है। 1967 में प्रसिद्ध निर्देशक हृषीकेश मुखर्जी ने धर्मेंद्र तथा मीना कुमारी को लेकर 'मँझली दीदी' का निर्माण किया। इसके दो वर्ष बाद नवीन सूरी ने 'बड़ी दीदी' को लेकर एक अन्य फिल्म बनाई। इसके मुख्य कलाकार थे जितेंद्र और नंदा। भोले-भाले, अपनी भलाई-बुराई, हानि-लाभ, मान-अपमान को न समझने वाले, अपनी ही दुनिया में खोए रहने वाले पात्रों की एक निराली सृष्टि शरत के उपन्यासों में दिखाई पड़ती है। 'बड़ी दीदी' का पुरुष पात्र सुरेंद्रनाथ ऐसे ही कल्पना लोक का प्राणी है। अभिनेता जितेंद्र ने इस पात्र को कुशलता से जिया है।

प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक बिमल राय ने शरत की कृतियों पर दो फिल्में बनाई हैं। 'परिणीता' का निर्माण 1953 में हुआ, जिसमें अशोक कुमार तथा मीना कुमारी के सफल अभिनय ने इस फिल्म को फिल्मफेयर पुरस्कार दिलवाया। एक वर्ष बाद 1954 में उन्होंने 'बिराज बहू' में कामिनी कौशल तथा अभि भट्टाचार्य को मुख्य भूमिकाओं में पेश किया। बिमल राय का यह शरत प्रेम यहीं समाप्त नहीं हुआ। उन्होंने 'देवदास' को एक बार पुन: रजत परदे पर लाने का विचार किया। 1935 में जब न्यू थियेटर्स ने 'देवदास' का निर्माण किया था, तब फिल्म तकनीक अपनी आरंभिक अवस्था में थी। अब बीस वर्ष बाद जब फिल्म निर्माण कला पर्याप्त उन्नत हो चुकी थी, तब 'देवदास' को चारुतर रूप में प्रस्तुत करना अधिक सहज तथा सरल था। इस बार जब पात्रों के चुनाव का सवाल आया तो प्रेम की पीड़ा को व्यक्त करने में कुशल दिलीप कुमार को देवदास की भूमिका के लिए उपयुक्त समझा गया। बंगाल की अभिनेत्री सुचित्रा सेन ने पारो की भूमिका ली, किंतु चंद्रमुखी की संवेदनशील भूमिका के

लिए वैजयंती माला को चुना गया। बाईजी के कोठे पर वारांगना के नृत्य को पेश करने के लिए नृत्यकला कुशल वैजयंतीमाला से अधिक उपयुक्त अन्य कौन थी? बरुआ ने जब बीस वर्ष पहले 'देवदास' बनाई थी, तब भी शरत ने चंद्रमुखी तथा चुन्नीलाल की भूमिकाओं को महत्त्वपूर्ण बताया था। इस तथ्य को ध्यान में रखकर बिमल राय ने चुन्नी बाबू के लिए मोतीलाल जैसे प्रतिभाशाली अभिनेता को चुना, जिसने पियक्कड़ होने पर भी अपने मित्र देवदास के प्रति परिपूर्ण कर्तव्य भावना दिखाई है।

मातृ वात्सल्य का चित्रण करने में शरत की कथा 'बिंदुर छेल्ले' (बिंदो का लल्ला) का विशिष्ट स्थान है। बिंदु का अपना कोई पुत्र नहीं है। वह अपनी जिठानी के पुत्र के प्रति जैसा स्नेह रखती है, वैसा कोई सगी माँ भी शायद ही रखती होगी। निर्देशक के.बी. तिलक ने इसी कहानी को 1971 में 'छोटी बहू' के नाम से फिल्माया। मुख्य भूमिका में राजेश खन्ना और शर्मिला टैगोर थे। 1977 में शरत के लघु उपन्यास 'स्वामी' को बासु चटर्जी ने इसी नाम से फिल्माया। वाग्दान के तुरंत पश्चात् पति द्वारा परित्यक्त पत्नी को उसका 'स्वामी' पुनः अपना ले, इससे बढ़कर सुखद प्रसंग दांपत्य जीवन में और क्या हो सकता है। शबाना आजमी, गिरीश कर्नाड तथा उत्पल दत्त जैसे स्थापित कलाकारों ने 'स्वामी' की सफलता को सुनिश्चित कर दिया था। बासु चटर्जी ने ही 1980 में शरत की एक अन्य पारिवारिक कथा 'निष्कृति' को 'अपने पराए' नाम से फिल्माया। यहाँ सौतेले किंतु निठल्ले, अकर्मण्य तथा स्वयं को सर्वथा अपदार्थ समझने वाले छोटे भाई की भूमिका अमोल पालेकर ने अत्यंत कुशलता से अभिनीत की है। उसकी पत्नी की भूमिका शबाना आजमी तथा बड़े भाई की भूमिका में गिरीश कर्नाड का अभिनय भी अत्यंत सफल रहा।

यह तो रही शरत की कथाकृतियों पर बनाई गई फिल्मों की बात; दूरदर्शन ने भी शरत के अनेक उपन्यासों पर सफल धारावाहिक बनाए हैं। 'श्रीकांत' में फारूख शेख तथा सुजाता मेहता ने श्रीकांत तथा राजलक्ष्मी की सफल भूमिका की है। विशालकाय कथाकृति 'चरित्रहीन' को भी धारावाहिक के रूप में पेश किया गया। इसके बाद शरत की सर्वाधिक जटिल तथा दार्शनिक बहस से भरी कृति 'शेष प्रश्न' पर भी धारावाहिक बना। नारी की स्वतंत्रता के सवाल को 'शेष प्रश्न' की कमल ने अत्यंत मुखर भाव से उठाया है। उपन्यास को पढ़कर एक महिला ने शरत बाबू को लिखा था—''यदि उसके पास काफी पैसा होता तो वे इसे बाइबिल की तरह छपवा कर बाँटती।'' 'शेष प्रश्न' को पढ़कर लेखक पर आरोप लगाया गया था कि वे पतिताओं का समर्थन करते हैं। उनका उत्तर था—''मैं समर्थन नहीं करता, केवल उनका अपमान करने को भी मेरा मन नहीं करता।'' शिवनाथ बाबू के शैव विधि से किए गए विवाह को लेकर जब आलोचना हुई तो शरत ने एक गोष्ठी में कहा, ''प्राचीन प्रथाओं को लेकर गर्व करने से बात नहीं बनेगी।'' वे स्वयं अनुभव करते थे कि 'शेष प्रश्न' से वे बहुतों को व्यथित करेंगे, किंतु उन्हें यह विश्वास था कि दस वर्ष बाद बंगाल के घर-घर में कमल जैसी नारियाँ पैदा हो जाएँगी। निश्चय ही 'शेष प्रश्न' शरत के विचार प्रधान उपन्यासों में शीर्ष स्थानीय है। अब यह दर्शकों पर ही निर्भर है कि वे इसके दूरदर्शन से किए गए प्रसारण को कहाँ तक सफल समझते हैं।

❑

51

फिल्मी गीतों में राष्ट्रीय भावना

बोलती फिल्मों के निर्माण के साथ-साथ फिल्म-निर्माताओं को गीतों तथा कथानक के द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त करने का सुनहरा अवसर मिला। 1931 में जब पहली सवाक् फिल्म 'आलमआरा' बनी, उस समय हमारे देश का राष्ट्रीय आंदोलन अपने यौवन पर था। एक वर्ष पूर्व महात्मा गांधी नमक सत्याग्रह के द्वारा जन-जन में स्वदेश प्रेम की ज्वलंत भावना उद्दीप्त कर चुके थे। फिल्मी गीतकारों, गायकों तथा संगीत निर्देशकों ने भी अवसर आने पर अपनी कला के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को जगाया। विदेशी दासता में जकड़े देशवासियों को अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी, अत: पुराकालीन उपाख्यानों को रजत पट पर उतारकर उनके द्वारा आजादी की तड़प को जन-जन तक पहुँचाने के लिए फिल्मकार प्रयत्नशील रहे।

जब वी. शांताराम ने 1933 में महाभारत के एक पात्र कीचक के द्वारा राजा विराट के राजमहल में दासी के रूप में अज्ञातवास बिताने वाली द्रौपदी के अपमान की कथा लेकर फिल्म 'सैरंध्री' (दासी) बनाई तो शासकों को यह भ्रांति हुई कि कहीं कीचक के अत्याचारों के बहाने ब्रिटिश सरकार के द्वारा निरीह भारतीय प्रजा पर किए जाने वाले अत्याचारों को तो नहीं दिखाया गया है। सवाक् फिल्मों के इस पहले दौर में 'नवभारत' (1934), 'वीर भारत' (1934) तथा 'जयभारत' (1936) जैसे शीर्षकों वाली फिल्में बनीं, जिसमें देशभक्ति के स्वर मुखर हुए थे। 1936 में बॉम्बे टॉकीज ने 'जन्मभूमि' नामक फिल्म बनाई, जिसके गीत देशभक्ति तथा राष्ट्रप्रेम के भावों से परिपूर्ण थे। इसमें मुख्य भूमिकाएँ अशोक कुमार तथा देविका रानी की थीं। गीतकार थे जमुना स्वरूप कश्यप 'नातवाँ', जिनकी लेखनी से 'गाँव की माटी मात हमारी', 'गई रात आया प्रभात हम निद्रा से जागे' तथा 'सेवा के हम व्रतधारी सेवा से नहीं हटेंगे' जैसे गांधीवादी आदर्शों से अनुप्राणित गीत निकले।

राष्ट्रवाद की भावना को अभिव्यक्ति देने में बॉम्बे टॉकीज की भूमिका प्रमुख रही। 1940 में बनी लोकप्रिय फिल्म 'बंधन' का गीत 'चल चल रे नौजवान' नवयुवकों को आजादी की संघर्षमयी डगर पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता था। 'रुकना तेरा काम नहीं, चलना तेरी शान' जैसी पंक्ति के लेखक प्रदीप राष्ट्र प्रेम से ओतप्रोत गीतों की रचना करने वाले कवियों की अग्रिम पंक्ति में थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की पढ़ाई खत्म कर वे ताजे-ताजे फिल्म लाइन में आए ही थे। गीत के जिन बोलों ने नौजवानों में उत्साह की लहर पैदा की, वे थे—

तू आगे बढ़े जा आफत से लड़े जा,
आँधी हो या तूफान,
रुकना तेरा काम नहीं, चलना तेरी शान।

इस गीत को श्रोताओं ने इतना पसंद किया कि दिल्ली के एक छविगृह में इस गीत के गाए जाने के बाद हॉल देर

तक तालियों की गड़गड़ाहट से गूँजता रहा। फिर वंस मोर का स्वर गूँजने लगा। जनता की इस माँग पर रील को पुन: चालू किया गया और गायक सुरेश, अशोक कुमार तथा साथियों की ओजस्वी स्वर लहरी गूँज उठी। जब प्रभात फेरियाँ निकाली जातीं तो आजादी की लड़ाई के सैनिक इस गीत को बार-बार गुनगुनाते थे।

1941 में बॉम्बे टॉकीज ने 'नया संसार' नामक एक फिल्म बनाई। इसमें हरिजनों के उत्थान के लिए किए गए महात्मा गांधी के प्रयत्नों को दिखलाया गया था। इसमें एक नृत्यगीत को उस काल की प्रसिद्ध नर्तकी अजूरी ने पेश किया, जिसमें दलित वर्ग की बालिका के मनोभावों को कवि प्रदीप ने शब्द दिए थे। नायक अशोक कुमार तथा नायिका रेणुका देवी ने एक अन्य गीत गाया, जिसमें स्वतंत्र देश का स्वप्न देखा गया था—

एक नया संसार बसा लें, एक नया संसार।
ऐसा इक संसार कि जिसमें धरती हो आजाद,
कि जिसमें जीवन हो आजाद,
कि जिसमें भारत हो आजाद,
जनता का हो राज जगत में जनता की सरकार,
जागे देश की गली-गली में नवयुग का त्योहार।

एक नया संसार बसा लें...

वह जमाना द्विवतीय महायुद्ध का था। देश के स्वतंत्र होने में अभी काफी बरस बाकी थे। उस दारुण दासता के युग में जनता के राज और जनता की सरकार की कल्पना करना दुष्कर था, किंतु गीतकार प्रदीप ने अपने गीत में इसे मूर्त रूप दिया था।

इसके बाद आया 1942 का साल, जब गांधीजी ने 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' का नारा दिया। ठीक एक साल बाद बॉम्बे टॉकीज ने ज्ञान मुकर्जी के निर्देशन में फिल्म 'किस्मत' बनाई। मुमताज शांति और अशोक कुमार की इस फिल्म ने बेहिसाब शोहरत पाई थी। फिल्म निर्माता और दादामणि अशोक के बहनोई शशधर मुकर्जी के विशेष अनुरोध पर इसमें एक ऐसा गीत रखा गया, जो 'भारत छोड़ो' की भावना को यथार्थत: प्रकट करता था। अमीरबाई कर्नाटकी तथा साथियों ने इस गीत को स्वर दिया, जिसके बोल थे—

आज हिमालय की चोटी से हमने फिर ललकारा है,
दूर हटो ए दुनिया वालो, हिंदुस्तान हमारा है।

गीत के भाव स्पष्ट थे। इसमें देश की सामासिक संस्कृति तथा सर्वधर्म समभाव के आदर्शों की सुंदर अभिव्यक्ति हुई थी—

यहाँ हमारा ताजमहल है और कुतुब मीनारा है,
यहाँ हमारे मंदिर मसजिद सिक्खों का गुरुद्वारा है;
इस धरती पर कदम बढ़ाना अत्याचार तुम्हारा है।

इसके बाद की पंक्तियों में कवि देशवासियों से अपील करता है—

शुरू हुआ है जंग तुम्हारा जाग उठो हिंदुस्तानी,
तुम न किसी के आगे झुकना जर्मन हो या जापानी।
आज सभी के लिए हमारा ये ही कौमी नारा है। दूर हटो...

देशवासियों ने इस गीत को मुक्त भाव से अपनाया। सर्वत्र इसके बोल गूँज उठे। उन दिनों केंद्रीय सेंसर बोर्ड नहीं बना था, प्रत्येक प्रदेश की अपनी स्वतंत्र सेंसर व्यवस्था थी। इलाहाबाद के विश्वंभर पैलेस थियेटर में 'किस्मत' ने

रजत जयंती मनाई। एक अंग्रेज अधिकारी ने इस गीत के बोलों पर आपत्ति करते हुए कहा कि क्या इसमें भारत से ब्रिटिशों को दूर हटने के लिए नहीं कहा गया है? इस शिकायत का निवारण एक भारतीय अधिकारी ने इस प्रकार किया—''नहीं श्रीमन्, गीत में 'दूर हटो' शब्द तो जर्मन और जापानियों के लिए प्रयुक्त हुए हैं।'' बेचारा गोरा अफसर यह समझ ही नहीं सका कि प्रदीप का गीत 1942 के 'भारत छोड़ो' आंदोलन की पृष्ठभूमि में ही लिखा गया है।

'किस्मत' के ही एक अन्य गीत में देश की दुर्दशा तथा भारतवासियों पर होने वाले अत्याचारों के लिए विदेशी सत्ता को जिम्मेदार ठहराया गया था। किंतु इसी बात को इतनी खूबी के साथ कहा गया था कि प्रत्यक्षतया गीत के इस भाव को कठिनाई से ही पकड़ा जा सकता था। गीत था—

घर-घर में दीवाली है मेरे घर में अँधेरा।

गीत की कुछ निर्विवाद पंक्तियों के बाद गीतकार कहता है—

चारों तरफ लगा हुआ मीना बाजार है,
धन की जहाँ पै जीत गरीबों की हार है।
इनसानियत के भेस में फिरता है लुटेरा,
घर-घर में दीवाली है मेरे घर में अँधेरा।

यहाँ प्रयुक्त 'मीना बाजार' साम्राज्यवादी शासकों की शानो-शौकत तथा शोषण पर आधारित विलासपूर्ण जिंदगी का प्रतीक है, जबकि 'इनसानियत के भेस में फिरता है लुटेरा' अंग्रेजों द्वारा देश के धन और जन के निर्मम शोषण तथा लूट को रेखांकित करता है। 1943 में बंगाल में भयंकर दुष्काल पड़ा था, जब एक मुट्ठी अन्न के लिए भूखों ने अपनी संतानों को बेच दिया तथा बहू-बेटियों की लज्जा को चावल के चंद दानों के लिए दाँव पर लगाया गया। विदेशी शासन के इस क्रूर तांडव को देखकर कवि की आत्मा कराह उठी और तब गीत में गीतकार का आक्रोश इस प्रकार फूट पड़ा—

जी चाहता है संसार में मैं आग लगा दूँ।

अनिल बिस्वास के सशक्त संगीत निर्देशन में यह गीत गाया गया था।

1941 में मिनर्वा मूवीटोन के बैनर तले सोहराब मोदी ने 'सिकंदर' फिल्म बनाई। इसमें एक प्रभावशाली सैनिक प्रयाण गीत था—

जिदगी है प्यार से प्यार में लुटाए जा।
हुस्न के हुजूर में अपना सिर झुकाए जा।

गीत में आए 'प्यार' शब्द को देशप्रेम के अर्थ में लेना अधिक उपयुक्त है, क्योंकि यहाँ देश के सिपाही अपनी विजय-यात्रा पर निकले हैं।

इस गीत की आगे की पंक्तियाँ और भी सार्थक एवं व्यंजना प्रधान हैं—

जिंदगी है इक जुआ दूर से देखता है क्या,
आगे बढ़कर अपनी जान दाँव पर लगाए जा।
हँस के मात खाए जा...

गीतकार का भाव है कि जब जिंदगी ही एक जुआ है, जिसमें हार-जीत, सफलता-असफलता अनिश्चित रहती है तो क्यों नहीं देश के लिए हम अपनी इस जिंदगी को ही दाँव पर लगा दें। अहिंसा के पालन के द्वारा अत्याचारी के दमन को सहने का भाव 'हँस के मात खाए जा' में व्यक्त हुआ है। जब नेताजी सुभाष ने दूसरे महायुद्ध के दौरान

आजाद हिंद फौज का गठन किया तो 'सिकंदर' के उपर्युक्त गीत की तर्ज पर उन्होंने निम्न प्रयाणगीत को स्वीकृत किया था—

कदम कदम बढ़ाए जा खुशी के गीत गाए जा,
यह जिंदगी है कौम की तू कौम पै लुटाए जा।

लाहौर के दिलसुख पंचोली पिक्चर्स ने 1943 में 'पूँजी' शीर्षक एक फिल्म बनाई। इसमें एक स्वर्गगता माता की तस्वीर के आगे उसकी तीन पुत्रियों द्वारा गाया गया एक गीत रखा गया था, जिसके बोल थे—

माता अब जाग उठे हैं हम कुछ करके दिखा देंगे।
ए माँ ए माँ ए माँ तेरे कदमों में आकाश झुका देंगे।

निश्चय ही जन्म देने वाली हाड़-मांस-मज्जा वाली माँ के आगे आकाश को झुका देने की बात का कोई अर्थ नहीं है। ये उद्गार भारत माता के लिए ही प्रकट हुए हैं, क्योंकि आगे की पंक्तियों में भी ऐसे ही भाव स्पष्ट रूप से आए हैं—

वो राज जो तेरा था वो ताज जो तेरा था,
गैरों ने जो छीना था वो हम छीन के ला देंगे।

यहाँ तो शक की कोई गुंजाइश ही नहीं है, क्योंकि भारत माता के तख्तो-ताज को छीनने वालों का यहाँ स्पष्ट संकेत है।

1944 में रणजीत मूवीटोन ने फिल्म 'भँवरा' बनाई, जिसके गीत स्व. केदार शर्मा ने लिखे थे, जो एक सफल गीतकार के अलावा सफल निर्माता तथा निर्देशक भी थे। 'भँवरा' में सैगल का गाया एक गीत था—

ठुकरा रही है दुनिया हम हैं कि सो रहे हैं।
बरबाद हो चुके थे बरबाद हो रहे हैं।
सहमी हुई हैं देखो इस बाग की बहारें
फूलों को रौंदकर हम काँटों को बो रहे हैं।

गीत के ये शब्द देश की दुर्दशा को ही संकेतित करते हैं। अन्योक्ति के द्वारा कवि (गीतकार) ने बाग की बहारों के सहमने तथा फूलों के रौंदने का उल्लेख कर भारत की अधोगति को उभारा है।

आगे चलकर गीतकार हमें उद्बोधन तथा चेतावनी देता है—

यह वक्त है कि मिलकर बिगड़ी हुई बना लें,
यह वक्त कीमती है हम झगड़ों में खो रहे हैं।

देशवासियों की परस्पर फूट तथा सांप्रदायिक उपद्रवों की दर्दनाक तसवीर को गीतकार ने साफ उभारा है। किंतु इसके लिए हम किसे दोषी ठहराएँ? क्या हमारा ही यह दोष नहीं है कि हम आपस में लड़कर देश की नौका को डुबो रहे हैं—

गैरों से ना शिकायत गैरों से न गिला है।
हिंदोस्तान की नाव हिंदी डुबो रहे हैं।

इससे अधिक स्पष्टोक्ति क्या हो सकती है, जब गीतकार ने देश की दुर्दशा के लिए यहाँ के वासियों को ही उत्तरदायी ठहराया।

आजादी के पहले की फिल्मों में राष्ट्रीय भावना, देश की अधोगति तथा आजादी की ललक को ध्वन्यात्मक शैली में ही प्रस्तुत किया जाता रहा। यह उचित भी था, क्योंकि यदि साफ तौर पर कोई बात कही जाती तो सरकार का

कोप भाजन बनना पड़ता। तभी तो सोहराब मोदी द्वारा मुगल बादशाह जहाँगीर के न्याय को लेकर बनाई गई फिल्म 'पुकार' में पराधीन देश के जीवन की उस वाद्य यंत्र (साज) से उपमा दी गई है, जो बज तो रहा है किंतु जिससे कोई आवाज नहीं निकलती—

जिंदगी का साज भी क्या साज है,
बज रहा है और बेआवाज है।

सच है कि पराधीनता के पाशों में जकड़ा देश अपनी व्यथा-कथा को सुनाने में भी असमर्थ था।

1945 में शौकत हुसैन रिजवी (मलिका-ए-तरन्नुम के खिताब से नवाजी गई गायिका-अभिनेत्री नूरजहाँ के पति) ने मुसलिम सामाजिक जीवन को उजागर करने वाली फिल्म 'जीनत' का निर्माण किया। इसमें नारी के अभिशाप-ग्रस्त जीवन को दरशाने वाली पंक्तियाँ निम्न गीत में आईं—

बुलबुलो मत रो यहाँ आँसू बहाना है मना।
इस कफस के कैदियों को मुसकराना है मना।

किंतु नारी की गुलामी वाली जिंदगी को साकार करने वाली ये पंक्तियाँ पराधीनता के पिंजरों में बंद गुलाम देशों के नागरिकों की पीड़ा को भी व्यक्त करती हैं, जहाँ न तो आँसू बहाने की इजाजत है और न सिर उठाने की।

चालीस के दशक के अंतिम वर्ष 1940 में 'हिंद का लाल', 'हिंदुस्तान हमारा' तथा 'जय स्वदेश' जैसी फिल्मों का एक साथ बनना यह सूचित करता है कि फिल्म निर्माता अपनी कला सृष्टि को राष्ट्र जागरण के लिए समर्पित कर रहे थे। आजादी के लिए लगातार जूझते हुए भी जब देशवासी अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाते तो उनकी दृष्टि सहज ही परमात्मा की ओर उठ जाती है—

डगमग डोले देश की नैया, पार लगाओ कृष्ण कन्हैया।

('हिंद का लाल')।

'हिंदुस्तान हमारा' के गीतकार आरजू थे। उन्होंने देशवासियों की मनोदशा को इस प्रकार चित्रित किया—

तुम्हें क्या बताएँ कि क्या चाहते हैं?
दु:खी हैं दुखों की दवा चाहते हैं।

महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए खादी तथा चरखे के आंदोलन ने देशवासियों को स्वदेशी वस्तुओं को प्रयोग में लाने की प्रेरणा दी। गीतकार आरजू ने चरखे की महिमा का गीत लिखा—

चर्खा चल के काम बनाए,
चर्खा आए गरीबी जाए,
निकले चर्खे से जब तार।

इप्टा (इंडियन पीपल्स थियेटर एसोसिएशन) ने 1946 में ख्वाजा अहमद अब्बास के निर्देशन में फिल्म 'धरती के लाल' बनाई। सामाजिक चेतना तथा समाजवाद के विचारों से अनुप्राणित इस फिल्म को सच्चे अर्थों में जनवादी फिल्म कहा जा सकता है। इसकी गायिका मुमताज शांति अपने विचारों को प्रकट करने की स्वंतत्रता की वकालत करती है—

अब न जबाँ पर ताले डालो,
जी का हाल सुनाने दो।

1946 तक आते-आते देश के राजनैतिक क्षितिज पर छाया कुहासा दूर हो रहा था और आजादी की मंजिल करीब आ रही थी। गीतकारों में आत्मविश्वास बढ़ रहा था और वे निर्भीक होकर जन भावनाओं को गीतों के द्वारा प्रकट

कर रहे थे। 1948 में फिल्मिस्तान की फिल्म 'शहीद' बनी, जिसका संगीत गुलाम हैदर ने तैयार किया था। इसमें देश के लिए जान की कुर्बानी देने वाले नायक के जनाजे के दृश्य में गाए जाने वाले गीत की करुणापूर्ण पंक्तियों ने पैंसठ वर्ष पहले के दर्शकों की आँखों को तो गीला किया ही, आज भी इसे सुनकर हमारे नेत्र बरबस अश्रुसिक्त हो उठते हैं। मोहम्मद रफी, खान मस्ताना तथा साथियों ने सम्मिलित रूप में इसे गाया था।

वतन की राह में वतन के नौजवां शहीद हो।
पुकारते हैं ये जमी और आसमां शहीद हो। वतन की राह में...

वसंत देसाई के संगीत निर्देशन में 'हिंदुस्तान हमारा' शीर्षक फिल्म 1950 में बनी। इसमें डॉ. इकबाल के प्रसिद्ध गीत 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा' का भव्य प्रस्तुतीकरण किया गया। देश की आजादी के थोड़ा पहले नेताजी द्वारा गठित आजाद हिंद फौज के सेनानायकों तथा सिपाहियों को गिरफ्तार कर उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। आजाद हिंद फौज की वीरता के कारनामों को फिल्मिस्तान ने फिल्म 'समाधि' में चित्रित किया। इसमें मुख्य भूमिकाएँ अशोक कुमार तथा नलिनी जयवंत की थीं। इसके संगीतकार सी. रामचंद्र अच्छे निर्देशक होने के साथ-साथ अच्छे गायक भी थे, जो चितलकर के नाम से यदा-कदा गाते भी थे। आजाद हिंद फौज के प्रयाणगीत 'कदम-कदम बढ़ाए जा खुशी के गीत गाए जा' को सी. रामचंद्र ने 'समाधि' में भावपूर्ण अभिव्यक्ति दी थी। राष्ट्रभक्ति पूर्ण गीतों का सिलसिला यों तो 1947 के बाद के वर्षों में बनी फिल्मों तक चला, किंतु उनमें वैसी ऊष्मा, भावों की गहराई तथा अदाकारी के वैसे जौहर कम दिखाई पड़े, जो 1950 तक के राष्ट्रभक्तिपूर्ण गीतों में पाए गए थे।

❑

52

विगत युग की हिंदी फिल्म पत्रकारिता

फिल्म निर्माण कला ने अपनी शताब्दी पूरी कर ली किंतु हिंदी फिल्मों से जुड़ी पत्रकारिता ने अपनी आयु के 85 वर्ष पूरे किए हैं। हिंदी फिल्मों से जुड़े पत्रों के बारे में हम जब जानकारी लेते हैं तो पता चलता है कि उसका केंद्र दिल्ली रहा था, न कि फिल्म नगरी बंबई। यों फिल्मी पत्र बंबई तथा कलकत्ते से भी निकलते थे किंतु सबसे अधिक पत्रिकाएँ दिल्ली से निकलीं। गत शताब्दी के तीसरे दशक की समाप्ति तक फिल्म क्षेत्र में अच्छे परिवारों के शिक्षित तथा सुसंस्कृत व्यक्तियों का प्रवेश हो चुका था। हिमांशु राय, देवकी कुमार बोस, बीरेंद्र नाथ सरकार, मोहन भवनानी, प्रमथेशचंद्र बरुआ, पृथ्वीराज कपूर, जयराज, देविका रानी, दुर्गा खोटे तथा लीला चिटनिस जैसी हस्तियों के फिल्म लाइन में प्रवेश से उसे गरिमा मिली, उसके स्वरूप में निखार आया तथा समाज के प्रति दायित्व की भावना बढ़ी।

1931 में बंबई की इंपीरियल कंपनी ने 'आलमआरा' का निर्माण कर सिनेमा के मूक युग को समाप्त किया और सवाक् चित्रपटों का आविर्भाव हुआ। लोगों में फिल्मी कला और कलाकार, उसके निर्माण की प्रविधि तथा इसके विभिन्न आयामों को जानने की जिज्ञासा ने फिल्मी पत्रों को जन्म दिया। इसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त स्थान दिल्ली था। फिल्मों का निर्माण चाहे बंबई या कलकत्ता में होता रहा, किंतु हिंदीभाषी प्रांतों के लिए दिल्ली ही केंद्रीय नगर था। मुद्रण, ब्लॉक निर्माण तथा विज्ञापन कला की दृष्टि से भी दिल्ली अधिक सुविधाजनक था।

हिंदी की प्रथम फिल्मी पत्रिका 'रंगभूमि' थी, जिसका प्रकाशन साप्ताहिक रूप में 1932 में हुआ। इसका प्रकाशन त्रिभुवन नारायण बहल ने किया, जबकि संपादक थे नोतनचंद और लेखराम। यह पुरानी दिल्ली के कूचा घासीराम से निकलती थी। इसका वार्षिक मूल्य चार रुपए तथा एक प्रति का एक आना था। संपादकों ने साहित्यिक अभिरुचि पाई थी, अत: लेखन में परिष्कृत तथा सुष्ठु शैली का प्रयोग उनके लिए स्वाभाविक था। 'रंगभूमि' के संपादकीय 'अपनी बात' शीर्षक से लिखे जाते थे। विश्व चित्रपट से जुड़े परिचयात्मक लेख भी इसमें छपते थे। इस दृष्टि से 'सोवियत रूस का फिल्म इतिहास' शीर्षक लेख विचारणीय है, जो कई अंकों में छपता रहा। इस पत्र में फिल्मों की समीक्षाएँ भी छपती थीं। 'चांडाल चौकड़ी' उर्फ चार भोंदू एक हास्य फिल्म थी, जिसमें उस समय के चार प्रसिद्ध हास्य कलाकारों गौरी (घोरी), दीक्षित, केकी अडाजाणिया तथा बिलिमोरिया ने भाग लिया था। संगीत उस्ताद झंडे खाँ का था। 'रंगभूमि' ने इस फिल्म की विस्तृत समीक्षा छापी थी।

'रंगभूमि' में एक गॉसिप कॉलम भी रहता था, जो 'शैतान खबर लाया है' शीर्षक से छपता था। 'बुलबुले' शीर्षक से हास्य प्रधान टिप्पणियाँ 'कलमनट' लिखा करते थे। इसमें कविता, कहानी तथा धारावाही उपन्यास भी छपते थे, इस कारण रंगभूमि का साहित्यिक स्तर काफी ऊँचा रहता था। उर्दू काव्य के चुने हुए नमूने 'सुराही' स्तंभ में छपते थे। चकबस्त लखनवी, अकबर इलाहाबादी तथा मोमिन देहलवी का कलाम इस पत्र में प्राय: स्थान पाता था। सिनेमा से संबंधित लोगों का जीवन-वृत्त छापना भी 'रंगभूमि' की विशेषता थी। फिल्म निर्देशक भगवतीप्रसाद मिश्र, हास्य कलाकार घोरी, निर्देशक कपूर, मिस जेबुन्निसा आदि के परिचय 'वे कौन हैं' शीर्षक से छपे थे। घोरी का परिचय देते हुए लक्ष्मणस्वरूप त्रिपाठी बताते हैं कि 1901 में लाहौर के एक अफगानी खानदान में जनमे गौरी ही फिल्मी जगत् के लोकप्रिय हास्य अभिनेता घोरी हैं, क्योंकि उर्दू में गौरी लिखने पर गौ के नीचे नुक्ता लगता है और जब इसे रोमन में लिखा जाता है तो 'जी' के साथ एच लगाते हैं। अत: उर्दू का गौरी प्रचलन तथा बोलचाल में घोरी

हो गया।

'रंगभूमि' में प्रकाशित सामग्री को देखने से पता चलता है कि वह एक उच्च स्तरीय पत्र था। उसके कतिपय लेखों के शीर्षक थे—'सामाजिक चित्रपट', 'हमारे चित्रपटों के दोष', 'अभिनय कला', 'क्या चलित चित्र शिक्षा के साधन हैं?' आदि। फिल्मी पत्रों में चित्रों का होना अनिवार्य होता है। 'रंगभूमि' के मुखपृष्ठ पर किसी प्रसिद्ध कलाकार का चित्र रहता था तथा भीतर भी चित्रों की संख्या पर्याप्त रहती। मिस गौहर (सस्सी-पुन्नू में), इनामदार तथा मिस पन्ना, 'महाभारत' में मिस जुबेदा, 'हातिमताई' में मिस गुलाब आदि के चित्रों से उस जमाने के लोकप्रिय कलाकारों का दीदार हासिल किया जा सकता है।

'रंगभूमि' के प्रकाशन के ठीक एक वर्ष बाद 1933 में प्रसिद्ध उपन्यासकार तथा लेखक ऋषभचरण जैन ने साप्ताहिक 'चित्रपट' निकालना आरंभ किया। साहित्य मंडल ऋषभचरण का निजी प्रकाशन संस्थान था। यहीं से उनके उपन्यास भी छपते थे। 'चित्रपट' साहित्य मंडल दिल्ली का पत्र था, जो रूपवाणी प्रिंटिंग प्रेस में छपता था। उन दिनों दिल्ली इतनी छोटी थी कि पत्र के पहुँचने के लिए 'साहित्य मंडल दिल्ली' इतना पता लिख देना ही काफी होता था।

इस पत्र का वार्षिक चंदा सात रुपए तथा एक प्रति का मूल्य दो आने था। ऋषभचरण जैन हिंदी के जाने-माने लेखक थे। प्रेमचंद, जैनेंद्र कुमार तथा चतुरसेन शास्त्री आदि हिंदी के प्रसिद्ध कथा लेखकों से उनकी मैत्री थी। इसलिए अनेक प्रसिद्ध लेखकों की रचनाएँ 'चित्रपट' में स्थान प्राप्त करती थीं। इस पत्र के प्रथम पृष्ठ पर गोपालसिंह नेपाली की कविताएँ प्राय: छपतीं। अन्य पृष्ठों में नरोत्तम व्यास, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, धनीराम प्रेम, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक जैसे कथाकारों की रचनाओं को स्थान मिलता। चतुरसेन शास्त्री का उपन्यास 'अमर अभिलाषा', 'चित्रपट' में धारावाही छपता रहा। 'हाल' के नाम के एक विदेशी लेखक के उपन्यास 'दीपशिखा' का अनुवाद खुद ऋषभचरण जैन ने किया था, उसे भी 'चित्रपट' ने प्रकाशित किया।

इस पत्र के स्थायी स्तंभ थे: 'कलावार्ता'—इसमें सिनेमा विषयक समस्याओं की चर्चा रहती। 'साहित्य चर्चा' एक स्थायी स्तंभ था, जो इस पत्र की अपनी विशेषता थी। 'साकी' के अंतर्गत उर्दू शायरी के नमूने पेश किए जाते। हास्य और व्यंग्य का कालम 'बेभाव की' मुंशी चप्पलदास लिखते। दिल्ली का स्थानीय रिपोर्टर नगर के प्रमुख चित्रपट-गृहों में चलने वाली फिल्मों की जानकारी देता। फिल्मों के विविध पहलुओं से जुड़े लेख पर्याप्त संख्या में छपते। 'आदर्श फिल्मों की आवश्यकता', 'सवाक् चित्रपट में काव्य कला का स्थान', 'धार्मिक चित्रपटों का भविष्य', 'फिल्म ने हमें क्या दिया?' जैसे लेख इस पत्र के उच्च स्तर के सूचक हैं। उस युग की फिल्मों में प्रयुक्त संवादों पर पारसी शैली के नाटकों की भाषा का पर्याप्त प्रभाव था। सवाक् चित्रपटों में काव्य कला के स्थान का निर्धारण करते हुए कुंजबिहारी अवस्थी शिकायत करते हैं कि ईस्ट इंडिया फिल्म कंपनी ने जब 'नल दमयंती' चित्र बनाया तो दमयंती के मुख से कहलवाया—

फ़ुर्कत में तेरे दिल पर मेरे गम की घटा छाई है।
कुछ ऐसी अदा तुझ में ओ बुलबुले हरजाई है॥

तो मुझे (लेखक को) सिर धुनने की इच्छा हुई। वीर कुणाल में महारानी तिष्यरक्षिता ने अपनी प्रेमाभिव्यक्ति के लिए जो गीत चुना, उसका नमूना लेखक ने दिया है—

जब नजर तुझसे मिली होशे दिले जार गया।
खुलने पाई न जबां हौसला बेकार गया।
मेरे कातिल खाली न तेरा कोई वार गया।

'चित्रपट' में तसवीरों की बहार रहती थी। मिस जोहरा, मिस बिब्बो, मिस सितारा, मिस शाहजादी, मास्टर मोहन आदि कलाकारों के नाम से भी आज के दर्शक परिचित नहीं हैं, फिर उनके द्वारा इन चित्रों को पहचानना तो इनके लिए सर्वथा कठिन है।

कलकत्ता से 'सिनेमा संसार' नामक मासिक का प्रकाशन 1934 में हुआ। यह अखिल भारतीय सिनेमेट्रोग्राफिक एसोसिएशन का मुखपत्र था। इसके संपादक तथा प्रकाशक धनराज भिवानीवाला नाम के सज्जन थे, जो संभवत: हरियाणा के निवासी थे। लगभग पचास पृष्ठों के कलेवर का यह पत्र सिनेमा विषयक रोचक सामग्री देता था। पत्र का वार्षिक शुल्क चार रुपए और एक प्रति का मूल्य छह आने था। हिंदी की फिल्मी पत्रिकाओं में इसका प्रचार-प्रसार सर्वाधिक था। इस पत्र के अगस्त 1934 के अंक के मुखपृष्ठ पर मिस गौहर कर्नाटकी, राम आप्टे तथा केकी बाबा (पारसी कलाकार) के चित्र छपे हैं। इस पत्र में अनेक स्तरीय लेख छपते थे। 'भारतीय फिल्मकार क्यों फेल होते हैं' (श्रीकांत ठाकुर), 'कथानक और कथोपकथन' (देवदत्त मिश्र), 'लंदन सिनेमा के संस्मरण' (धर्मचंद सरावगी) आदि लेख इस तथ्य को उजागर करते हैं। हॉलीवुड के फिल्म जगत् का परिचय हिंदी पाठकों को सर्व प्रथम इसी पत्र ने दिया। कलाकारों के परिचय के अंतर्गत सुनालिनी देवी 1925 में बने मूक चित्र 'लाइट ऑफ एशिया' की नायिका) तथा सुलोचना जैसी विगत युग की अभिनेत्रियों का परिचय 'सिनेमा संसार' में छपा। 'कथा कुंज', 'कसौटी' (फिल्मी समीक्षा), 'स्टूडियो के अंदर' आदि इस पत्र के स्थायी स्तंभ थे। 'चलचित्र-विज्ञान' के अंतर्गत फिल्म निर्माण के तकनीकी पहलुओं पर प्रकाश डाला जाता था। 'बंबई में नारद बाबा' इस पत्र का गॉसिप कॉलम था। कलात्मक तथा रंगीन चित्र देना 'सिनेमा संसार' की विशेषता थी। रुक्मिणी हरण में मिस मुश्तरी का चित्र कलात्मक ढंग से छापा गया। मिस मोती, मिस नूरजहाँ (बाद में पाकिस्तान चली गई) आदि के रंगीन चित्रों के अलावा कई सादे चित्र भी इसमें रहते थे।

दिल्ली से साप्ताहिक 'फिल्म चित्र' का प्रकाशन 1936 में हुआ। इसके संचालक तथा संपादक सरदार हरिसिंह थे। सहायक संपादक के रूप में मंगलानंद गौतम प्रभाकर का नाम प्रकाशित होता था। इस पत्र के 25 अप्रैल, 1938 के अंक में 'मीठा जहर' फिल्म की समालोचना छपी है, जिसे उक्त मंगलानंद गौतम ने लिखा था। यह गजानन जागीरदार की कहानी पर आधारित सोहराब मोदी द्वारा निर्देशित फिल्म थी। मिनर्वा मूवीटोन के बैनर तले बनी इस फिल्म की नायिका नसीमबानो तथा नायक की भूमिका में खुद सोहराब मोदी थे। उसी वर्ष फिल्म 'निर्मला' बनी, जिसके मुख्य कलाकार अशोक कुमार तथा देविका रानी थे।

इस पत्र में कविता, कहानी तथा गंभीर लेख प्राय: छपते। 'भारतीय फिल्मों के दोष' शीर्षक लेखक अज्ञेय का है। इससे अनुमान होता है कि प्रसिद्ध साहित्यकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' फिल्मी पत्रों में भी यदा-कदा लिखते थे। के.एल. सैगल के साथ अनेक गीत गाने वाली गायिका अभिनेत्री उमा शशि का परिचय भी इस पत्र में छपा था। 'राम जानें या आप जानें' इस पत्र का गॉसिप कॉलम था। बॉम्बे टॉकीज की फिल्म 'निर्मला' जब दिल्ली के सिनेमाघरों में दिखाई गई तो दूसरी श्रेणी के ऊपर की श्रेणियों (प्रथम, बालकनी तथा बॉक्स) के दर्शकों को कैप्सटन सिगरेट बाँटे गए। जरा सोचें, दर्शकों की बढ़ोतरी के लिए कैसे-कैसे नायाब तरीके अपनाए जाते थे। 'स्टेट एक्सप्रेस', 'मिस कलकत्ता' में जाल मर्चेंट तथा मिस कज्जन, 'मीठा जहर' में मिस शैला के चित्रों ने इस पत्र के 25 अप्रैल, 1938 के अंक को आकर्षक तथा भव्य बनाया था। इस पत्र का एक दफ्तर लंदन में भी था।

चौथे दशक के इन फिल्मी पत्रों पर नजर डालने से ज्ञात होता है कि उन दिनों धार्मिक तथा पौराणिक चित्र ('दक्षयज्ञ' या 'सती', 'रामायण', 'वीर बभ्रुवाहन', 'पतित पावन', 'नल दमयंती', 'लंका दहन', 'महावीर कर्ण', 'महाभारत', 'ध्रुव चरित्र', 'प्रह्लाद', 'राधा कृष्ण', 'सती अनुसूया', 'सती अंजना', 'कुरुक्षेत्र', 'कृष्ण सुदामा',

'भर्तृहरि', 'शकुंतला', 'उषा हरण' आदि), अरबी तथा फारसी कथा साहित्य पर आधारित चित्र ('हातिमताई', 'गुल बकावली', 'अलिफ लैला' आदि), ऐतिहासिक चित्र ('वीर कुणाल', 'राजरानी मीरा', 'चंद्रगुप्त' आदि) तथा सामाजिक फिल्में ('श्रीमती मंजरी', 'इनसान या शैतान', 'निर्मला', 'गृहलक्ष्मी', 'कन्या विक्रय' या 'लोभी पिता') अधिक बनती थीं। इनके निर्माण में लगी कंपनियाँ मुख्यत: बंबई में थीं, जिनमें इंपीरियल, रणजीत, रॉयल, अजंता, सागर, अमर, महालक्ष्मी, बॉम्बे टॉकीज, श्री शारदा तथा पैरामाउंट आदि के नाम जाने-माने थे। फिल्म निर्माण का अन्य मुख्य केंद्र कलकत्ता था, जहाँ की फिल्म निर्मात्री संस्था न्यू थियेटर्स का बड़ा नाम था। लाहौर में भी फिल्म निर्माण होता था। यहाँ का पंचोली पिक्चर्स जाना-माना नाम था, इसके मालिक थे दिलसुख पंचोली।

हिंदी की फिल्म पत्रकारिता निरंतर विकसित होती रही। जब त्रिभुवननारायण बहल ने 'रंगभूमि' का प्रकाशन बंद कर दिया तो धर्मपाल गुप्त ने 1941 में इसे पुन: आरंभ कर दिया। 1947 में संपतलाल पुरोहित ने 'युगछाया' निकाली। 1948 में सुप्रसिद्ध लेखक, पत्रकार तथा निर्माता ख्वाजा अहमद अब्बास ने बंबई से 'सरगम' नामक फिल्मी मासिक निकाला। इसके प्रथम खंड में साहित्यिक रचनाएँ छपती थीं, जबकि दूसरे खंड में फिल्मों की चर्चा रहती थी। देश-विभाजन के पश्चात् लाहौर के कई फिल्म पत्रकार भारत में आ गए। उन्होंने अनेक पत्र निकाले। 1958 में उर्दू 'शमाँ' का हिंदी संस्करण 'सुषमा' प्रकाशित हुआ, जिसने पर्याप्त लोकप्रियता अर्जित की। टाइम्स ऑफ इंडिया के प्रकाशन 'माधुरी' ने हिंदी फिल्म पत्रकारिता को नया आयाम दिया। खेद है कि वह बाद में बंद हो गया।

गुजराती में भी फिल्म विषयक अनेक पत्र निकले। 'मौज मजाह' एक साप्ताहिक पत्र था, जो गिरगाँव, बंबई से 1923 में जयशंकर द्विवेदी के संपादन में तब निकला जब सवाक् चित्रों का आरंभ ही नहीं हुआ था। हिंदी की भाँति अंग्रेजी में भी फिल्म पत्र दिल्ली से ही निकलने लगे। 1933 में 'दि मूवी' नाम का साप्ताहिक पत्र गजानंद शर्मा के संपादन में चावड़ी बाजार, दिल्ली से निकला। उसके मुखपृष्ठ पर रंगीन चित्र रहते थे। उस युग की प्रमुख रूपसी अभिनेत्रियों ने इस पत्र के मुख पृष्ठ को अपने चित्रों से रंगीन बनाया था। 'जवानी की हवा' में देविका रानी (13 अक्तूबर, 1935) तथा शांता आप्टे 'गोपाल कृष्ण' में (27 फरवरी, 1938) के चित्रों ने 'दि मूवी' को आकर्षक बनाया था।

इस पत्र में 'आवर न्यू पॉइंट' शीर्षक संपादकीय लेख छपता था। लघु कहानियों तथा कविताओं को भी इस पत्र में स्थान मिलता। संपादक के नाम पत्रों में पाठक फिल्म समस्याओं पर अपने विचार लिखते। 'दिल्ली की फिल्मी डायरी' इस पत्र का गॉसिप कॉलम था, जिसे वेगाबांड (आवारा) नाम वाले सज्जन लिखते। 13 अक्तूबर, 1935 के अंक में सूचना छपी है कि सैगल तथा जमुना को देवदास एवं पारो की भूमिका में पेश करने वाली न्यू थियेटर्स की प्रसिद्ध फिल्म इन दिनों न्यू रॉयल सिनेमा दिल्ली में सातवें सप्ताह में सफलतापूर्वक चल रही है। 27 फरवरी, 1938 के अंक में 'अलाद्दीन एंड दि वंडरफुल लैंप' की नायिका गौहर कर्नाटकी का आकर्षक चित्र दिया गया है। 'भारतीय फिल्म का भविष्य तकनीक की अपेक्षा प्रतिभाओं पर निर्भर करेगा' शीर्षक एक विचार प्रधान लेख इसी अंक की शोभा बढ़ाता है। याकूब और सोहराब मोदी की जवानी के चित्र आज के बुजुर्गों को पचास-साठ साल पहले के स्वर्णिम संसार में पहुँचा देते हैं। कालांतर में बाबूराव पटेल ने 'फिल्म इंडिया' प्रकाशित कर शोहरत कमाई।

किसी जमाने में सरस्वती कुमार दीपक, ब्रजेंद्र गौड, ऋषभचरण जैन, नरोत्तम नागर, परशुराम नौटियाल आदि उत्कृष्ट लेखक हिंदी फिल्म पत्रकारिता से जुड़े थे। बाद के युग में बच्चन श्रीवास्तव, संपतलाल पुरोहित तथा बद्रीप्रसाद पुरोहित ने हिंदी पत्रकारिता को ऊँचा उठाया। आज तो फिल्मी पत्रों की बहुलता तथा उनकी ग्राहक संख्या

चाहे कितनी ही उत्साहवर्धक क्यों न हो, उनमें कितनी गुणवत्ता है, यह सब लोग जानते हैं।

❑

53

सिनेमा पूर्व का रंगमंचीय परिदृश्य

आचार्य धनंजय ने अपने ग्रंथ 'दशरूपक' में अवस्था की अनुकृति को नाट्य कहा है—अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्। मनुष्य अपने जीवन में जो कुछ करता है, जैसा दिखाई पड़ता है, जैसा उसका आचरण होता है, उसे रंगमंच पर कुशल अभिनेता द्वारा हू-ब-हू प्रदर्शित कर देना ही नाट्य है। आचार्य भरत ने अन्य शास्त्रों की भाँति नाट्यशास्त्र की भी वेदमूलकता स्थापित की और कहा कि नाटक का पाठ्य भाग ऋग्वेद से ग्रहण किया गया है जबकि अभिनय तत्त्व को यजुर्वेद से ग्रहण किया गया। सामवेद ने नाटक में गीति तत्त्व का प्रवेश कराया तो सर्व प्रमुख रस तत्त्व को अथर्ववेद से लिया गया। संस्कृत नाट्यशास्त्र में वस्तु (कथा), नेता (नायक आदि पात्र) तथा रस ही रूपक (नाटक) के प्रधान तत्त्व माने गए हैं।

उन्नीसवीं सदी तक आते-आते संस्कृत नाटक का ह्रस हो गया था। राजाओं के अंत:पुरों में सपत्नी-द्वेष की कथाएँ तथा रनिवासों के विलासपूर्ण चित्रण ने नाटक की गति को अवरुद्ध कर दिया। इधर हिंदी में जो नाटक इस युग में लिखे गए, वे काव्य तत्त्व की प्रधानता रखने के कारण अभिनय तत्त्वों से शून्य तथा पाठमात्र के लिए ही उपयोगी थे। 'आनंद रघुनंदन' और 'रामस्वयंवर' जैसे नाटकों में गद्यात्मक संवाद तो स्वल्प ही होते थे जबकि पद्य की प्रचुरता रहती थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने निश्चय ही पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा समसामयिक देश-दशा का चित्रण करते हुए जो नाटक लिखे, उससे नाटक-लेखकों को नई दिशा मिली और प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', राधाचरण गोस्वामी आदि नाटककारों ने अपनी विशिष्ट नाट्यकृतियाँ प्रस्तुत कीं। इन नाटकों में साहित्यिक गुण तो प्रचुर मात्रा में थे, किंतु साधारण जनता के मनोरंजन के लिए वे काफी नहीं थे।

इस स्थिति में उत्तर भारत का जन-समाज रामलीला, रासलीला, स्वाँग और नौटंकी जैसे लोक-प्रचलित नाट्यरूपों से ही अपना मनोरंजन करता था। उधर कलकत्ता तथा बंबई जैसे महानगरों में यूरोपीय लोगों की अपनी बस्तियाँ थीं। इन गोरे अधिकारियों तथा वाणिज्य व्यवसाय में लगे अन्य विदेशियों ने अपने क्लब-घरों में शेक्सपियर के नाटकों का अभिनय करना प्रारंभ किया। किंतु यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत के महानगरों में रहने वाले ये अंग्रेज एलिजाबेथ युग की आभिजात्य साहित्यिक अभिरुचि वाले दर्शक नहीं थे। उनके द्वारा खेले जाने वाले इन नाटकों में शेक्सपियर के नाटकों में पाए जाने वाले मानवीय भावों, मनोवैज्ञानिक तत्त्वों तथा अनुभूतिप्रधान प्रसंगों की अपेक्षा मारधाड़, जादू-टोना, भूतप्रेत, कत्ल और खून के रहस्य-रोमांचपूर्ण दृश्यों की भरमार रहती थी, जो 'हैमलेट', 'ऑथेलो' तथा 'मैकबेथ' जैसे नाटकों में सुलभ थे।

उस जमाने में हिंदीभाषी प्रांतों के अलावा मराठी, गुजराती तथा बँगलाभाषी प्रदेशों में भी कोई व्यवस्थित रंगमंच नहीं था। अत: लोग विभिन्न धार्मिक लीलाओं, नौटंकियों, बहुरूपियों तथा सांगधारियों की लोक कलाओं में ही मनोरंजन के तत्त्व खोज लेते थे। राजस्थान में राजा गोपीचंद, पूरन भगत, हकीकतराय तथा मध्यकालीन राजपूत वीरों पर आधारित खयालों का प्रचलन था। इनमें रंगमंच के सूक्ष्म नियमों के पालन की अधिक आवश्यकता नहीं थी। संवादों की प्रभावपूर्ण अदायगी, गीतों और पद्य युक्त संवादों तथ तख्तों से बने मंच को कँपा देने वाले नृत्यों से युक्त ये खयाल राजस्थान के समीपवर्ती मालवा, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भी लोकप्रिय थे।

यही वह युग था जब भारत में नवजागरण के आंदोलनों का सूत्रपात हुआ। बँगला में ब्रह्मसमाज, महाराष्ट्र (तब

का बंबई प्रांत) में प्रार्थना समाज तथा हिंदी-भाषी क्षेत्रों में आर्यसमाज ने देश की पुरातन गरिमा को पुनरुज्जीवित किया तथा लोगों में राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत् किया। पुनर्जागरण की यह चेतना साहित्य के माध्यम से भी अभिव्यक्त हुई। बँगला में गिरीश घोष तथा हिंदी में भारतेंदु के नाटकों में सांस्कृतिक पुनरुत्थान के स्वर उभरे तथा राष्ट्रीय अस्मिता को अभिव्यक्ति मिली। किंतु साहित्य के माध्यम से नवजागरण के संदेश को सुनने वाले लोग तो नगरों में रहने वाले पढ़े-लिखे लोग ही थे। साधारण लोगों की गिरीश घोष तथा भारतेंदु के नाटकों तक पहुँच कहाँ थी? प्रेमचंद के शब्दों में—''उन दिनों उर्दू जबान में 'इंदर सभा' और 'हवाई मजलिस' जैसे इश्किया नाटकों की भरमार थी।'' ('माधुरी' वर्ष 8, संख्या 6) ये नाटक अरब-फारस की दंतकथाओं, रोमानी प्रेम के लैला-मजनूँ टाइप किस्सों तक ही सीमित थे, जिनमें मारधाड़, खून-खराबा, इश्किया शायरी, तेजतर्रारी वाले संवाद तथा तलवारबाजी के जौहर दिखाने वाले अभिनय की भरमार रहती थी।

ऐसे समय में जब जनता की नाटकीय मनोरंजन की ख्वाहिशें पूरी नहीं हो रही थीं, पारसी नाटकों का उदय हुआ, जिसने एक विशिष्ट रंगमंच तथा नाट्य शैली को जन्म दिया। सच तो यह है कि पारसी रंगमंच तथा उसके तत्त्वावधान में लिखे गए और अभिनीत किए गए नाटकों का गंभीर तथा सहृदयतापूर्ण अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है। साहित्य के इतिहासकारों ने नाटकों की इस विस्तृत दुनिया को असाहित्यिक कहकर उसकी उपेक्षा की तथा हिंदी रंगमंच के इस लोकप्रिय विधान को नाटक के तत्त्वों से रहित बताया। परंतु बात ऐसी नहीं है। पारसी रंगमंच के नाटकों ने हिंदी भाषा और साहित्य के विकास तथा उसकी समृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। इनका तथ्यात्मक मूल्यांकन इतिहास की सुरक्षा की दृष्टि से तो आवश्यक है ही, इस कालखंड की नाट्य-विषयक गतिविधियों से परिचित होने के लिए भी आवश्यक है।

पारसी रंगमंच एक व्यापक शब्द है, जिसके अंतर्गत हिंदी के अलावा उर्दू, गुजराती, मराठी तथा बँगला के तत्कालीन नाटकों के कथा तथा कला-पक्ष का विवेचन किया जा सकता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि चलचित्रों के आगमन के पहले तक पारसी नाटकों का देशव्यापी प्रचलन था तथा बड़े नगरों में कई-कई सप्ताह-महीनों तक ये नाटक जनसाधारण का मनोरंजन करते थे। इन नाटकों में चित्रित कथानकों तथा पात्रों से लाखों दर्शक त्याग, बलिदान, देशप्रेम तथा सांप्रदायिक सद्भाव के विचार ग्रहण करते थे। यदि इस नाट्यशैली के कार्यक्षेत्र का विचार करें तो पता लगता है कि पश्चिम में बंबई से लेकर पूर्व में कलकत्ता तथा उत्तर में अमृतसर से लेकर महाराष्ट्र के नागपुर और विदर्भ तक ये नाटक खेले जाते थे। इन नाटक कंपनियों के मालिक मुख्यत: पारसी ही थे, अत: इस संपूर्ण नाट्य विधा को पारसी नाटक तथा पारसी रंगमंच का नाम दे दिया गया। इन नाटकों का दौरदौरा लगभग एक सदी तक हमारे देश में मुकम्मल तौर पर रहा। इस प्रकार गत शताब्दी के मध्य से लेकर 1940 तक की कालावधि पारसी रंगमंच के विस्तार का समय था। 26 नवंबर 1853 को बंबई के हिंदू ड्रामेटिक कोर ने एक हिंदुस्तानी ड्रामा 'राजा गोपीचंद' का मंचन किया। यह शेरो-शायरी से लबालब ऑपेरा शैली का विधान था। 1872 में खुर्शीदजी बालीवाला ने दिल्ली में विक्टोरिया थियेट्रिकल कंपनी की स्थापना की। इसके मुख्य अभिनेता कंपनी के संस्थापक बालीवाला तथा एक अन्य पारसी रुस्तमजी थे। मिस खुर्शीद, मिस मेहताब के अतिरिक्त एक अंग्रेज महिला मेरी फैंटन भी इस कंपनी में नारी पात्रों की भूमिका निभाती थीं। मुंशी नारायणप्रसाद तालिब इस कंपनी के लिए नाटक लिखते थे।

सन् 1898 में कावसजी खटाऊ ने एल्फ्रेड थियेट्रिकल कंपनी स्थापित की। कावसजी अपने करुणापूर्ण अभिनय के लिए विख्यात थे, जबकि पं. नारायणप्रसाद बेताब और मेहँदीहसन अहसन इसके लिए नाटक लिखते थे। इसी साल में पेस्टनजी फ्रामजी ने 'दि बंबई पारसी ऑरिजनल ऑपेरा कंपनी' बनाई। अनेक पारसी कलाकारों का

सहयोग इस कंपनी को मिला। महमूद मियाँ 'रौनक' इसके लिए नाटक लिखते थे। 1914 में कावसजी खटाऊ की मृत्यु के बाद जब एल्फ्रेड कंपनी का अंत हुआ तो इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए न्यू एल्फ्रेड थियेट्रिकल कंपनी की स्थापना हुई। सोहराबजी इसके प्रबंध निदेशक थे तथा इसे बेताब, आगा हश्र कश्मीरी और पं. राधेश्याम कथावाचक जैसे कुशल नाटक-लेखकों का सहयोग प्राप्त हुआ। पारसियों के अनुकरण पर कुछ उत्साही हिंदुओं ने भी इस रंगमंच व्यवसाय में प्रवेश किया। काठियावाड़ की सूर विजय कंपनी तथा मेरठ की व्याकुल भारत कंपनी ऐसे ही व्यवसायियों का पुरुषार्थ था। मेरठ की कंपनी ने विश्वंभरनाथ व्याकुल के प्रसिद्‌ध नाटक 'बुद्‌धदेव' का अभिनय कर यश कमाया, जबकि सूर विजय कंपनी ने राधेश्याम के 'ऊषा-अनिरुद्‌ध' से ख्याति पाई। जोधपुर के माणकलाल डाँगी इस व्यवसाय में आए और कलकत्ता को अपना केंद्र बनाया। उसके छोटे भाई गणपतलाल डाँगी ने भी उत्तर काल के रंगमंचीय कलाकार के रूप में ख्याति अर्जित की।

यह तथ्य स्वीकार किया ही जाना चाहिए कि पारसी रंगमंच का मुख्य उद्‌देश्य धन कमाना था। कला उनके लिए गौण थी। इन कंपनियों के मालिकों ने विशुद्‌ध व्यवसाय की दृष्टि से इनकी स्थापना की थी। इसलिए न केवल मालिकों, बल्कि कंपनियों में काम करने वाले अभिनेताओं, निर्देशकों, तकनीकी सहायकों तथा नाटक लेखकों के लिए भी यह रंगमंच रोटी-रोजी जुटाने का साधन ही था। तथापि नाटकों के द्‌वारा जाने-अनजाने हिंदी भाषा और साहित्य का जो कुछ हितसाधन हुआ, वह भी कम नहीं है। वस्तुत: पारसी कंपनियों के संचालकों ने ही जनता की नब्ज को पहचाना था और उनकी अभिरुचि तथा पसंद को दृष्टि में रखकर इन नाटकों का मंचन किया। उन्हें इसके द्‌वारा पर्याप्त द्रव्य मिला और ख्याति भी।

कथावस्तु की दृष्टि से ये नाटक पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा रोमानी विषयों को लेकर लिखे जाते थे। रामायण और महाभारत, ध्रुव, प्रह्लाद आदि के पौराणिक उपाख्यान, मध्यकालीन इतिहास के शलाका पुरुषों की बहादुरी, पराक्रम, त्याग एवं बलिदान की प्रेरणाप्रद कहानियाँ इन नाटकों के उपादान बनते थे। ऐसे नाटकों के द्‌वारा हिंदू पुनरुत्थान को मंचीय अभिव्यक्ति मिलती थी तथा दर्शक इन्हें देखकर उत्तेजित, रोमांचित होते तथा आदर्शों को ग्रहण करने की प्रेरणा लेते। इन नाटकों की मुख्य पौराणिक या ऐतिहासिक कथा के साथ एक समानांतर हलकी-फुलकी हास्य कथा का प्रसंग भी चलता, जो दर्शकों का मनोरंजन तो करता ही, पुराणकथित आदर्शों से वर्तमान के अंतर को भी रेखांकित करता। नाटक लेखकों को इस बात की चिंता नहीं थी कि वीर अभिमन्यु की कथा का राजा खटपटसिंह की कहानी से क्या मेल है? किंतु उस युग के नाटक लेखकों तथा दर्शकों के लिए यह सब स्वाभाविक था। वे यदि पौराणिक अथवा ऐतिहासिक नाट्‌य कथा के द्‌वारा कोई आदर्श ग्रहण करते तो इसके साथ जुड़ी आधुनिक जीवन की विडंबना को दरशाने वाली 'कॉमिक स्टोरी' से मनोरंजन प्राप्त करना भी अपना अधिकार समझते थे। इसमें उनके लिए कोई विरोधाभास नहीं था।

रोमानी कथानकों के लिए या तो फारसी प्रेम कथाओं (यथा—लैला मजनूँ, शीरीं फरहाद, अली बाबा आदि) को चुना जाता या अंग्रेजी नाटकों को ही देश, काल और परिवेश में परिवर्तन कर पेश किया जाता। ऐसे नाटकों के नाम भी अत्यंत भड़काऊ तथा दिलकश होते थे। 'दिल फरोश', 'माशूकाए फिरंग', 'आशिके खून', 'जहरे इश्क', 'सफेद खून', 'खून का खून' जैसे नाम सूचना-पटों पर जब दिखाई पड़ते तो बुकिंग की खिड़कियों पर भीड़ उमड़ पड़ती। सामाजिक विषयों को लेकर लिखे जाने वाले नाटक भी कम आकर्षक नामों वाले नहीं होते थे। 'खूबसूरत बला', 'आँख का नशा', 'पहला प्यार', 'दिल की प्यास' जैसे शीर्षक ही बताते थे कि ये नाटक चुहचुहाते शृंगार से लबालब भरे होंगे। पारसी नाटकों के विज्ञापन भी लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते थे। अहसन लखनवी के नाटक 'भूल भुलैया' के विज्ञापन की यह पंक्ति कितनी लुभावनी रही होगी—"जिसकी दिल फरेब सीन सीनरी,

दिलचस्प प्लाट, पुरलुत्फ कामिक और मसर्रतआमेज गाने आपको एक दूसरी दुनिया में पहुँचा देंगे।''

संगीत इन नाटकों का प्राण तत्त्व था। शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा लोकसंगीत का आधार लेकर ही इन नाटकों के संगीत निर्देशक अपनी धुनें तैयार करते। मंगलाचरण में जिन पद्यों का गायन होता, वे नाटक की हिंदू या मुसलिम कथावस्तु के आधार पर बदल दिए जाते। पं. राधेश्याम के किसी पौराणिक नाटक में ईश्वर की माया का वर्णन इस प्रकार होता—

अपार तेरी माया माया है तेरी अपार।

इसी पंक्ति को फारस और अरब के कथानक वाले नाटक में इस प्रकार पेश किया जाता—

निसार तेरे नखरे नाजो अदा पर निसार।

संगीत हेतु लिखे गए गीतों में उपदेशों की भरमार रहती थी। पं. राधेश्याम के नाटक 'श्रीकृष्ण अवतार' में ईश्वर विश्वास को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया था—

भगवान् मेरी नैया उस पार लगा देना।
अब तक तो निभाया है आगे भी निभा देना॥

पं. नारायणप्रसाद बेताब जैसे नाटककार अपने गीतों में समाज-सुधार, धार्मिक अंधविश्वासों पर व्यंग्योक्ति तथा कुरीतियों पर कटाक्ष करने से भी विरत नहीं होते थे। वे इन नाटकों को सामाजिक परिवर्तन का साधन मानते थे।

संवाद योजना

ओजस्वी तथा प्रभावोत्पादक संवाद इन नाटकों के प्राण थे। पं. राधेश्याम के नाटक 'वीर अभिमन्यु' में कृष्ण-अर्जुन संवाद तथा उत्तरा-अभिमन्यु संवाद अत्यंत मार्मिक तथा स्थायी प्रभाव छोड़ने वाले थे। बेताब के नाटक 'महाभारत' में कृष्ण-अर्जुन संवाद, भीष्म-अर्जुन संवाद, द्रौपदी-कौरव संवाद जैसे प्रसंगों को सुनकर हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठता था। संवाद ही वाचिक अभिनय का मुख्य आधार होता है। इसके अंतर्गत ये नाटककार भाषण, उपदेश, शेरो-शायरी, कवित्त, सवाल-जवाब, चुटकुलेबाजी, हाजिरजवाबी, आकाश-भाषित, स्वगत कथन जैसे न जाने कितने वाच्यरूपों को पेश करते थे।

कभी-कभी संवाद तुकांत भी हो जाते, जो श्रोताओं में विशेष प्रभाव पैदा करते। पं. राधेश्याम ने 'वीर अभिमन्यु' के आरंभ में ही दुर्योधन की मन:स्थिति को इस प्रकार व्यक्त किया—

दुर्योधन—''यह रण का बाजा आज मुझे नहीं सुहाता है। मृदंग का रंग मेरे हृदय के भावों को बदरंग बनाता है। सारंगी का सारंग किसी के सारंग धनुष की याद दिलाता है।''

पुन: एक पद्य—

संग्राम में होती रही यदि नित्य नित्य ही हार।
तो फेंक दो तलवार को धिक्कार है धिक्कार॥

यहाँ पात्र का सारा बल उसकी वाणी पर ही है। इस तरह अभिनय का अधिक बल काव्य पर होता था। दर्शक लोग इन संवादों को सुनकर अधिक आनंद लेते थे। यही कारण था कि संवादों में अति नाटकीयता को दोष नहीं अपितु गुण समझा जाता था।

महाभारत की कौरव सभा में अपमानित द्रौपदी वहाँ उपस्थित वृद्धों की ओर देखकर अत्यंत तिरस्कार युक्त शब्दों में कहती है—

''हाय यह सभा अंधी है या बहरी, आज क्या द्रोणाचार्य का धनुष गल गया? क्या अश्वत्थामा के बाणों को तरकस निगल गया? क्या कृपाचार्य की तलवार पर काई उठी हुई है? क्या भीष्मपितामह की जबान कटी हुई है।''

ऐसे संवादों में सानुप्रासिकता का आना स्वाभाविक ही था।

पारसी नाटकों की भाषा भावुकता से भरी, शायरी तथा पद्यों से युक्त, अति नाटकीयता लिये होती थी। इसमें अभिधा शक्ति की ही प्रधानता रहती थी।

पारसी नाटकों का रंग-विधान

ये कंपनियाँ अलग-अलग शहरों में घूमकर तथा वहाँ अपना अस्थायी पड़ाव डालकर कई-कई सप्ताहों तक अपने नाटकों का मंचन करती थीं। अत: इन्हें अस्थायी स्टेज तथा रंगशाला बनवानी पड़ती। आश्चर्य में डाल देने वाले दृश्यों और अभिनय को दिखाने के लिए आकर्षक तथा भड़काऊ परदे बनाए जाते। रंग शिल्प में हैरतअंग्रेज करिश्मे दिखाए जाना जरूरी था, क्योंकि ये दृश्य दर्शकों को लुभावने लगते। मंच पर आँधी आना, बिजली चमकना, लोगों के मुँह से आग या साँप निकलना, सिर का कटकर उड़ना जैसे दृश्यों में दर्शकों को अपार आनंद की अनुभूति होती थी।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि ये नाटक व्यावसयिक बुद्धि से लिखे तथा मंचित होते थे। केवल साहित्य को समृद्ध करना इनका प्रधान उद्देश्य नहीं था। फिर इन नाटकों के लेखन तथा मंचन का प्रमुख आयोजन व्यावसायिक ही था, क्योंकि क्या तो नाटक कंपनियों के मालिक और क्या अभिनेता, निर्देशक और नाटक लेखक, सभी लोगों की जीविका इनसे जुड़ी थी। निर्देशक और मालिक अपनी इच्छा के अनुसार ही नाटक लिखवाते और नाटककार अपने मालिकों की रुचि तथा व्यवसायजन्य लाभ को ध्यान में रखकर ही इनकी रचना करते थे। वे अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुसार उसमें रद्दोबदल भी करवा देते।

प्रसिद्ध अभिनेता, अभिनेत्रियाँ

पारसी नाटकों में अभिनय कर ख्याति के ऊँचे मानदंड अर्जित करने वालों में कुछ के नाम हैं—कावसजी खटाऊ, सोराबजी ओग्रा, वल्लभ केशव नायक, मास्टर मोहन, मास्टर निसार, मानिकलाल डाँगी, मास्टर फिदाहुसैन, कन्हैयालाल पँवार, गणपतलाल डाँगी आदि। हिंदू, मुसलमान तथा पारसी तीनों का ही इसमें योगदान रहा है। जो पुरुष अभिनेता स्त्री पात्रों की भूमिका में आते, वे थे—मास्टर निसार, मास्टर मोहन, फिदा हुसैन, नैनूराम आदि।

कालांतर में जो अभिनेत्रियाँ इस क्षेत्र में आईं, उनमें प्रमुख थीं—गौहर बाई, मिस मेरी फैंटन, मिस खुर्शीद, मिस मेहताब, अख्तरी फैजाबादी, राजकुमारी, पेशेस कूपर, कज्जन बाई, सरस्वती, रामदुलारी आदि। निश्चय ही पारसी नाटक आज अतीत की वस्तु बन चुका है, किंतु उसकी स्मृतियाँ भी कम रोमांचक नहीं हैं।

पारसी नाटकों के तीन लेखक

आगा हश्र कश्मीरी, नारायणप्रसाद बेताब तथा राधेश्याम कथावाचक विशुद्ध रूप से हिंदी क्षेत्र के ही थे। आगा हश्र के पिता गनीशाह 1868 में शॉलों का कारोबार लेकर काश्मीर से बनारस आ गए थे। 3 अप्रैल, 1879 को उनके पुत्र मुहम्मद शाह आगा का जन्म हुआ, जो साहित्य क्षेत्र में आगा हश्र कश्मीरी के नाम से जाने गए। उनकी शिक्षा बनारस के प्रसिद्ध जयनारायण हाई स्कूल में हुई। उन्हें आरंभ से ही नाटक लेखन में रुचि थी, अत: वे अपना शॉलों का धंधा छोड़कर 1901 में बंबई चले आए। यहाँ वे एल्फ्रेड कंपनी के मालिक काउसजी से मिले, जिन्होंने आगा को अपनी कंपनी में बतौर मुंशी (नाटक लेखक) नौकर रख लिया।

आगा हश्र के नाट्य लेखन के तीन सोपान थे। प्रथम चरण 1900 से 1910 का था। इस काल में उन्होंने 'सफेद खून', 'सैदे हवस' तथा 'शहीदे नाज' शीर्षक जो नाटक लिखे, वे शेक्सपियर के 'किंग लियर', 'रिचर्ड तृतीय' तथा 'मेजर फॉर मेजर' के हिंदुस्तानी रूपांतरण ही थे। 1910 से 1920 तक उनके नाटक-लेखन का दूसरा दौर था, जब

उन्होंने हिंदू और मुसलिम संस्कृति के मिले-जुले रूप को नाटकों में प्रस्तुत किया। 'ख्वाबे हस्ती', 'खूबसूरत बला', 'सिल्वर किंग', 'यहूदी की लड़की', 'सूरदास', 'बनदेवी' आदि नाटक इसी काल के हैं। किंतु आगा हश्र के नाटकों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काल 1917 से आरंभ होता है। इसी वर्ष कलकत्ता में उन्होंने अपनी एक थियेटर कंपनी जे.एफ. मैडन थियेटर के नाम से आरंभ की। कलकत्ता में आकर उन्होंने अनुभव किया कि बंबई में रहते हुए जिस उर्दू प्रधान भाषा में वे अपने नाटक लिखते रहे, वह भाषा बंगाल के भद्र समाज को स्वीकार्य नहीं होगी। फलत: अपनी भाषा-नीति में परिवर्तन किया और 'भारतरमणी', 'मधुर मुरली', 'भागीरथ गंगा', 'श्रवण कुमार', 'धर्मी बालक' और 'प्रेमी बालक' जैसे नाटक प्रस्तुत किए, जो मुख्यत: हिंदू संस्कृति तथा जीवन-पद्धति से प्रभावित थे। आगा हश्र के द्वारा लिखे समस्त नाटकों की संख्या 100 से अधिक थी। 'रुस्तम व सोहराब' तथा 'सीता वनवास' उनके उर्दू तथा हिंदी शैली के नाटकों के नमूने कहे जा सकते हैं।

नाटक लिखने के अतिरिक्त आगा हश्र एक सफल अभिनेता तथा निर्देशक भी थे। भारत की मिली-जुली सांस्कृतिक विरासत पर उन्हें गर्व था। उन्हें रामचरित-मानस के अनेक प्रसंग कंठस्थ थे और वे इसे दुनिया की आला किताबों में स्थान देते थे। रामायण के विशद ज्ञान तथा बनारस के वातावरण में रचे-बसे आगा हश्र के लिए पौराणिक कथानकों का कभी अभाव नहीं रहा। 24 अप्रैल, 1935 को हिंदी के इस महान् नाटककार का निधन हुआ।

आयु की दृष्टि से पं. नारायणप्रसाद बेताब आगा हश्र से सात वर्ष बड़े थे। उनका जन्म 17 नवंबर, 1872 को बुलंदशहर जिले के औरंगाबाद कस्बे में श्री दुल्लाराय के यहाँ हुआ, जो पेशे से तो हलवाई थे, किंतु शायरी का शौक रखने के कारण महाकवि गालिब के शिष्य थे। नारायणप्रसाद जो बेताब के नाम से काव्य-रचना करने लगे थे, जीविका की खोज में दिल्ली आए और एक प्रिंटिंग प्रेस में कंपोजीटर बन गए। शायरी के शौक ने उन्हें हकीम मोहम्मद खाँ तालिब का मुरीद बना दिया। उधर हिंदी में काव्य-रचना के गुर उन्होंने पं. श्लेषचंद्र वैद्य से सीखे।

बेताब का पारसी रंगमंच से परिचय तथा उसमें प्रवेश कैसे हुआ, इसकी रोचक कथा उनके मुख से ही सुनें: उन दिनों दिल्ली में एक नाटक कंपनी आई हुई थी, जो रोज रात को नाटकों का मंचन करती। एक दिन नाटक कंपनी के नाटक-लेखक बाबू धनपतराय बेकस कहीं चले गए तो नाटक के लिए एक गीत लिखाने की जरूरत हुई। कंपनी के मैनेजर ने जब यह बात बेताब के भाई श्री बालमुकुंद को बताई तो उन्होंने चट उत्तर दिया 'मेरा छोटा भाई आधी रात तक सितार पर ताना-रीरी करता है, गजलें भी लिखता है, यदि उससे आपको कुछ मदद मिले तो देख लीजिए।' इस प्रकार अपने भाई की सिफारिश पर बेताब को कंपनी में गीत लेखक के रूप में प्रवेश मिला। इसके बदले उन्हें रोज नाटक देखने का फ्री पास भी मिल गया। इस प्रकार बेताब का पारसी थियेटर में बतौर नाटक-लेखक प्रवेश हुआ और वे उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए इस शैली के लेखकों में शीर्ष स्थानीय माने गए।

अपने लेखन काल में बेताब ने लगभग 26 नाटक लिखे। प्रारंभ में वे एल्फ्रेड कंपनी के नाटक-लेखक रहे। यहाँ रहते हुए उनके 'महाभारत', 'रामायण', 'जहरी साँप', 'गणेश जन्म', 'सीता-वनवास' आदि नाटक लिखे गए तथा मंचित हुए। उनके महाभारत नाटक को सर्वाधिक ख्याति मिली। दिल्ली के संगम थियेटर में 21 जनवरी, 1913 को जब महाभारत का मंचन हुआ, तो उसे देखने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। बेताब ने स्वयं लिखा है—''जब यह नाटक रंगशाला में आया तो सत्य के गुप्त बल ने असत्य के प्रकटाडंबर पर विजय प्राप्त की। मेरे नाटक से, जो लोग अपने कुटुंब की स्त्रियों को नाटक दिखाना पाप समझते थे, वे बेधड़क साथ ला-लाकर दिखाने लगे।''

हिंदी नाटक-समीक्षकों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पारसी शैली के नाटकों में हिंदी भाषा के विशुद्ध रूप को प्रतिष्ठित करने का श्रेय बेताब तथा राधेश्याम कथावाचक को ही है। बेताब ने अपने 'महाभारत' नाटक की

प्रस्थापना में सूत्रधार के मुख से जो कहलवाया है, वह उनकी भाषा-नीति का प्रामाणिक दस्तावेज है—

न ठेठ हिंदी न खालिस उर्दू,
जबान गोया मिली जुली हो।
अलग रहे न दूध से मिश्री,
डली डली दूध में घुली हो॥

इस तरह अत्यंत क्लिष्ट संस्कृत शब्दों तथा फारसी, अरबी से बोझिल उर्दू से हटकर सरल, सुबोध तथा प्रसादपूर्ण भाषा का प्रयोग बेताब के नाटकों की सफलता का एक प्रमुख कारण बना।

पारसी कंपनियों में नाटक लिखने के अतिरिक्त बेताब ने पृथ्वी थियेटर्स के लिए 'शकुंतला' नाटक लिखा। आगे चलकर चलचित्रों के पटकथा लेखन में भी उनका योगदान रहा। यह युग इस कला के प्रारंभ का ही था। 1931 में उनका लिखा प्रसिद्ध पौराणिक कथानक 'कच' और 'देवयानी' (देवी देवयानी) रजत परदे पर आया। इसके अनंतर 'राधा रानी', 'सती सावित्री', 'शैल बाला', 'तूफानी तरुणी', 'भक्त अंबरीष', 'देवदासी', 'बैरिस्टर की पत्नी', 'नादिरा', 'मिस 1933' जैसे अनेक पौराणिक, धार्मिक तथा सामाजिक समस्या-प्रधान फिल्मों के लिए पटकथा तैयार करने तथा गीत लिखने में बेताब की प्रमुख भूमिका रही।

धार्मिक विचारों से नारायणप्रसाद बेताब आर्यसमाजी थे। इसलिए उनके नाटक उपदेशों और नैतिक संदेशों से भरे हैं। भारत के प्राचीन गौरव का पुनः-पुनः स्मरण तथा वर्तमान अंध रूढ़ियों और कुसंस्कारों का त्याग उनके नाटकों की मूल चेतना है। मुख्य नाट्य कथानक के साथ उन्होंने जो अंतर्कथाएँ जोड़ी हैं, वे समाज सुधार तथा दलितोत्थान की प्रेरणा देती हैं। महाभारत में चेता चमार की गौण कथा वेदों के पढ़ने-पढ़ाने के सार्वजनिक अधिकारों की घोषणा करती है, तो इसी नाटक के दूसरे अंक के सातवें दृश्य का एक गीत—

अजब हैरान हूँ भगवन् तुम्हें क्योंकर रिझाऊँ मैं।

परमात्मा के निराकारत्व का प्रतिपादन करता है। 15 सितंबर, 1945 को बेताब का बंबई में निधन हुआ। उनके व्यक्तित्व एवं लेखन पर डॉ. विद्यावती नम्र ने एक विशद शोध-ग्रंथ लिखा है।

पारसी शैली के नाटककारों की त्रिमूर्ति में पं. राधेश्याम कथावाचक आयु की दृष्टि से कनिष्ठ थे। 15 नवंबर, 1890 को उनका जन्म बरेली के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। बचपन में ही तुलसीदास के रामचरितमानस के पाठ तथा गायन का उन्होंने अच्छा अभ्यास कर लिया था। उन्होंने एक बार पं. मोतीलाल नेहरू की पत्नी श्रीमती स्वरूप रानी को एक मास तक मानस का पाठ आनंद-भवन, इलाहाबाद में सुनाया था। कथावाचक के कार्य को जीविका का साधन बना लेने के पश्चात् पं. राधेश्याम ने अपनी रामायण बनाई, जो 'राधेश्याम रामायण' के नाम से जगद्विख्यात हुई। इसकी सरल और आमफहम भाषा, व्यंग्य-विनोदपूर्ण तीखे संवादों ने इस रामायण को अत्यंत लोकप्रिय बनाया तथा उसे जन-जन का कंठहार बना दिया। नक्कारे की कड़कड़ाहट तथा हारमोनियम और तबले की संगत के साथ जब पं. राधेश्याम अपना रामायण-गान करते थे तो एक समाँ बँध जाता था।

पं. राधेश्याम भी पारसी नाटक-कंपनियों के साथ जुड़े और न्यू एल्फ्रेड तथा न्यू एलबर्ट थियेट्रिकल कंपनियों में नाटक लेखन किया। उनके द्वारा लिखे गए नाटकों में 'वीर अभिमन्यु', 'भक्त प्रह्लाद', 'ईश्वर भक्ति', 'श्रवण कुमार', 'रुक्मिणी मंगल', 'द्रौपदी स्वयंवर', 'सती पार्वती' आदि प्रमुख हैं। इनमें भी 'वीर अभिमन्यु' को सर्वाधिक ख्याति मिली और वह देश के अनेक भागों में अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त कर सका। न्यू एल्फ्रेड कंपनी के मालिक सोराबजी की पं. राधेश्याम से 1913 में बरेली में भेंट हुई। उन्होंने पंडितजी को बातचीत के लिए बुलाया और 'वीर अभिमन्यु' के सीन सुने। कथावाचक होने के कारण पं. राधेश्याम की वाणी में ओज और तेज तो था ही। उन्होंने

खूब जोश के साथ नाटक के कुछ अंश पारसी सेठ को सुनाए। इससे प्रभावित होकर सोराबजी ने 'वीर अभिमन्यु' को अपनी कंपनी के लिए पसंद किया। महामना मालवीयजी ने भी 'वीर अभियन्यु' के एक दृश्य को सुना और आशीर्वाद के रूप में कहा, ''निश्चय ही तुम्हारा यह नाटक अद्‌वितीय होगा, सर्वप्रिय होगा।'' ('मेरा नाटककाल' पं. राधेश्याम कथावाचक, पृ. 39) 'वीर अभिमन्यु' में भी मुख्य कथा के साथ-साथ राजा बहादुर हास्यकथा चलती है। न्यू एल्फ्रेड के निर्देशक तथा स्वामी सोराबजी खुद एक अच्छे हास्य अभिनेता थे। राजा बहादुर की भूमिका में वे स्वयं ही उतरते थे।

'भक्त प्रह्लाद' में तो लेखक ने राष्ट्रीयता की भावनाओं से अनुप्राणित होकर गांधीजी के अहिंसा तथा सत्याग्रह के सिद्‌धांतों को भी परोक्ष रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था। कभी-कभी इन पौराणिक नाटकों के मंचन के समय इनकी वस्तु, संवाद तथा अभिव्यक्ति को देखकर अंग्रेजी सरकार की सी.आई.डी. को भी यह शक हो जाता था कि कहीं पात्रों के मुख से जो संवाद बुलाए जा रहे हैं, वे सरकार के प्रति असहयोग के भावों को तो व्यक्त नहीं करते, किंतु रंगमंच के आयोजक यह कहकर उनका समाधान कर देते थे कि यह तो भक्तिप्रधान नाटकों के पौराणिक पात्रों के निर्दोष संवाद हैं। उस समय गुप्तचर लोग भी मौन रह जाते थे।

पं. राधेश्याम के 'ईश्वर-भक्ति' नाटक का उद्‌घाटन दिल्ली में तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष पं. मोतीलाल नेहरू ने किया। पं. नेहरू का नाम ही उद्‌घाटन को महत्त्व देने के लिए काफी था। नाटक का अभिनय तो होता दिल्ली में, किंतु समीप के मेरठ, बुलंदशहर, गाजियाबाद, खुर्जा, पानीपत और रेवाड़ी के लोग अग्रिम बुकिंग करा लेते। दिल्लीवालों की तो बारी ही नहीं आती। पं. मोतीलालजी के साथ सरोजिनी नायडू भी आईं। आरंभ में पंडितजी मंच पर आए और पूजा की। उनके नाटकों में राष्ट्रीयता के भाव रहते आवश्य थे किंतु उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से उल्लिखित किया जाता था। 'भक्त प्रह्लाद' में ब्रिटिश शासन के विरुद्‌ध राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति सांकेतिक तथा प्रतीकात्मक थी। हिरण्यकशिपु को अंग्रेजों का प्रतीक बताया गया और प्रह्लाद को सत्याग्रही के रूप में पेश किया गया। पं. महावीरप्रसाद द्‌विवेदी, गणेशशंकर विद्यार्थी तथा पं. बालकृष्ण शर्मा नवीन जैसे उस काल के वरिष्ठ पत्रकारों ने 'भक्त प्रह्लाद' की प्रशंसा की तथा इसे आने वाले भारत के रूप की भविष्यवाणी बताया था।

पारसी शैली के नाटक लेखकों के इस क्रम में आगे चलकर हरिकृष्ण जौहर, तुलसीदत्त शैदा, कृष्णचंद्र जेबा, विश्वंभरसहाय व्याकुल आदि ने अपना योगदान दिया, जिससे यह नाटक-परंपरा समृद्‌ध हुई।

❑

संदर्भ-ग्रंथ

1. हिंदी फिल्म गीत कोश, खंड 1 से 5 इनमें क्रमश: 1931-1940, 1941-1950, 1951-1960, 1961-1970 तथा 1971-1980 पाँच दशकों के फिल्मी गीतों (मात्र शीर्षक) का संग्रह है। साथ ही प्रत्येक फिल्म के निर्देशक, संगीत निर्देशक, गीतकार तथा कलाकारों का भी उल्लेख है।

उपयुक्त खंडों के संपादक श्री हरमंदिरसिंह हमराज हैं तथा प्रकाशक हैं—श्रीमती सतिंदर कौर

HIG 545 रतनलाल नगर, कानपुर

2. फिल्म इतिहास तथा निर्माण तकनीक का साहित्य

1. हिंदी सिनेमा का इतिहास—मनमोहन चड्ढा, प्र. सचिन प्रकाशन, 7/34 अंसारी रोड, नई दिल्ली-110002

2. हिंदी सिनेमा का सुनहरा इतिहास—बद्रीप्रसाद जोशी

3. Pictorial History of Indian Cinema By Firoz Rangoonwala

4. Indian Filmography by Firoz Rangoonwalla, 1970

5. Seventy Five Glorious years of Indian Cinema, By Rajendra Oza

6. Indian Films (1972-1985) Ed. B.V., Dharap प्र. राष्ट्रीय फिल्मागार, लिंक हाउस, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110001

7. Genres of Indian Cinema By B.K. Karanzia

❑

हिंदी में फिल्म साहित्य

1. फिल्म संगीत के नवरत्न (के.एल. सैगल, पंकज मलिक, नूरजहाँ, लता मंगेशकर, तलत महमूद, मोहम्मद रफी, मन्ना डे, खेमचंद प्रकाश, अनिल बिस्वास) ले. योगेश यादव, प्रकाशक : गुड कॉम्पेनियंस, प्रताप रोड, रावपुरा, बडोदरा (गुजरात)
2. हिंदी फिल्म गायक, ले. योगेश यादव बडोदरा
3. लता मंगेशकर—एक जीवनी, ले. हरीश भिमानी
प्रकाशक: कम्यूनिकेशंस, 28/बी लक्ष्मी एस्टेट, वर्मा नगर, अँधेरी (पूर्व) बंबई-400069
4. आशा भोंसले गीत यात्रा (1948-1993), पं. विश्वास नेरूरकर, प्रकाशक: वासंती नेरूरकर, 2/15 कैलाश पर्वत गिलबर्ट हिल, अँधेरी (पश्चिम) बंबई-400058
5. ए.के. हंगल-पेशावर से बंबई तक, ले. श्रीकृष्ण शर्मा, प्र. राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, चमेली वाला मार्केट, एम.आई. रोड, जयपुर-302001
6. मेरा कुछ सामान (गुलजार के गीत), प्र. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2/35 अंसारी रोड, नई दिल्ली-110002
7. मुकेश श्रीवास्तव 5 सुरीले सफर की कहानी, ले. राजीव श्रीवास्तव, प्र. ममता राजीव, एस.ई. 13 इंडो गल्फ टाउनशिप, जगदीशपुर-227817 (जि. सुलतानपुर, उ.प्र.)
8. मोहम्मद रफी—मेरे गीत तुम्हारे, सं. अजीत प्रधान
9. जन नायक राजकपूर, ले. जयप्रकाश चौकसे, प्र. प्राची प्रकाशन, 14 धेनु मार्केट, इंदौर-452003
10. लता मंगेशकर गंधार स्वर यात्रा (1945-1989)
सं. विश्वास नेरूरकर, प्र. नीलम प्रकाशन, 5 नरेश स्मृति निकट कलवा
कंज्यूमर सोसाइटी, स्टेशन रोड कलवा (ठाणे) पिन-400605
11. ज्योति कलश (नरेंद्र शर्मा अभिनंदन ग्रंथ), सं. इंद्रबहादुर सिंह
12. शब्द स्वर के सुमेरु (कवि प्रदीप), ले. प्रमोद तिवारी
13. मुकेश गीत कोश—सं. हरीश रघुवंशी, नानपुरा गेट, सूरत (गुजरात)
14. यादगारे रफी—सं. इकबाल अहमद, गनम, वडोदरा
15. गीता दत्त के गीत

गुजराती ग्रंथ

1. आपकी परछाइयाँ, ले. रजनीकुमार पांड्या, प्रकाशक : आर.आर. शेठ एक कंपनी कशारबाग, प्रिंसेस स्ट्रीट, बंबई-400002
2. गुजराती फिल्म कोश, सं. हरीश रघुवंशी, प्र. विजन हाउस, पुतली के पास, संग्रामपुरा, सूरत-395002 (गुजरात)
3. उन्हें ना भुलाना ले हरीश रघुवंशी प्र. रमादे प्रकाशन अहमदाबाद

मराठी ग्रंथ

1. चित्र संपदा (1932-1989) की अवधि में बनी 841 मराठी फिल्मों का परिचय) सं. शशिकांत किणीकर, प्र. जागतिक मराठी परिषद्, बजाज भवन, नारीमन पॉइंट, बंबई-400023
2. मराठी चित्रपट गीत कोश, सं. विश्वास नेरूरकर
3. हम हैं राही प्यार के, सं. विजय नाफड़े

प्रकाशक : मेनका प्रकाशन, 2117 सदाशिव विजया नगर, पुणे-411030

4. फुलें वेचिता—लता मंगेशकर की आत्मकथा

5. एक होती प्रभात नगरी (प्रभात टॉकीज का इतिहास), ले. बापू वाटवे

6. मी दुर्गा खोटे (आत्मकथा) हिंदी में भी अनूदित।

7. शांतासभा (वि. शांताराम की आत्मकथा 1986 (हिंदी में भी अनूदित) राजस्थानी फिल्म गीत कोश, सं. एम.डी. सोनी (प्रकाशनाधीन)

❑

अंग्रेजी फिल्म साहित्य

1. Kishore Kumar : The Definitive Biography by Kishore Walicha, Pub : Penguin Books India, 210 Chiranjiv Tower, 43 Nehru Place, New Delhi-110019
2. Naushad : A Filmography By V.P. Verurkar, Pub. Avinash Prabhvakar 104, Om Kalptaru Society, Dixit Road Extn., Vile Parle (E), Mumbai-400057
3. Pancham By V.P. Nerukar, Pub. Rajesh B.Shah C/o B. Vijaikumar & Co. Mehta Bhawan, 6th Floor, opp. Albless Bang 311 Charni Road, Mumbai-400004
4. Madhu Bala–Her Life and Films By Khatiza Akbar, Pub. UBS Publishers, 5, Ansari Road, New Delhi-110002
5. Lata Mangeshkar : A Biography By Raju Bharahtan, UBS Publishors, 5, Ansari Road, New Delhi-110002
6. In search of Lata, By Harish Bhimani, Pub. Indus, 7/16 Ansari Road, New Delhi-110002
7. MaduBala, By Mohandeep, Pub. Magna House 100E, Old Prabha Devi Road, Mumbai-400025
8. Guru Datta—A Life in Cinema, By Naseen Munni Kabir, Pub : Oxford University Press, Jaising Road, New Delhi-110001
9. Ashok Kumar—Hislife and Times By Nabendu Ghosh, Pub. Indus, 7/16, Ansari Road, New Delhi-110002
10. Reflection of Indian Cinema, By Anna Vaudeva Pub : UBS. Publishers, 5, Ansari Road, New Delhi
11. Bimal Roy—A man of Silence, By Rinky Bhattacharya.
12. Mehbood—India's De mile By Bani Ruben.
13. Times or Nargis By T.G.S. George
(तीनों पुस्तकें Harper Collins द्वारा प्रकाशित)
14. B.N. Circar : A Monography, Pub : Seagull Books, 26 Cercus Avenue, Calcutta-700039
15. K.L. Saigal—The Pilgrim of the Swara By Raghav R Menon, Pub. Hind Pocket Books, G.T. Road, Shahdara, Delhi-110092
16. Filmographies of Madan Mohan. C. Ramchandra. S.D. Barman, Roshan, Shankar Jai Kishan, O.P. Nayyar, Hemant Kumar, Basant Desai, Naushad Ali, Sudhir Phadke By Vishwas Nerukar & Prasad Sinkar.
17. Hindi Talkies Film Index (1931-1987), Pub : Mrs Satinder Kaur] Ratanlal Nagar, Kanpur.
18. Indian Motion Picture Almanac By Bageeshwar Jha.
19. Stars From Another Sky By S.H. Manto., Pub : Penguin Books, 210 Chiraniiv Tower, 43 Nehru Place, New Delhi-110019.
20. Dada Mony By Kishore Walicha, Pub. : Punguin, New Delhi.
21. Hundred Luminaries of Hindi Cinema By Dinesh Raheja and Jitendrea Kothari Pub. : India Book House, Maha Laxmi Chambers, 22 Bhola Bhai Desai Road, Mumbai.
22. Bimal Roy—Life and Work By Firoz Rangoonwala.

❑

पत्र-पत्रिकाएँ

नई दुनिया (इंदौर) ने फिल्म विषयक निम्न विशेषांक प्रकाशित किए हैं—

1. भारतीय सिनेमा—प्लेटिनम जुबली विशेषांक
2. सरगम का सफर (संगीतकार, गीतकार, पार्श्वगायक-गायिका)
3. परदे की परियाँ (नायिका, खलनायिका, चरित्र नायिकाएँ)
4. नायक-महानायक (नायक, महानायक, खलनायक, चरित्रनायक, कॉमेडियन)
5. दूरदर्शन सिनेमा (दूरदर्शन का इतिहास, विकास, कलाकार)
6. फिल्म और फिल्म (स्टूडियो, निर्देशक, प्रमुख फिल्मों का परिचय)

लिस्नर्स बुलेटिन हरमंदिरसिंह हमराज द्वारा संपादित, H.I.G. 545, रतनलाल नगर, कानपुर

मध्य प्रदेश फिल्म विकास निगम के प्रकाशन

1. पटकथा (अब तक 19 अंक प्रकाशित)
2. भारतीय फिल्म वार्षिकी 1992, 1993, 1994

उपर्युक्त तीन अंकों में क्रमश: सत्यजित राय, देविका रानी तथा बॉम्बे टॉकीज एवं प्रभात फिल्म कंपनी पर विशेष सामग्री है। अन्य प्रकाशन

1. अभेद आकाश (मणि कौल से संवाद)
2. एक फिल्मकार की ऊँचाई (सत्यजित राय)
3. राजकपूर—ले. श्रीराम ताम्रकर
4. गुरुदत्त (तीन अंकीय त्रासदी), ले. अरुण खोपंकर
5. कुंदन—शरद दत्त (के.एल. सैगल की जन्म शती पर प्रकाशित)
6. अनिल बिस्वास—शरद दत्त
7. अशोक कुमार—ले. अजातशत्रु, सं. विनोद भारद्वाज
8. विमल राय—सं. श्रीराम तिवारी
9. मोनोग्राफ—श्याम बेनेगल, सत्यजित राय
10. मीना कुमारी : दर्द की खुली किताब—नरेंद्र राजगुरु

❑❑❑